गुरु नानक

का रूहानी उपदेश

राधास्वामी सत्संग ब्यास

गुरु नानक
का रूहानी उपदेश

जे. आर. पुरी

राधास्वामी सत्संग ब्यास

विषय सूची

प्रकाशक की ओर से 11

लेखक की ओर से 13

पाठकों से निवेदन 14

प्रथम भाग: जीवन तथा उपदेश

जीवन 19

उपदेश 62

द्वितीय भाग: वाणी

जप जी 113

निराकार परमेश्वर 115

आदि जुगादि परमेश्वर 115

अकालपुरुष का हुक्म 116

परमेश्वर अनंत है 117

कर्तापुरुष परमेश्वर 117

वेल न पाईआ पंडती 118

ग्रंथ-शास्त्रों से परे 120

सतगुरु सर्वसमर्थ है 120

सतगुरु का अधिकार 121

नाम सच है 121

शब्द को सुनने के फल 122

ॐ अन्नपूर्णा ®
Charitable Trust
WZ-5A/1, Ram Nagar,
Choukhandi Chowk,
New Delhi-110018

शब्द में लीन होने के फल 123
बाहरी शब्द और आंतरिक शब्द 124
ओह धोपै नावै कै रंग 125
जीव निर्बल और बेबस है 126
सो दर केहा सो घर केहा 127
सच खंड वसै निरंकार 129
पवण गुरू पाणी पिता 130
आसा की वार **132**
नानक गुरू न चेतनी 136
लख नेकीआ चंगिआईआ 136
कूड़ सभ संसार 139
दया क्या है? 141
सूतक 142
नानक फिकै बोलिऐ 144
रहरास **146**
सुण वडा आखै सभ कोए 147
सच्चा नाम 148
आरती **149**
सोहिला **151**
सिध-गोस्ट **153**
गुरु नानक और योगी 153
पहरे **169**
चार अवस्थाएँ 169
पटी **174**
बारह माहा **176**
चेत 176
आसाढ़ 177

सावन 178
पौष 179
दखणी ओअंकार **180**
रचना, परमात्मा, गुरु और मुक्ति 180

चुनी हुई वाणी
प्रमुख विषय

परमात्मा **185**
भी तेरी कीमत ना पवै 185
तू दरीआउ दाना बीना 186
प्रभु ही सच्चा राज़िक है 187
सागर मह बूंद 188
अलख, अपार, अगंम, अगोचर 189
अरबद नरबद धुंधूकारा 190
आपे आप उपाए निराला 193
जह देखा तह दीन दइआला 195
कुदरत करनैहार अपारा 197
हउ मै करी तां तू नाही 200
आतम मह राम 201
परमात्मा की दरगाह 203
सतगुरु **206**
धात मिलै फुन धात कउ 206
गुर की चरणी लाग 207
बिन गुर प्रेम न पाईऐ 209
सतगुर पूरा जे मिलै 212
ऐसी हर सिउ प्रीत कर 214
गुरुमुख 217

हंस और बगुला 219
माणस जनम दुलंभ 221
मोल खरीदा दास 222
संसार-सागर 223
सतगुरु के बिना मुक्ति नहीं 226
परमात्मा और सतगुरु 227
सरण परे गुरदेव तुमारी 229
घर मह घर देखाए दे 231
प्रभु और गुरु 233

शब्द **234**

शब्द की महिमा 234
नाम रिदै अंम्रित मुख नाम 235
जप मन नाम हर सरणी 237
अंम्रित जा का नाउ 239
हर हर नाम समाईऐ 240
हर धन संचहो रे जन भाई 241
नाम बिना कैसे आचार 243

कर्मकांड **245**

देश-देशांतर न भटको 245
सच्चा मुसलमान 246
मुक्ति का दरवाज़ा 247
सभ जप सभ तप सभ चतुराई 249
बाहरमुखी क्रियाओं का खंडन 251
घर अंम्रित घट माही 253
त्यागी और वैरागी 254
हठ निग्रह कर काइआ छीजै 256
झूठा तपस्वी 258

मन **262**

मछुली जाल न जाणिआ 262
जीवन के दस पड़ाव 264
अवर पंच हम एक जना 265
रैण गवाई सोए कै 266
मनमुखों की अवस्था 267
काल 269
मन मैगल साकत देवाना 270
बंधन मात पिता संसार 272
सुण हरणा कालिआ 273
करणी कागद मन मसवाणी 275
मनमुख 276
घर रहो रे मन 279
काम क्रोध परहर पर निंदा 281

प्रेम **284**

आवहो भैणे गल मिलह 284
इक तिल पिआरा वीसरै 285
सतगुर मेली भै वसी 286
राम नाम मन बेधिआ 288
मिल वर नारी मंगल गाइआ 291
मुंध जोबन बालड़ीए 293
भैणे सावण आइआ 294
जीउ डरत है आपणा 297
कुचज्जी 298
सुचज्जी 299
सूती रैण विहाणी 300
प्रेम के श्लोक 302

लाज मरंती मर गई 303
वैसाख भला साखा वेस करे 304

परिशिष्ट 305
पदानुक्रमणिका 315
रागों की सूची 320
संदर्भ सूची 321
संदर्भ ग्रंथ 330
परमार्थ संबंधी पुस्तकें 333

प्रथम भाग

जीवन तथा उपदेश

जीवन

संत-महात्माओं और पीर-पैग़ंबरों के जीवन के वृत्तांतों में सच्ची घटनाएँ और किंवदंतियाँ इस प्रकार घुलमिल जाती हैं कि उन्हें अलग-अलग करना असंभव-सा हो जाता है। गुरु नानक साहिब की जीवनी में तो विशेष तौर पर सच्ची घटनाएँ और काल्पनिक कथाएँ आपस में ऐसे जुड़ गई हैं कि उनमें से गुरु साहिब का सही चित्र खींच सकना बहुत कठिन है। इसलिए गुरु साहिब के जीवन वृत्तांत को असलियत के अधिक से अधिक पास रखने के हर संभव प्रयत्न के बावजूद इसमें मिल चुकी लेखकों की कल्पना और भावनाओं के रंग से पूरी तरह बच सकना संभव नहीं है।

स्रोत

गुरु नानक साहिब के जीवन के विषय में सबसे अधिक पुरानी और विश्वसनीय सामग्री *वारां भाई गुरदास* में हैं। परंतु गुरु साहिब के जीवन से अधिक भाई गुरदास जी को उनके उपदेश में रुचि थी, इसलिए भाई साहिब द्वारा रचा गया वृत्तांत गुरु साहिब की जीवन-गाथा पर पूरा प्रकाश नहीं डाल पाया है। इसके अतिरिक्त भाई साहिब ने अपनी वारों में उतना ध्यान घटनाओं के वर्णन की ओर नहीं दिया जितना गुरु साहिब की महिमा की ओर दिया है।

गुरु नानक साहिब के नाम के साथ कई प्रकार की करामातें जोड़ दी गई हैं, परंतु जैसा कि भाई गुरदास जी कहते हैं, गुरु साहिब सच्चे नाम की करामात[1] के अलावा अन्य करामातें या ऋद्धियाँ-सिद्धियाँ नहीं दिखाना चाहते थे: *बाझो सचे नाम दे होरु करामाति असां ते नाही।* (वार1: पउड़ी43)

उलटे वे तो ऐसा करनेवालों की तीव्र अलोचना करते थे। उनके बारे में गुरु साहिब का कहना था कि ये लोग दुष्ट रूहों से शक्ति प्राप्त करते हैं। सत्य तो यह है कि "गुरु साहिब दुष्ट रूहों से ताक़त लेनेवालों की तीव्र आलोचना करते थे।"[2]

गुरु साहिब के जीवन से संबंधित घटनाओं के विषय में सूचना का मुख्य स्रोत जन्म-साखियाँ हैं। जन्म-साखी का शाब्दिक अर्थ जन्म की कहानी है, परंतु इस वाक्य का अधिक प्रयोग जीवन की कहानी के लिए किया गया है। माना तो यही जाता है कि जन्म-साखियों में वर्णन की गई घटनाएँ और कहानियाँ ऐतिहासिक क्रम के अनुसार हैं, परंतु असल में इन घटनाओं और कहानियों का न तो आपस में कोई स्वाभाविक संबंध होता है और न ही इनमें उच्च साहित्य के गुण होते हैं। कहा जाता है कि ये साखियाँ "आधे अनपढ़ लेखकों ने पूरे अनपढ़ लोगों के लाभ के लिए लिखीं हैं।"[3] इन जन्म-साखियों में न इनके लेखकों के विषय में और न ही इनके रचना-काल या उन स्रोतों के विषय में कुछ कहा गया है, जिन पर ये आधारित हैं। इस बात की काफ़ी संभावना है कि ये कई हाथों में से और परिवर्तन के लंबे दौर में से गुज़री हों और इस प्रकार समय-समय पर इनमें फेरबदल होती रही हो।

सिक्ख इतिहास के आरंभिक काल के लेखक, सेवादास द्वारा लिखी जन्म-साखी को बहुत महत्त्व देते हैं। मैकॉलिफ़ का विचार है कि निस्संदेह यह गुरु नानक के जीवन के विषय में सबसे अधिक विश्वसनीय और विस्तृत वृत्तांत है।[4] इसमें अन्य वृत्तांतों की तुलना में काल्पनिक बातें कम हैं तथा यह कहीं अधिक तर्कसंगत और संतोषपूर्ण वृत्तांत है। यह जन्म-साखी दो रूपों में मिलती है: एक इंडिया ऑफ़िस लाइब्रेरी वाली प्रति जिसको *विलायत वाली जन्म-साखी* कहा जाता है और दूसरी हाफ़िज़ाबाद में प्राप्त प्रति जिसको *हाफ़िज़ाबाद वाली जन्म-साखी* कहा जाता है। दोनों प्रतियों में नाममात्र का अंतर है, क्योंकि दोनों एक ही रचना पर आधारित हैं, परंतु असली रचना खो गई है। उन दोनों को मिलाकर *पुरातन जन्म-साखी* का नाम दिया जाता है।

इस जन्म-साखी के मिलने से पहले *भाई बाले वाली जन्म-साखी* का बोलबाला था और इस *पुरातन जन्म-साखी* के प्राप्त हो जाने के बावजूद *भाई बाले वाली जन्म-साखी* का महत्त्व कम नहीं हुआ।

एक अन्य जन्म-साखी, मेहरबान के नाम के साथ जोड़ी जाती है। मेहरबान गुरु रामदास जी का पौत्र था। उसका पिता पिरथीचन्द गुरु रामदास जी का ज्येष्ठ पुत्र था। गुरु साहिब ने गुरु-गद्दी अपने छोटे सुपुत्र श्री अर्जुन देव जी को दे दी। इसके फलस्वरूप पिरथीचन्द और उसके अनुयायी (जिनको मीणे कहा जाता है) तथा दूसरी तरफ़ गुरु अर्जुन साहिब तथा उनके अनुयायियों में लंबे समय तक विवाद चलता रहा। अनुमान लगाया जाता है कि मेहरबान द्वारा लिखी गई गुरु नानक साहिब की जीवन-कथा पर भी इस मतभेद का अवश्य प्रभाव पड़ा होगा, इसी लिए कई विद्वानों ने इस जन्म-साखी में अधिक दिलचस्पी नहीं ली। मैकॉलिफ़ का विचार है कि मेहरबान ने अपनी जन्म-साखी में अपने पिता की बढ़-चढ़कर महिमा की और उसके पास विवरणों में फेरबदल करने के पूरे अवसर भी थे।[5] इसके विपरीत, मैक्लॉड का विचार है कि मेहरबान को अधिकतर ग़लत समझा गया है और इस जन्म-साखी का प्रधान स्वर गुरु नानक को छोटापन देने के बजाय जोशीली श्रद्धांजलि अर्पण करने का है, जो इस रचना को दूसरी साखियों (कथाओं) के बराबर और विशुद्ध धार्मिक साहित्य की श्रेणी में रख देता है।[6]

ज्ञान रत्नावली नामक जन्म-साखी भाई मनी सिंह जी के नाम के साथ जोड़ी जाती है जो गुरु गोबिन्द सिंह जी के समकालीन थे। इसकी कथा भाई गुरदास की पहली वार पर आधारित है। यह जन्म-साखी गुरु गोबिन्द सिंह जी के बाद रची गई और इसकी भाषा दूसरी जन्म-साखियों के मुक़ाबले में अधिक आधुनिक है। इसमें *पुरातन जन्म-साखी* और *भाई बाले वाली जन्म-साखी* से भी काफ़ी सामग्री ली गई है। फलस्वरूप यह विविध जन्म-साखियों का पंचमेल संग्रह बनकर रह गई है और इसका स्वतंत्र महत्त्व नहीं के बराबर है।

उपर्युक्त जन्म-साखियों के ऐतिहासिक महत्त्व के विषय में शंका उत्पन्न होना स्वाभाविक है। करामातों से परिपूर्ण साखियाँ गुरु साहिब के अपने

उपदेश पर खरी नहीं उतरतीं। इसके अतिरिक्त इनमें ऐसी घटनाओं का संकेत या वर्णन मिलता है, जो आधुनिक दृष्टि से, आंशिक रूप से या पूरी तरह ही असंभव हैं। यदि गुरु नानक साहिब के जीवन में कोई करामात हुई भी थी तो वह सतगुरु का अपने किसी प्रेमी शिष्य के उद्धार या उपचार में गहरी दिलचस्पी को प्रकट करना था। वे करामातें केवल उस व्यक्ति विशेष के लिए थीं, न कि जन-साधारण के सामने दिखावे के लिए।

जन्म-साखियों से प्राप्त सामग्री की दूसरे स्वतंत्र स्रोतों से तुलना द्वारा, घटनाओं के ठीक या ग़लत होने की परख में सहायता मिल सकती है, परंतु दुर्भाग्य से ऐसे स्रोत न के बराबर हैं। वास्तव में गुरु नानक साहिब के विषय में आंतरिक साक्षी केवल आदि ग्रन्थ में मिलनेवाले कुछ हवाले हैं, या फिर बग़दाद में मिले शिलालेख कुछ गवाही देते हैं। लेकिन हाल ही में गुरु साहिब के उड़ीसा और श्रीलंका के भ्रमण के विषय में कुछ विश्वसनीय प्रमाण भी मिले हैं।

जितनी जानकारी हमें इस समय प्राप्त है, उसके आधार पर जन्म-साखियों में लिखी किसी घटना को सर्वथा ग़लत कह देना उचित न होगा। जो घटना या साखी अपने आपमें संभव प्रतीत होती है, चाहे उसमें कुछ ग़लत या अस्वाभाविक तत्त्व शामिल कर दिए गए हों, उसको मोटे तौर पर हमें स्वीकार कर लेने में कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिए।

मुसलमान लेखकों द्वारा रचे गए साहित्य में गुरु साहिब के विषय में सबसे पहला उल्लेख *दबिस्ताने-मज़ाहिब* में मिलता है, जो मोहसिन फ़ानी या मोबिद ज़ुल्फ़िकार अरदस्तानी[7] द्वारा रचित माना जाता है। यह रचना लोकप्रिय होने के बावजूद बहुत विश्वसनीय नहीं समझी जा सकती। इसका एक कारण तो यह है कि यह किसी स्वतंत्र प्रत्यक्षदर्शी द्वारा नहीं लिखी गई। दूसरे, बाद में आनेवाले अंग्रेज़ इतिहासकारों मैलकम और कनिंघम के अनुसार इसका लेखक "झगड़ालू और हर बात पर आसानी से विश्वास कर लेनेवाला मुसलमान था।"

मैकॉलिफ़ ने ट्रंप द्वारा किए गए सिक्ख गुरुओं और सिक्ख धर्म के अपमान में कुछ सुधार करने का काम अपने ऊपर लिया। उन्होंने अपनी ओर

से आलोचना या निजी राय दिए बिना, एक परंपरावादी सिक्ख की दृष्टि से अपनी पुस्तक लिखी। इसलिए उसने सिक्ख संगत द्वारा श्रद्धापूर्वक स्वीकार की जा चुकी कई करामातों को भी अपनी पुस्तक में शामिल कर लिया।[8]

प्राप्त स्रोतों के विषय में उपर्युक्त संक्षिप्त वर्णन से पाठक को यह चेतावनी मिलेगी कि गुरु नानक साहिब का जीवन-वृत्तांत पढ़ते समय उसको गुरु साहिब के जीवन संबंधी पूरे तथा मानने योग्य विवरण प्राप्त होने की आशा नहीं रखनी चाहिए। वर्तमान अवस्था यह है कि इतिहासकारों के पास हमें देने के लिए गुरु साहिब के जीवन के एक अधूरे-से ख़ाक़े से अधिक कुछ नहीं है।

गुरु नानक का आगमन

गुरु नानक साहिब का जन्म 1469ई. में हुआ। उनका जन्म किस दिन और किस महीने में हुआ, इस विषय में विद्वानों में मतभेद है। *पुरातन जन्म-साखी, मेहरबान वाली जन्म-साखी, ज्ञान रत्नावली* और *महिमा प्रकाश* के अनुसार गुरु साहिब का जन्म 3 वैशाख, संवत 1526 अर्थात् 15 अप्रैल, 1469 को हुआ। इसके विपरीत, *भाई बाले वाली जन्म-साखी* में गुरु साहिब का जन्म 15 कार्तिक, संवत 1526 को पूर्णमासी के दिन माना गया है। इस हिसाब से गुरु साहिब का जन्म नवंबर, 1469 का निश्चित होता है। सन 1815ई. (संवत 1872) तक ननकाना साहिब में गुरु साहिब के जन्मदिन का गुरुपर्व वैशाख (अप्रैल) में ही मनाया जाता था। महाराजा रणजीत सिंह के समय भाई सन्त सिंह ज्ञानी के कहने पर गुरुपर्व मनाने की तिथि नवंबर में कर दी गई। तिथि बदलने का एक प्रमुख उद्देश्य यह हो सकता है कि इससे वैशाख के महीने में ही आनंदपुर में खालसा के जन्मदिन का पर्व मनाने में विघ्न न पड़े। इसके अतिरिक्त सिक्ख किसान संगत के लिए, गेहूँ की कटाई के दिनों में एक ही महीने में दो पर्वों में शामिल हो सकना कठिन था।

जन्म-साखियों और *महिमा प्रकाश* के अनुसार गुरु नानक साहिब का जन्म अपने पिता के घर राय भोए की तलवंडी में हुआ। यही क़स्बा

बाद में ननकाना साहिब के नाम से प्रसिद्ध हुआ और यह लाहौर (अब पाकिस्तान) से चालीस मील की दूरी पर है। एक और विश्वास के अनुसार उनका जन्म अपने ननिहाल के गाँव काहन कच्चा या चाहल में हुआ। यह विचार पंजाब और भारत के कई भागों में प्रचलित रिवाज से मेल खाता है, जिसके अनुसार माता प्रसूति के लिए अपने मायके जाती है। नानक नाम से भी संकेत मिलता है कि शायद गुरु साहिब का जन्म अपने नाना के घर हुआ। संभवत: आपकी बहन का जन्म भी अपने ननिहाल में ही हुआ होगा क्योंकि उनका नाम नानकी था। पर बहुत साफ़ तौर पर जन्म-साखियों में गुरु साहिब का जन्म तलवंडी राय भोए में मेहता कालू बेदी के घर होना माना गया है।[9]

गुरु साहिब के जन्म के समय राय बुलार तलवंडी राय भोए का मुखिया या चौधरी था। वह गुरु साहिब का प्रशंसक था और बाद में आपका शिष्य भी बना। गुरु साहिब के पिता कालू जाति के खत्री और गोत्र से बेदी थे। वह गाँव के पटवारी थे। गुरु साहिब की माता जी का नाम तृप्ता था और वह अपने पुत्र के प्रति अपार प्रेम के लिए प्रसिद्ध हैं। जैसा कि ऊपर संकेत किया जा चुका है, गुरु साहिब की एक बड़ी बहन थी जिसका नाम बीबी नानकी था।

शिक्षा

गुरु साहिब के बचपन के विषय में कोई प्रामाणिक और ऐतिहासिक तथ्य नहीं मिलते। परंतु इस बात पर सब सहमत हैं कि शुरू से ही उनका सांसारिक शिक्षा के बजाय अध्यात्म या पारमार्थिक ज्ञान की ओर अधिक झुकाव था। वे न तो बहुत समय तक पढ़े और न ही उन्होंने किताबी पढ़ाई की ओर विशेष ध्यान दिया। एक तो गुरु साहिब की किताबी पढ़ाई में अधिक रुचि नहीं थी और दूसरे, उस समय ऐसे ज्ञान के साधनों का भी अभाव था। तलवंडी एक छोटा-सा स्थान था जहाँ न कोई योगियों का मठ था और न ही मुसलमानों की कोई ख़ानगाह, जो उन दिनों उच्च शिक्षा के केंद्र होते थे।

गाँव के दयालु चौधरी राय बुलार ने इस शर्त पर गुरु नानक को उनके पिता के स्थान पर पटवारी लगाना मंज़ूर किया कि वे फ़ारसी सीख लें, क्योंकि उन दिनों सारा सरकारी कामकाज फ़ारसी में ही होता था। गुरु साहिब के द्वारा अपनी वाणी में अरबी और फ़ारसी शब्दों का काफ़ी प्रयोग किया गया है जिससे पता चलता है कि आपने इन भाषाओं का बहुत अच्छा ज्ञान प्राप्त कर लिया था। अलग-अलग स्रोतों में गुरु साहिब के फ़ारसी के अध्यापकों के भिन्न-भिन्न नाम दिए गए हैं। कहीं रुकनदीन, कहीं कुतुबुद्दीन और कहीं सैयद हसन का नाम लिया गया है। यह भी कहा जाता है कि गोपाल पंडित ने आपको हिंदी में लिखना, पढ़ना और हिसाब रखना सिखाया।

सच की खोज

गुरु साहिब ने शुरू के वर्षों में चाहे जो भी सांसारिक विद्या हासिल की हो, परंतु वह रूहानी ज्ञान या परमार्थ की खोज के लिए धार्मिक शिक्षाप्राप्ति के कई केंद्रों पर अवश्य गए। इस खोज में वह अनेक तपस्वियों, वैरागियों और त्यागियों के संपर्क में आए जिनके विषय में यह माना जाता था कि उन्होंने धर्मग्रंथों के पाठ, अभ्यास और भारत के दूसरे भागों के धर्मगुरुओं के साथ विचार-विमर्श करके रूहानी ज्ञान प्राप्त किया था। गुरु नानक साहिब की वाणी, उदाहरणत: जप जी, आसा की वार और सिध गोस्ट से पता चलता है कि गुरु साहिब न केवल ऐसे लोगों के संपर्क में आए, बल्कि उन्होंने धर्मग्रंथों का भी गंभीर अध्ययन किया। क्योंकि धार्मिक और पारमार्थिक विषयों की जिस गहरी सूझबूझ के दर्शन गुरु साहिब की वाणी में होते हैं, वह केवल अलग-अलग धर्मस्थानों की यात्रा के समय साधुओं और फ़क़ीरों से हुई मौखिक चर्चा से प्राप्त नहीं हो सकती थी।

यज्ञोपवीत

नौ वर्ष की आयु में यज्ञोपवीत धारण करने की रस्म गुरु साहिब के बचपन की एक महत्त्वपूर्ण घटना थी। वह इसकी कोई धार्मिक महत्ता नहीं समझते

थे और उन्होंने यह बात परिवार के पुरोहित हरदयाल को स्पष्ट शब्दों में बता दी। इस संबंध में जन्म-साखियों में वर्णन की गई कहानी का सुझाव गुरु साहिब की आसा की वार में आए निम्नलिखित शब्द[10] से प्राप्त हुआ प्रतीत होता है जिसमें गुरु साहिब ने बाहरी रस्मी जनेऊ को व्यर्थ माना है और केवल सदाचार और संयम को ही सच्चा जनेऊ स्वीकार किया है। आप कहते हैं कि दया के कपास, संतोष के सूत, ब्रह्मचर्य की गाँठ और सत्य के बटने से बना जनेऊ धारण करना चाहिए। ऐसा यज्ञोपवीत मरणोपरांत भी जीव के साथ जाता है। परंतु साधारण सूत का बना हुआ जनेऊ मृतक के साथ चिता में जल जाता है और जीव यज्ञोपवीत के बिना परलोक सिधार जाता है:

दइआ कपाह संतोख सूत जत गंढी सत वट॥
एह जनेऊ जीअ का हई त पाडे घत॥
ना एह तुटै न मल लगै ना एह जलै न जाए॥
धंन सो माणस नानका जो गल चले पाए॥
चउकड़ मुल अणाइआ बह चउकै पाइआ॥
सिखा कंन चड़ाईआ गुर ब्राहमण थिआ॥
ओह मुआ ओह झड़ पइआ वेतगा गइआ॥

आदि ग्रन्थ, पृ.471 *

विवाह तथा परिवार

गुरु साहिब का विवाह बारह से सोलह वर्ष की आयु के बीच बटाला (ज़िला गुरदासपुर, पंजाब) निवासी श्री मूला की सुपुत्री बीबी सुलखणी से हुआ। भिन्न-भिन्न जन्म-साखियों के आधार पर अनुमान लगाया जा सकता है कि गुरु साहिब का विवाह 1481 से 1485 के बीच किसी समय हुआ। अधिक संभावना यही है कि यह विवाह आपके जीजा श्री जयराम के प्रयास का

* वाणी के उद्धरण शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबंधक कमेटी, अमृतसर द्वारा प्रकाशित आदि ग्रन्थ की 1430 पृष्ठों की बीड़ के अनुसार हैं।

फल था। मैकॉलिफ़ का विचार है कि यदि गुरु साहिब का वश चलता तो वह सुलतानपुर में सरकारी नौकरी करने के बाद विवाह के बंधन में बँधना पसंद न करते।[11] समय पाकर आपके श्रीचन्द और लक्ष्मीदास दो पुत्र हुए।

कारोबार

आपके पिता कालू बेदी चाहते थे कि उनका पुत्र साधारण सांसारिक जीवन व्यतीत करे, परंतु गुरु साहिब के मन का तार किसी और ही तरफ़ बजता था। वे सदा परमार्थी पुरुषों की संगति में रहते थे। कालू जी ने अपने पुत्र का ध्यान सांसारिक कामकाज की ओर मोड़ने के लिए उनको भैंसें पालना, कृषि, दुकानदारी और घोड़ों के व्यापार आदि में लगाने का प्रयत्न किया। परंतु गुरु साहिब का मन इन कामों में नहीं था और उनके असाधारण व्यवहार के कारण यह समझा जाने लगा कि लड़के की बुद्धि ठिकाने पर नहीं है।

उनके पिता को किसी भी कारोबार को न अपनाने की अपने पुत्र की ज़िद से बड़ी निराशा हुई। उन्होंने सब तरह से कोशिश की कि उनको तलवंडी के आसपास के जंगलों में रहनेवाले तपस्वियों व संन्यासियों की संगति से दूर रखा जाए, परंतु इस तरह के प्रयत्न भी सफल न हुए। घर वालों को महसूस होने लगा कि बालक का दिमाग़ ख़राब हो गया है। शायद गुरु साहिब अपनी वाणी में इस अवस्था का ही वर्णन कर रहे हैं:

कोई आखै भूतना को कहै बेताला॥
कोई आखै आदमी नानक वेचारा॥
भइआ दिवाना साह का नानक बउराना॥
हउ हर बिन अवर न जाना॥

आदि ग्रन्थ, पृ.991

पिता कालू बेदी ने पुत्र को सांसारिक धंधों में सफल बनाने के लिए एक और प्रयत्न किया। उन्होंने पुत्र नानक को चूहड़खान (ज़िला शेख़ूपुरा,

जो अब पाकिस्तान में है) में व्यापार करने के लिए भेजा। पुत्र ने पिता द्वारा दिए गए पैसे, रास्ते में कुछ भूखे साधुओं को भोजन खिलाने में ख़र्च कर दिए। पैसे इस तरह ख़र्च करके आप वापस तलवंडी आ गए, जहाँ आज्ञा का उल्लंघन करने के कारण उन्हें पिता का कोप सहना पड़ा। परंतु जीजा जयराम के कहने पर और गाँव के चौधरी राय बुलार की सहायता से कालू बेदी को सहमत कर लिया गया कि वह आपको जयराम के साथ सुलतानपुर भेज दें।

गुरु साहिब के सुलतानपुर में बिताए जीवन के संबंध में कोई ख़ास मतभेद नहीं है। जयराम की सिफ़ारिश पर दौलतख़ान लोदी ने उनको अपने मोदीख़ाने में रख लिया। गुरु साहिब ने यह सांसारिक धंधा स्वीकार तो कर लिया पर उनके मन की हालत में कोई परिवर्तन न हुआ। वे दिन में यथाशक्ति अपनी नौकरी के कर्तव्य को पूरा करते, परंतु रात का समय भजन-सिमरन में ही बिताते।

आंतरिक रूहानी अनुभव

इस समय के दौरान ही गुरु साहिब को पहली बार आंतरिक रूहानी अनुभव प्राप्त होने का लिखित रूप में प्रमाण मिलता है। एक दिन प्रातः सुलतानपुर के एक ओर बहनेवाली काली बेईं नदी में स्नान करने के बाद गुरु साहिब, समीप के जंगल में अलोप (लुप्त) हो गए। *पुरातन जन्म-साखी* के अनुसार उस समय गुरु साहिब को परमेश्वर की दरगाह में ले जाया गया, जहाँ परमेश्वर ने उन्हें अमृत का प्याला पीने को दिया और अपने नाम का प्रचार करने का काम सौंपा। गुरु साहिब तीन दिन बाद सुलतानपुर लौटे। आपके लौटने पर तलवंडी निवासियों को बहुत ख़ुशी हुई, क्योंकि उन्होंने यह समझ लिया था कि गुरु साहिब बेईं नदी में ही बह गए हैं।

वास्तव में यह वर्णन गुरु साहिब को समाधि की अवस्था में अपने अंदर परमात्मा की प्राप्ति होने का संकेत करता है। सिमरन के समय जब गुरु साहिब की आत्मा एकाग्रता द्वारा शरीर से सिमटकर अंदर चली गई तो उनका शब्द की दिव्य-ध्वनि से संपर्क हो गया। इससे उनको वह रूहानी

अनुभव प्राप्त हुआ, जिसे आत्मज्ञान या अंदर शब्द की ध्वनि और प्रकाश से जुड़ने का नाम दिया जाता है। गुरु साहिब ने स्वयं भी अपनी वाणी में परमेश्वर को शब्द रूप माना है, जैसा कि मारू राग के निम्नलिखित शब्द से प्रकट होता है:

> *तू अकाल पुरख नाही सिर काला॥ तू पुरख अलेख अगंम निराला॥*
> *सत संतोख सबद अत सीतल सहज भाए लिव लाइआ॥*
>
> आदि ग्रन्थ, पृ. 1038

शरीर में से आत्मा की धारा के सिमटने की क्रिया एक प्रकार से मरने की क्रिया है। जो साधक इस तरह मरने की युक्ति सीख लेता है, वह वास्तव में मृत्यु पर विजय प्राप्त कर लेता है। वह जब चाहे शरीर को ख़ाली कर सकता है और जब चाहे उसमें वापस आ सकता है। जैसे सेंट पॉल ने कहा था, "मैं प्रतिदिन मरता हूँ।"[12] ऐसे व्यक्ति के लिए मौत का भय समाप्त हो जाता है। जो व्यक्ति हर रोज़ जब चाहे मर सकता है और जब चाहे जीवित हो सकता है, उसे मृत्यु का क्या भय हो सकता है?

गुरु साहिब वाणी में साधक को जीते-जी यह अवस्था प्राप्त करने का उपदेश देते हैं:

> *मुइआ जित घर जाईऐ तित जीवदिआ मर मार॥*
>
> आदि ग्रन्थ, पृ. 21

पुरातन जन्म-साखी में परमेश्वर द्वारा गुरु साहिब को दिए गए जिस अमृत के प्याले का वर्णन है, उसका संकेत भी असल में आंतरिक आनंदमय रूहानी अनुभव की ओर ही है, जिसके द्वारा अमर जीवन की प्राप्ति हो जाती है। गुरु साहिब कहते हैं कि अमर जीवन प्रदान करनेवाले सच्चे अमृत का सरोवर काया के अंदर ही है, परंतु इस अमृत की प्राप्ति प्रेम और प्यार से ही हो सकती है: *काइआ अंदर अंम्रित सर साचा मन पीवै भाए सुभाई हे॥* (आदि ग्रन्थ, पृ. 1046)

इस महान रूहानी अनुभव ने गुरु साहिब का सारा जीवन पलट दिया। इसके बाद आप केवल सच के साधारण खोजी या जिज्ञासु ही न रहे, बल्कि सच के साक्षात ज्ञाता सतगुरु नानक बन गए। वह ऐसे पूर्ण सतगुरु बन गए जो अपने सच के ज्ञान की प्रत्यक्ष दात लोगों में भी बाँट सकते थे।

क्या गुरु नानक का कोई गुरु था?

इस प्रश्न के विषय में काफ़ी मतभेद पाया जाता है कि गुरु साहिब का कोई गुरु था या नहीं। सिक्खों का परंपरागत विचार यही है कि गुरु साहिब का कोई गुरु नहीं था। उनका विचार है कि काली बेईं नदी के पास के जंगल में प्राप्त हुए महान रूहानी अनुभव के समय परमात्मा ने गुरु साहिब को लोगों में नाम की महिमा और सच्चे रूहानी ज्ञान का प्रचार करने का कार्य सौंपा था।

फिर भी कुछ विद्वान इस बात पर ज़ोर देते हैं कि गुरु साहिब का गुरु ज़रूर था, *सियारुल-मुताख़रीन* का लेखक ग़ुलाम हुसैन ख़ान कहता है कि सैयद हसन, गुरु नानक का गुरु था।[13] हाल में ही छपी एक पुस्तक के लेखक ने इस बात की पुष्टि की है: "ग़ुलाम हुसैन ने गुरु नानक के विषय में नई बात यह बताई है कि बचपन के दिनों में तलवंडी में गुरु साहिब का सैयद हसन नाम का एक शिक्षक था जो एक विद्वान मुसलमान दरवेश था।"[14]

कबीरपंथी आम तौर पर इस बात का दावा करते हैं कि गुरु नानक को कबीर साहिब से ज्ञान प्राप्त हुआ। वैस्टकॉट कहता है, "जो लोग कबीर साहिब को अपना रूहानी मार्गदर्शक मानकर उनके प्रति आभार प्रकट करते हैं, उनमें सिक्ख पंथ का संस्थापक पंजाब का नानक शाह भी है।"[15] एक और विद्वान लिखता है कि "इसमें कोई संदेह नहीं कि सभी लेखकों ने कबीर के साथ गुरु नानक का नाम जोड़ा है।"[16] यह वर्णन जारी रखते हुए वह ए.एस.गॉर्डन और जे.एन.फ़रक़ुहर के नाम लेता है जो गुरु नानक को कबीर का शिष्य मानने के विचार के समर्थक थे।[17]

बील ने यह विचार मानते हुए कि गुरु नानक का कोई न कोई गुरु ज़रूर था, सैयद हसन को उनका गुरु बताया है।[18] साथ ही उसने यह भी

लिखा है कि कुछ लोगों के अनुसार कबीर नानक के गुरु थे। एक अन्य विद्वान ने गुरु नानक की बग़दाद यात्रा का वर्णन करते हुए एक शिलालेख पर यह लिखा बताया है, "गुरु मुराद का देहांत हो गया। बाबा नानक फ़क़ीर ने इस भवन के निर्माण में सहायता की, जो एक सच्चे शिष्य के प्यार को प्रकट करता है। हिज़री 927।"[19] इस प्रकार इस शिलालेख के अनुसार मुराद ही गुरु नानक के रूहानी पथ-प्रदर्शक थे। इसके विपरीत, अधिकांश विद्वान इस बात का खंडन करते हैं कि गुरु नानक को इन लोगों से आत्मज्ञान प्राप्त हुआ। प्रिंसिपल जोध सिंह, डा. गंडा सिंह आदि बहुत-से विद्वान तो इस बात को स्वीकार ही नहीं करते कि गुरु नानक का कोई गुरु था।[20]

कुछ विद्वान गुरु नानक साहिब की अपनी वाणी के उद्धरणों से यह दिखाने का प्रयत्न करते हैं कि गुरु साहिब ने गुरु की प्राप्ति के लिए घरबार त्यागा और सतगुरु द्वारा ही उनको परमेश्वर की प्राप्ति हुई।

गुरु साहिब कहते हैं कि मैंने गुरुमुख की खोज में घरबार छोड़ा और परमात्मा से मिलने की इच्छा ने ही मुझे यह बाना धारण करने के लिए मजबूर किया। मैंने गुरुमुख से प्राप्त शब्द के द्वारा मन को वश में किया, सतगुरु के घर जन्म लेने से अपना आवागमन मिटाया और गुरुमुख के द्वारा अंदर शब्द और ज्योति की प्राप्ति की:

गुरमुख खोजत भए उदासी॥ दरसन कै ताई भेख निवासी॥

आदि ग्रन्थ, पृ.939

सुण सुआमी सच नानक प्रणवै अपणे मन समझाए॥
गुरमुख सबदे सच लिव लागै कर नदरी मेल मिलाए॥

आदि ग्रन्थ, पृ.944

सतगुर कै जनमे गवन मिटाइआ॥ अनहत राते इह मन लाइआ॥
मनसा आसा सबद जलाई॥ गुरमुख जोत निरंतर पाई॥

आदि ग्रन्थ, पृ.940

कुछ अन्य विद्वान कहते हैं कि गुरु नानक साहिब की वाणी में कई स्थानों पर उनके सतगुरु का संकेत मिलता है, विशेष तौर पर उन स्थानों पर जहाँ उन्होंने सतगुरु के साथ मेरा या अपना शब्दों का प्रयोग किया है:

हर बिन जीउ जल बल जाउ॥
मै आपणा गुर पूछ देखिआ अवर नाही थाउ॥

आदि ग्रन्थ, पृ. 14

बलिहारी गुर आपणे दिउहाड़ी सद वार॥
जिन माणस ते देवते कीए करत न लागी वार॥

आदि ग्रन्थ, पृ. 462

जे पुरख नदर न आवई तिस का किआ कर कहिआ जाए॥
बलिहारी गुर आपणे जिन हिरदै दिता दिखाए॥

आदि ग्रन्थ, पृ. 937

हउ गुर पूछउ आपणे गुर पुछ कार कमाउ॥
सबद सलाही मन वसै हउमै दुख जल जाउ॥
सहजे होए मिलावड़ा साचे साच मिलाउ॥

आदि ग्रन्थ, पृ. 58

भाई रे अवर नाही मै थाउ॥
मै धन नाम निधान है गुर दीआ बल जाउ॥

आदि ग्रन्थ, पृ. 58

निव निव पाए लगउ गुर अपुने आतम राम निहारिआ॥

आदि ग्रन्थ, पृ. 353

मेरा गुर दइआल सदा रंग लीणा॥
अहिनिस रहै एक लिव लागी साचे देख पतीणा॥

आदि ग्रन्थ, पृ. 907

मुल खरीदी लाला गोला मेरा नाउ सभागा॥
गुर की बचनी हाट बिकाना जित लाइआ तित लागा॥

आदि ग्रन्थ, पृ. 991

मैंने इस विषय की गहराई में जाकर या विस्तारपूर्वक खोज नहीं की है, क्योंकि प्रस्तुत पुस्तक लिखने का मेरा मुख्य उद्देश्य गुरु नानक के रूहानी उपदेश की व्याख्या करना था। मैं इस वाद-विवाद में नहीं पड़ना चाहता, जो मुख्य विषय के दायरे से बाहर की बातों तथा केवल इतिहास से संबंधित है।

महान परिवर्तन

कहा जाता है कि बेईं नदी के किनारे हुए रूहानी परिवर्तन के बाद गुरु नानक ने अपनी सब संपत्ति त्याग दी और अधिकतर मौन रहने लगे। इस समय से भाई मरदाना गुरु साहिब के साथ रहने लगा। आप: 'न को हिंदू न मुसलमान' यह भेदभरा वाक्य प्राय: उचारते थे, अन्यथा वे बहुत कम ही बोलते थे।

इस सरल वचन से आपकी दिव्य-दृष्टि और विश्वव्यापी प्रेम का पता लगता है। परंतु फिर भी, अनेक लोग इसी बात से चिढ़ते भी थे। शासक वर्ग के लोग तो विशेष रूप से इस बात का बुरा मानते थे कि गुरु साहिब हिंदुओं को मुसलमानों के बराबर कहते हैं। इस संबंध में सूबेदार नवाब दौलतख़ान* के पास शिकायत की गई। दौलतख़ान ने यह कहकर शिकायत रद्द कर दी कि गुरु नानक एक फ़क़ीर है जिसके वचन आसानी से समझ में नहीं आ सकते। इस अवसर पर इस्लामी शरीअत की व्याख्या करनेवाला क़ाज़ी भी मौजूद था और उसने भी शिकायत का समर्थन किया। उसने नवाब से गुरु साहिब को बुलाने के लिए कहा।

---

* भाई गुरदास ने अपनी वारों में दौलतख़ान लोदी का नाम गुरु साहिब के शिष्यों और सेवकों में लिया है।

जब गुरु साहिब वहाँ पहुँचे तो नवाब ने उनका स्वागत किया और उनको अपने बराबर में पास ही बैठा लिया। इसी बीच मुसलमानों की शाम की नमाज़ का वक़्त हो गया। सब लोग उठकर मसजिद में चले गए। गुरु साहिब भी उनके साथ चले गए। जब क़ाज़ी ने नमाज़ शुरू कराई तो आशा के विपरीत गुरु साहिब खड़े ही रहे और सिजदा* नहीं किया। क़ाज़ी को इससे शिकायत का एक और मौक़ा मिल गया। उसने यह बात नवाब को बताई। गुरु साहिब से नमाज़ में शामिल न होने का कारण पूछा गया तो उन्होंने कहा, "क़ाज़ी का दिल नमाज़ में न था। उसका मन तो नए पैदा हुए बछड़े में था जिसे वह मसजिद में आने से पहले घर के आँगन में खुला छोड़ आया था। आँगन में कुआँ है और क़ाज़ी का ध्यान बार-बार इस बात की ओर जाता था कि कहीं बछड़ा कुएँ में न गिर जाए।" क़ाज़ी ने स्वीकार किया कि गुरु साहिब ठीक कह रहे हैं और वह गुरु साहिब के चरणों में गिर पड़ा। इस पर गुरु साहिब ने ये शब्द कहे:

मुसलमान मुसावै आप॥
सिदक सबूरी कलमा पाक॥
खड़ी न छेड़ै पड़ी न खाय॥
नानक सो मुसलमान भिसत कौ जाय॥[21]

अर्थात् सच्चा मुसलमान वह है जो अपनी ख़ुदी को ख़त्म करे और परमात्मा के भाणे में रहता हुआ सिद्क व सबूरी से कलमे (शब्द) की कमाई करके मन को पवित्र करे। जो मुसलमान खड़े हुओं को न छेड़े और गिरी हुई को न खाए, वही बहिश्त में जाएगा।

गुरु साहिब की सुलतानपुर में मोदीख़ाने की नौकरी के समय का एक और वृत्तांत इस प्रकार है: शिकायत की गई कि नानक मोदीख़ाने का काम

* मुसलमान नमाज़ के समय एक विशेष ढंग से झुककर दुआ माँगते हैं जिसे सिजदा करना कहा जाता है।

ध्यानपूर्वक नहीं करता। दोष यह लगाया गया कि वह लोगों को मूल्य से अधिक का माल तौलकर देता है जिससे शाही भंडार में हानि हो रही है। यदि यह दोष सही सिद्ध हो जाता तो इसकी भारी सज़ा मिलती। परंतु जब निरीक्षण किया गया तो नवाब को पता लगा कि मोदीख़ाने का माल पूरा ही नहीं बल्कि अधिक था। इस घटना को करामात समझना ज़रूरी नहीं। मोदीख़ाने में अनाज की अधिकता का एक कारण यह भी हो सकता है कि गुरु साहिब अपना वेतन नक़द के बजाय राशन के रूप में लेते थे और वे स्वयं उस अनाज को बहुत कम प्रयोग में लाते थे। बाक़ी का अनाज सरकारी भंडार में ही पड़ा रहता था, जिस कारण भंडार में माल हिसाब से अधिक निकला।

गुरु साहिब के सुलतानपुर आने और वहाँ से जाने की तारीख़ों के विषय में कोई पक्की जानकारी नहीं मिलती। अधिक संभावना यही है कि गुरु साहिब दौलतख़ान लोदी के सुलतानपुर का नवाब रहने के समय तक ही वहाँ रहे होंगे। जब दौलतख़ान लोदी की सन 1500 के लगभग पदोन्नति हो गई और वह लाहौर का नवाब बन गया तो हो सकता है कि गुरु साहिब सुलतानपुर से चले गए हों।

धर्म-प्रचार के लिए यात्रा

अगली निश्चित तारीख़ सन 1520 है, जब गुरु साहिब सैदपुर में थे। सन 1500 से 1520 तक का समय गुरु साहिब ने अपने रूहानी उपदेश के प्रचार के लिए की गई यात्राओं में बिताया। इन यात्राओं को गुरु साहिब की 'उदासियाँ' का नाम दिया जाता है,[22] क्योंकि इनमें गुरु साहिब एक त्यागी की भाँति विचरते रहे। उन्होंने यात्री का वेश अपना लिया और वे जहाँ भी जाते वहाँ के वातावरण और आवश्यकताओं के अनुसार पहनावा धारण कर लेते थे। दक्षिण भारत की यात्रा के समय गुरु साहिब ने "पैरों में खड़ाऊँ पहनी हुई थी, हाथ में छड़ी थामी हुई थी, सिर पर पगड़ी की तरह रस्सी लपेटी हुई थी और मस्तक पर तिलक लगाया हुआ था।"[23] कहा जाता है, "उत्तर भारत की यात्रा के समय गुरु साहिब ने पैरों में

चमड़े की जूती और सिर पर चमड़े की टोपी पहनी हुई थी। कमर में रस्सी लपेटी हुई थी और माथे पर केसर का तिलक लगाया हुआ था।"[24] यह भी कहा जाता है, "मक्के की यात्रा के समय उन्होंने एक मुसलमान हाजी का नीला लिबास पहना हुआ था। हाथ में फ़क़ीरों का डंडा था और बग़ल में अपनी वाणी की एक पोथी थी। उन्होंने एक मुसलमान साधक या परहेज़गार की तरह वुज़ू करने के लिए हाथ में लोटा और भजन-सिमरन के समय नीचे बिछाने के लिए मुसल्ला भी रखा हुआ था।"[25] इससे यह परिणाम निकलता है कि गुरु साहिब जहाँ भी जाते थे, वहाँ के लोगों के साथ घुलमिल जाते थे और उनका ही धार्मिक पहनावा अपना लेते थे। स्वाभाविक तौर पर इससे उनको जनसमूह में अपने रूहानी उपदेश का प्रचार करने में आसानी होती होगी।

अपनी यात्रा के साथ ही गुरु साहिब अपने भजन-सिमरन पर बहुत ध्यान देते थे। उनका पूरा जीवन ही रूहानी अभ्यास और नाम के प्रचार को समर्पित था। आहार, सोने, पहनने और आराम करने की ओर उनका कोई ध्यान नहीं था। भाई गुरदास जी अपनी एक वार[26] में गुरु साहिब की कठिन साधना का उल्लेख करते हुए कहते हैं:

पहिला बाबे पाया बखसु दरि, पिछो दे फिरि घाल कमाई।
रेतु अकु आहारु करि, रोड़ा की गुर करी विछाई।
भारी करी तपसिआ, वडे भागु हरि सिउ बणि आई।

वार 1: पौड़ी 24

दबिस्ताने मज़ाहिब में लिखा है, "नानक ने घोर साधना की। उसने पहले भोजन कम किया और फिर थोड़े-से गाय के दूध पर गुज़ारा करना शुरू कर दिया। उसके बाद उसने केवल घी पर और फिर केवल पानी पीकर गुज़र करना शुरू कर दिया। उसके बाद उसने उन लोगों की तरह केवल हवा पर रहना शुरू कर दिया, जिनको हिंदुस्तान में पवनाहारी कहा जाता है।"[27]

गुरु साहिब की भिन्न-भिन्न उदासियों का कोई निश्चित उल्लेख नहीं मिलता। निस्संदेह भाई गुरदास की पहली वार में मिला वर्णन सबसे

अधिक प्राचीन और मानने योग्य है, परंतु यह वर्णन विस्तृत और पूरा नहीं है। *पुरातन जन्म-साखी* में चार बड़ी और एक छोटी, कुल पाँच उदासियों का वृत्तांत है और कई स्थानों का ज़िक्र है। *मेहरबान वाली जन्म-साखी* में केवल दो उदासियों की ओर संकेत किया गया है, हालाँकि अनेक स्थानों का उल्लेख ज़रूर किया है। इस जन्म-साखी में जिन मुख्य स्थानों का ज़िक्र नहीं है उनमें कामरूप, बग़दाद और नानकमता आते हैं। दोनों जन्म-साखियों में उन स्थानों का क्रम भी भिन्न है जहाँ गुरु साहिब घूमने गए और इनसे संबंधित विवरण भी भिन्न-भिन्न है। फिर अलग-अलग स्थानों की भौगोलिक स्थिति के विषय में भी कई प्रकार की भूलें और विसंगतियाँ है। इसके बावजूद हम गुरु नानक साहिब की बीस सालों में फैली उदासियों की अधिक से अधिक स्पष्ट और संबद्ध झाँकी पेश करने की कोशिश करेंगे। इस कार्य के लिए *पुरातन जन्म-साखी* और *मेहरबान वाली जन्म-साखी* की सहायता से मूल ढाँचे का पुनर्निर्माण करके, भाई गुरदास से प्राप्त की गई सामग्री भी जोड़ी गई है।

पहली उदासी

गुरु नानक साहिब को सुलतानपुर लोदी में रहते हुए कुछ साल बीत चुके थे और उनकी पहली उदासी यहीं से शुरू हुई। गुरु साहिब का पक्का और वफ़ादार साथी मरदाना रागी, इस उदासी में आपके साथ था। यहाँ दिए गए ऐतिहासिक क्रम को देखते हुए यह संभव प्रतीत नहीं होता कि पहली उदासी सन् 1500ई. के बाद शुरू हुई थी। संभावना तो यही है कि यह उदासी 1500ई. से कुछ साल पहले ही शुरू हुई। *पुरातन जन्म-साखी* के अनुसार यह उदासी बारह साल तक चली, जिसके बाद गुरु साहिब तलवंडी लौट आए।

भाई गुरदास इस उदासी का सजीव वर्णन करते हैं कि इस उदासी के समय गुरु साहिब अनेक तीर्थों पर गए, विशेष रूप से पर्व और त्योहारों के दिनों में। गुरु साहिब ने देखा कि लोग अपने-अपने धर्मों के अनुसार परंपरागत ढंग से कई रस्म और कर्मकांड कर रहे थे, परंतु उनमें सच्चे

प्रेम और सच्ची श्रद्धा का अभाव था। इन बाहरी क्रियाओं से उन्हें कोई लाभ नहीं हो सकता था। इन लोगों के भाग्य में परमात्मा का सच्चा प्रेम नहीं लिखा था और वे वेदों और स्मृतियों के पाठ में मग्न रहते थे।

भाई गुरदास बताते हैं कि इस यात्रा में गुरु साहिब की अनेक तपस्वियों, योगियों, सिद्धों, नाथों, गुरुओं, शिष्यों आदि से मुलाक़ात हुई। गुरु साहिब ने यह भी देखा कि लोगों के समूह के समूह देवी-देवताओं और अन्य अनेक प्रकार के छोटे-बड़े इष्टों की पूजा में लगे हुए हैं। धर्मस्थान और तीर्थों की लंबी यात्रा के दौरान गुरु साहिब सच्चे प्रभुभक्त की तलाश करते रहे। परंतु उनको कोई ऐसा सच्चा भक्त न मिला। हिंदू बहुत मिले, मुसलमान बहुत मिले और उनके गुरु, पीर, पंडित, क़ाज़ी भी बहुत मिले, परंतु गुरु साहिब ने देखा कि अंधे, अंधों के नेता बनकर, उनको कुएँ में धकेल रहे हैं।[28]

सुलतानपुर से गुरु नानक और मरदाना पश्चिम की ओर गए। सैदपुर (जो अब पाकिस्तान में है और अमीनाबाद नाम से प्रसिद्ध है) के पास के जंगलों में गुरु साहिब कई दिन ध्यानमग्न रहे। भाई गुरदास के अनुसार उनकी आत्मा पूरी तरह अकालपुरुष में लीन हो गई। इसके बाद वे अपने साथी के संग शहर में दाख़िल हुए और वहाँ एक बढ़ई भाई लालो के घर में ठहरे। गुरु साहिब के भाई लालो के घर जाने से शहर का चौधरी मलिक भागो बहुत लाल-पीला हुआ, क्योंकि गुरु साहिब ने उसके घर में होनेवाले भोज में शामिल होने से इनकार कर दिया था। मलिक भागो गुरु साहिब से गुस्से में बोला और उसने शिकायत की कि इससे उसका बहुत अनादर हुआ है। गुरु साहिब ने एक हाथ में भाई लालो की कोदरे की सूखी रोटी और दूसरे में मलिक भागो की घी में सनी रोटी लेकर दोनों को निचोड़ा। भाई लालो की रोटी में से दूध और मलिक भागो की रोटी में से ख़ून टपकने लगा। गुरु साहिब ने समझाया कि भाई लालो की सूखी रोटी हक़-हलाल की अर्थात् ख़ून-पसीने की कमाई की है और मलिक भागो के पकवान रिश्वत और अत्याचार की कमाई के हैं।[29]

इस कहानी में दूध और ख़ून टपकनेवाले भाग को छोड़कर कोई भी चीज़ अस्वाभाविक नहीं है। इस साखी से गुरु साहिब के उपदेश का यह ज़रूरी अंग बड़ी सुंदरता से सामने आता है कि अपनी जीविका ईमानदारी से कमानी चाहिए। गुरु साहिब ने अपनी वाणी में भी हक़-हलाल की कमाई पर ज़ोर दिया है। आप आसा की वार में कहते हैं कि दान-पुण्य का फल असल में उसे ही मिलता है जो स्वयं हक़-हलाल की कमाई करके, उस पवित्र धन में से परमार्थ में भी ख़र्च करता है:

जे मोहाका घर मुहै घर मुहे पितरी दे॥
अगै वसत सिञाणीऐ पितरी चोर करे॥
वढीअह हथ दलाल के मुसफी एह करे॥
नानक अगै सो मिलै जे खटे घाले दे॥

आदि ग्रन्थ, पृ.472

सैदपुर से गुरु साहिब अपने साथी मरदाना सहित एक एकांत जंगल में चले गए। इस सफ़र में वे एक ठग शेख़ सज्जन के घर जा पहुँचे। उसने दोनों मेहमानों को एक कुएँ में फेंकने की योजना बनाई, परंतु इस महान संत-सतगुरु की संगति और रूहानी तेज का उस ठग पर इतना गहरा प्रभाव पड़ा कि अपनी योजना को त्यागकर शेख़ सज्जन ने अपने इस नीच इरादे और पहले किए हुए पापों की गठरी गुरु साहिब के सामने खोल दी और अपने गुनाहों का प्रायश्चित किया। अंत में वह गुरु साहिब का सच्चा सेवक बन गया। जिस स्थान पर यह घटना घटी, वहाँ पहली धर्मशाला बनाई गई। यह साखी सभी जन्म-साखियों में मिलती है, हालाँकि विवरणों में अंतर अवश्य है।

इस यात्रा के दौरान गुरु साहिब के विश्राम का एक अन्य महत्त्वपूर्ण स्थान कुरुक्षेत्र था।[30] गुरु साहिब सूर्यग्रहण के अवसर पर वहाँ पहुँचे। संभव है कि आप लोगों को ग्रहण के समय दान, पूजा, सूतक स्नान आदि

भ्रमों से निकालना चाहते थे और वे अपनी विचारधारा के अनुसार कई लोगों को बदलने में सफल भी हुए।

मेहरबान वाली जन्म-साखी को छोड़कर बाक़ी सब जन्म-साखियों में ज़िक्र है कि पानीपत में गुरु साहिब की मुलाक़ात वहाँ के पीर शेख़ शरफ़ से हुई। यह पीर बहुत समय पहले गुज़र चुका था। स्पष्ट है कि गुरु साहिब की मुलाक़ात उसके उत्तराधिकारी मुरीद से हुई होगी। इस एक असंगति के कारण सारे वृत्तांत को निर्मूल मान लेना ठीक नहीं होगा, क्योंकि लेखक में कभी-कभी स्वाभाविक वृत्ति होती है कि वह अपनी बात को प्रभावशील बनाने के लिए उस समय के बड़े समझे जानेवाले लोगों को अपने वृत्तांत के साथ जोड़े। कहा जाता है कि पीर ने गुरु साहिब के हाथ और पैर चूमे[31] और वह पूरी तरह से गुरु साहिब के उपदेश को स्वीकार करके उनकी शरण में आ गया।

गुरु साहिब का अगला पड़ाव दिल्ली था, जहाँ वे न तो ज़्यादा समय ठहरे और न ही वहाँ कोई विशेष घटना घटी। दिल्ली से आप हरिद्वार गए। वहाँ गुरु साहिब ने देखा कि अनेक यात्री पूर्व की ओर मुँह करके अपने पूर्वजों के लिए सूर्य को पानी दे रहे थे। यह देखकर गुरु साहिब ने पश्चिम की ओर पानी देना शुरू कर दिया। जब लोगों ने पूछा कि पूर्व के बजाय पश्चिम की ओर पानी क्यों दे रहे हो? तो गुरु साहिब ने जवाब दिया कि लाहौर के निकट मेरे खेत हैं, मैं उनको पानी दे रहा हूँ। लोगों ने कहा कि इस तरह इतनी दूर खेतों को पानी कैसे पहुँच सकता है? गुरु साहिब ने उत्तर दिया कि यदि तुम्हारा पानी परलोक तक पहुँच सकता है तो मेरा पानी भी ज़रूर लाहौर पहुँच सकता है क्योंकि लाहौर परलोक से बहुत निकट है।[32] यहाँ भी गुरु साहिब लोगों को उपदेश देना चाहते थे कि इस प्रकार के कर्मकांड व्यर्थ हैं और इनसे किसी को कुछ भी प्राप्त नहीं हो सकता।

इसके बाद गुरु साहिब उत्तर प्रदेश में पीलीभीत के पास गोरखमता नामक स्थान पर गए, जिसको अब गुरु साहिब की यात्रा की याद में नानकमता कहा जाता है। वहाँ गुरु साहिब की कई सिद्धों से मुलाक़ात हुई।

इन लोगों ने समझा कि यह योग का अच्छा जिज्ञासु है। इसलिए उन्होंने गुरु साहिब को अपना मत धारण करने के लिए प्रेरित किया। कहा जाता है कि गुरु साहिब ने इस समय सूही राग के निम्नलिखित शब्द का उच्चारण किया और योगियों को समझाया[33] कि सच्चे योग का रहस्य बाहरमुखी क्रियाओं में नहीं, बल्कि संसार के प्रलोभनों के बीच रहते हुए उनसे अलिप्त रहने में है। आपने समझाया कि सच्चा योग न गुदड़ी, डंडे, भस्म, मुद्राएँ धारण करने, सिर मुँडाने में है और न ही सिंगी बजाने या श्मशानों में चालीसे करने या ध्यान लगाने में है। स्थान-स्थान पर घूमने और अनेक तीर्थों में स्नान से भी योग की प्राप्ति नहीं होती। सच्चा योग बातों से नहीं मिलता। यह एक कठिन आंतरिक अभ्यास है, जिसमें अनेकता और द्वैत को त्यागकर पूर्ण एकता में स्थित होना पड़ता है। इस सच्चे योग की प्राप्ति सतगुरु की बताई रीति के अनुसार जीते-जी मरने की युक्ति सीखने से होती है। चंचल और अस्थिर मन को एकाग्र करके अंदर शब्द की ध्वनि के साथ जोड़ने पर ही सहज व सच्चे योग की प्राप्ति होती है। शब्द की वह अद्‌भुत निर्मल ध्वनि किसी बाहरी यंत्र से नहीं बजती। सहज अवस्था में वह सूक्ष्म सिंगी आठों पहर हर एक के अंदर बज रही है। उस ध्वनि में लीन होने से जीव को अंदर ही सच का बोध प्राप्त हो जाता है और उसे संसार या माया (अंजन) में रहते हुए इससे निर्लिप्त (निरंजन) रहने की युक्ति प्राप्त हो जाती है। आत्मा का इस प्रकार परमात्मा में समा जाना और संसार से निर्लेप हो जाना ही सच्चा योग है:

जोग न खिंथा जोग न डंडै जोग न भसम चड़ाईऐ॥
जोग न मुंदी मूंड मुडाइऐ जोग न सिंङी वाईऐ॥
अंजन माहे निरंजन रहीऐ जोग जुगत इव पाईऐ॥
गली जोग न होई॥
एक द्रिसट कर समसर जाणै जोगी कहीऐ सोई॥

जोग न बाहर मड़ी मसाणी जोग न ताड़ी लाईऐ॥
जोग न देस दिसंतर भविऐ जोग न तीरथ नाईऐ॥
अंजन माहे निरंजन रहीऐ जोग जुगत इव पाईऐ॥
सतगुर भेटै ता सहसा तूटै धावत वरज रहाईऐ॥
निझर झरै सहज धुन लागै घर ही परचा पाईऐ॥
अंजन माहे निरंजन रहीऐ जोग जुगत इव पाईऐ॥
नानक जीवतिआ मर रहीऐ ऐसा जोग कमाईऐ॥
वाजे बाझहो सिंङी वाजै तउ निरभउ पद पाईऐ॥
अंजन माहे निरंजन रहीऐ जोग जुगत तउ पाईऐ॥

आदि ग्रन्थ, पृ.730

यह उपदेश सुनकर सिद्धों ने आदरपूर्वक गुरु साहिब के आगे सिर झुका दिया। आपके उपदेश ने इस क्षेत्र के अनेक लोगों को वहमों और भ्रमों से मुक्त किया।

गोरखमता से गुरु साहिब प्रयाग गए, जो गंगा और यमुना के संगम पर बसा हुआ हिंदुओं का प्रसिद्ध तीर्थ है। कुंभ के समय बड़ी संख्या में यात्री और श्रद्धालु नदी के पवित्र जल में स्नान कर रहे थे। उस दिन इस अपार समुदाय में बैठकर गुरु नानक ने परमपिता परमात्मा की महिमा का शब्द पढ़ा जिससे कई यात्री गुरु साहिब की ओर आकर्षित हुए। आपके मधुर संगीत ने उनको अपने जादू से मोह लिया। एक पंडा जो यह दृश्य देख रहा था, जल्दी से गुरु साहिब के पास आया और कहने लगा, "कुंभ का वक़्त बीत रहा है और तुमने अभी तक स्नान नहीं किया। यह अवसर हाथ से न निकल जाए और तुम्हारे पाप बिना धुले ही रह जाएँ।" गुरु साहिब ने पूछा, "शरीर को धोने से पाप कैसे धुल सकते हैं? शरीर को धोने से मन की मलिनता कैसे धुल सकती है?" फिर आपने एक और शब्द का उच्चारण किया जिसमें उन्होंने ये विचार प्रकट किए कि शरीर को धोने से मन निर्मल नहीं हो सकता। निर्मल वास्तव में वे लोग हैं जिनके हृदय में वह निर्मल परमात्मा बस जाता है:

सूचे एह न आखीअह बहन जे पिंडा धोए॥
सूचे सेई नानका जिन मन वसिआ सोए॥

आदि ग्रन्थ, पृ.472

गुरु साहिब का अगला महत्त्वपूर्ण पड़ाव बनारस (जिसको अब वाराणसी कहते हैं) के पवित्र नगर में हुआ। गुरु साहिब ने देखा कि यहाँ अनेक विद्वान और पंडित ग्रंथों और शास्त्रों के पाठ में लगे हुए हैं और उनके चारों ओर शिष्यों की भीड़ है। मूर्ति-पूजा करनेवाले वैष्णव और कई प्रकार के हठयोग में लगे हुए कई नंगे साधु भी गुरु साहिब ने देखे। कई लोग श्मशानों में आसन लगाए भी नज़र आए।[34]

गुरु साहिब का पहनावा हर एक का ध्यान अपनी ओर आकर्षित करता था, क्योंकि वह न तो पूर्ण रूप से गृहस्थियों का वेश था और न ही साधुओं या फ़क़ीरों का। उस समय का एक विद्वान पंडित जिसका नाम चतुरदास था, गुरु साहिब के पास आकर पूछने लगा, "हे भद्र पुरुष, तू किस धर्म को मानता है? न तेरे गले में तुलसी की माला है, न तेरे पास पूजा के लिए सालिगराम है, न तेरे हाथ में माला है, न तेरे माथे पर तिलक है।" गुरु साहिब ने उत्तर में एक शब्द में यह उपदेश दिया कि हे ब्राह्मण, तू राम-नाम का सालिगराम बना और शुभ कर्मों की माला गले में पहन। प्रभु से दया-मेहर माँग और उसी को अपनी नैया का लंगर मान। तू बंजर धरती को पानी देने और रेत की दीवारें खड़ी करने में समय क्यों नष्ट कर रहा है? मन को बैल बनाकर हरिभक्ति के रहट की माल द्वारा राम-नाम के अमृत से जीवन के खेत को सींच, तभी प्रभुरूपी माली तेरे कार्यों पर प्रसन्न होगा:

साल ग्राम बिप पूज मनावहो सुक्रित तुलसी माला॥
राम नाम जप बेड़ा बांधहो दइआ करहो दइआला॥
काहे कलरा सिंचहो जनम गवावहो॥
काची ढहगे दिवाल काहे गच लावहो॥

कर हरिहट माल टिंड परोवहो तिस भीतर मन जोवहो॥
अंम्रित सिंचहो भरहो किआरे तउ माली के होवहो॥

आदि ग्रन्थ, पृ. 1170-71

चतुरदास को अब भी अपने ज्ञान का अभिमान था। उसने गुरु साहिब से कहा कि आप बनारस में रहकर भिन्न-भिन्न प्रकार की विद्या सीखें। गुरु साहिब ने उत्तर दिया कि मुझे तो परमेश्वर की प्राप्ति के लिए केवल शब्द यानी नाम की ज़रूरत है, अन्य किसी ज्ञान या ध्यान की ज़रूरत नहीं।

पुरातन जन्म-साखी के अनुसार गुरु साहिब ने अपनी प्रसिद्ध लंबी वाणी दखणी ओंकार बनारस में ही कही थी। दखणी ओंकार की 54 पौड़ियाँ हैं और इसमें परमात्मा और उसकी रचना के स्वरूप और स्वभाव की व्याख्या की गई है। चतुरदास को इससे सच्चे ज्ञान की प्राप्ति हुई। वह गुरु साहिब के चरणों में गिर पड़ा और उनका अनुयायी बन गया।

एक परंपरा के अनुसार गुरु साहिब की कबीर साहिब के साथ भी मुलाक़ात हुई। *मेहरबान वाली जन्म-साखी* के अनुसार यह मुलाक़ात गुरु साहिब की बनारस की यात्रा के समय हुई। कबीरपंथियों का भी यह विचार है कि दोनों संत एक दूसरे से परिचित थे। ऐसी मुलाक़ात के लिए बनारस ही सबसे अधिक संभव स्थान हो सकता है।[35] यह भी अनुमान किया जाता है कि गुरु साहिब पूसा में सन 1506 में कबीर साहिब से मिले।[36] परंतु मैकॉलिफ़ इस बात से सहमत नहीं कि दोनों की कहीं मुलाक़ात हुई हो। उसका विचार है कि गुरु साहिब की बनारस की यात्रा के समय बेशक लोग संत कबीर को भूले तो नहीं थे, परंतु कबीर साहिब शरीर अवश्य त्याग चुके थे। ऐतिहासिक दृष्टि से देखा जाए तो गुरु साहिब और कबीर साहिब का आपस में मिलना असंभव नहीं, परंतु इस मुलाक़ात का कोई पक्का सबूत नहीं मिलता।

बनारस से गुरु साहिब पटना, अयोध्या और गया में गए।[37] अयोध्या में भी गुरु साहिब की वहाँ के भक्तों और पंडितों से गोष्ठियाँ हुईं। गया में

गुरु साहिब ने उपदेश दिया कि हिंदुओं द्वारा पूर्वजों के लिए किए जानेवाले अनेक प्रकार के श्राद्ध, पिंडदान और इस तरह के कर्मकांड व्यर्थ हैं।

इसके बाद जन्म-साखियाँ[38] हमें कौरू (कवरू) देश में ले जाती हैं, जहाँ मलिका नूरशाह का राज्य था। इस देश में स्त्रियों का बोलबाला था और वे जादू-टोने के लिए विशेष तौर पर प्रसिद्ध थीं। कहा जाता है कि इन जादूगरनियों ने गुरु साहिब पर भी अपने काले इल्म का प्रयोग किया, परंतु गुरु साहिब की अद्भुत रूहानी शक्ति के कारण उन पर इसका कोई प्रभाव न पड़ा। अंत में उस देश की मलिका और सारी जादूगरनियाँ गुरु साहिब की अनुयायी बन गईं। कौरू देश को आम तौर से कामरूप से जोड़ा जाता है जो पश्चिमी आसाम में है। यह ठीक है कि बाद के श्रद्धालु लेखकों ने गुरु साहिब की आसाम-यात्रा में अनेक प्रकार की परस्पर विरोधी घटनाएँ जोड़ दी हैं, परंतु गुरु साहिब की आसाम-यात्रा की साखी सची प्रतीत होती है।

पुरातन जन्म-साखी को छोड़कर बाक़ी सब जन्म-साखियों में गुरु साहिब की पुरी-यात्रा का वर्णन है। *चैतन्य भागवत* के अनुसार यहाँ गुरु साहिब प्रसिद्ध वैष्णव संत चैतन्य महाप्रभु से मिले[39] और दोनों ने मिलकर कीर्तन किया। *चैतन्य भागवत* के अनुसार गुरु साहिब का शिष्य सारंग भी उनके साथ था। संभव है कि उसके बंगाली लेखक को मरदाने के नाम का पता न हो और उसने सारंगी बजानेवाले मरदाने को ही सारंग कह दिया हो। लेखक के अनुसार दो भाई, रूप और सनातन तथा जगाई और मधाई भी कीर्तन और दिव्य-नृत्य में शामिल हुए।[40]

चैतन्य भागवत में संकीर्तन में भाग लेनेवाले जिन व्यक्तियों के नाम लिखे हुए हैं, उनमें नागर पुरुषोत्तम, जांगली, नंदनी और गोपाल गुरु भी हैं। कहा जाता है कि गोपाल गुरु से गुरु साहिब का गहरा प्रेम था। उनमें नित्यानन्द प्रभु भी था, जिसको भगवान कृष्ण के भाई बलराम का अवतार माना जाता था।[41]

ऐसा प्रतीत होता है कि गुरु नानक और चैतन्य महाप्रभु में हुई मुलाक़ात का वैष्णव मत के विद्वानों पर गहरा प्रभाव पड़ा। *दशम स्कन्ध*

की बंगाली टीका में नीचे लिखे मंगलाचरण से इस बात की साक्षी मिलती है कि इस मुलाक़ात की याद सौ वर्ष बाद भी क़ायम थी: "प्रणाम है गुरु नानक को जो सब ग्रंथ-शास्त्रों का ज्ञाता और सच्चा ब्रह्मज्ञानी है और सब गुरुओं का गुरु है।"[42]

ऐसा माना जाता है कि गुरु साहिब पुरी जाते हुए या पुरी से पंजाब लौटते हुए उड़ीसा के बालासोर ज़िले में भी रुके। एक वृत्तांत के अनुसार आप इस ज़िले में भदरक क़स्बे के समीप 'संगत' नामक गाँव में गए। गाँव के नाम से ही इस बात का संकेत मिलता है कि आप यहाँ आए होंगे।

ऐसा लगता है कि पुरी से प्रस्थान करने के बाद सन 1510ई. के आसपास गुरु साहिब वापस तलवंडी आ गए। यह बात ऐतिहासिक दृष्टि से सही लगती है। *पुरातन जन्म-साखी* में पहली उदासी को बारह साल लंबी माना गया है और यह इस अवधि से भी मेल खाती है। परंतु वापस आकर गुरु साहिब न अपने पिता के घर गए और न ही अपनी पत्नी से मिलने गए। वे मरदाना को साथ लेकर दोबारा अपनी यात्रा पर निकल पड़े। इस बार उन्होंने देश के दूरस्थ क्षेत्रों का दौरा करने से पहले पंजाब के कुछ भागों में घूमने का फ़ैसला किया। रावी और चिनाब नदियों को पार करके गुरु साहिब पाकपट्टन पहुँचे। कहा जाता है कि यहाँ आप शेख़ इब्राहीम से मिले और अपना सच का उपदेश दिया। शेख़ इब्राहीम शेख़ फ़रीद शक्करगंज की गद्दी का बारहवाँ पीर था।[43] इसके उपरांत गुरु साहिब दयालपुर, कंगनपुर, कसूर, पट्टी, गोइंदवाल, सुलतानपुर, वैरोवाल, जलालाबाद और कड़ी पठान की भी गए। कड़ी पठान की में कई पठान आपके शिष्य बन गए।[44] इसके बाद गुरु साहिब बटाला गए और वहाँ कुछ समय रुककर पसरूर, सियालकोट और मिठनकोट गए और अंत में लाहौर जा पहुँचे।

लाहौर गुरु साहिब की पहली उदासी का अंतिम पड़ाव था। *पुरातन जन्म-साखी* (हाफ़िज़ाबाद वाली) के अनुसार गुरु साहिब कुछ समय के लिए रावी नदी के दाएँ किनारे पर आबाद करतारपुर नामक गाँव में ठहरे। यह गाँव एक लखपति अहलकार ने बसाया था।[45] कहा जाता है कि

पंजाब से बाहर दूसरी लंबी उदासी पर जाने से पूर्व, गुरु साहिब अपने परिवार के निवास का पूरा प्रबंध कर देना चाहते थे। अभी तक उनका परिवार पाखोके गाँव में उनकी ससुराल में ही रह रहा था।[46] यहीं पर एक बालक गुरु साहिब की संगति में आया जो बाद में बाबा बुड्ढा के नाम से प्रसिद्ध हुआ। संभव है कि गुरु साहिब ने अपने तुखारी राग के प्रसिद्ध बारह माहा का सृजन यहीं किया हो।

दूसरी उदासी

पुरातन जन्म-साखी के अनुसार गुरु नानक साहिब की दूसरी उदासी दक्षिण की ओर थी। कहा जाता है कि सैदो और घेहो नामक दो जाट भी आपके साथ थे। जन्म-साखियों के लेखकों ने इस उदासी के साथ दक्षिण के दूरस्थ क्षेत्रों से संबंधित विचित्र बातों पर आधारित कई काल्पनिक कहानियाँ जोड़ी हैं। कहा जाता है कि धनासरी देश में गुरु साहिब के साथियों की मुलाक़ात एक मुसलमान फ़क़ीर ख़्वाजा ख़िज़र के साथ हुई। किसी को मालूम नहीं कि धनासरी देश किस क्षेत्र को कहा गया है। यह भी कहा जाता है कि यहाँ गुरु साहिब की मुलाक़ात एक जैन मुनि से हुई। इसके बाद आप एक द्वीप में गए जहाँ के अत्याचारी राजा ने उनको गर्म तेल के तपते हुए कड़ाहे में तलने का प्रयत्न किया। बाद में गुरु साहिब की भेंट एक पाखंडी पीर से हुई, जिसको आपने उपदेश दिया कि सभी बाहरमुखी रीति-रिवाज़ और दिखावे व्यर्थ हैं।

हो सकता है कि ऐतिहासिक दृष्टि से इन कथाओं का कोई महत्त्व न हो, परंतु ये पाठक को उस अजीब और दुश्मनों से भरे वैरपूर्ण वातावरण का आभास अवश्य कराती हैं, जिनमें से गुरु नानक और उनके साथियों को गुज़रना पड़ा।

लेकिन गुरु साहिब की श्रीलंका की यात्रा के ठोस सबूत हैं।[47] अनेक साहसी भारतीय व्यापारियों के लिए लंका कोई अज्ञात स्थान नहीं था। गुरु साहिब के वहाँ पहुँचने से पहले एक भारतीय व्यापारी उस देश में अपना घर बना चुका था। उसने गुरु साहिब के एक शब्द का श्रीलंका के

राजा के लिए वहाँ की भाषा में अनुवाद भी किया था। गुरु साहिब की श्रीलंका-यात्रा के समय धर्मपराक्रमबाहु वहाँ का राजा था। शिलालेखों से इस बात का प्रमाण मिलता है कि जिनाचार्य नामक धर्म-प्रचारक, राजा से मिला और उसने राजा को अपने मत में लाने का प्रयत्न किया। राजा ने कहा कि यदि तुम धर्मकीर्ति स्थविर जो देश के राज-पुरोहित या संघराज हैं, उनको हरा दो तो मैं तुम्हारे धर्म में शामिल हो जाऊँगा।

कहा जाता है कि सगुण ब्रह्म और अमर आत्मा के विषय पर हुए वाद-विवाद में जिनाचार्य को श्रोताओं का अधिक समर्थन मिला और उसने इस वाद-विवाद में अपने विरोधी को हरा दिया। बाद में कई कारणों से ब्राह्मण लोग जिनाचार्य के विरुद्ध हो गए। जिनाचार्य अद्वैतवाद पर डटा रहा और उसने मूर्ति-पूजा के विरोध में प्रचार किया। इसके अतिरिक्त उसने जाति-पाँति के आधार पर ब्राह्मणों की उच्चता मानने से इनकार कर दिया। अंत में वह राजधानी छोड़कर चला गया और राजा के मत-परिवर्तन की बात अनिर्णीत ही रह गई।[48]

यह सही है कि इस शिलालेख में गुरु नानक साहिब का नाम नहीं आता, परंतु इसमें कोई संदेह नहीं कि यह घटना गुरु साहिब की श्रीलंका-यात्रा से संबंधित है।

गुरु साहिब पश्चिमी तट के किनारे-किनारे वापस पंजाब लौट आए और इसके साथ ही उनकी दूसरी उदासी समाप्त हो गई। वापस आते हुए गुरु साहिब ने कई स्थानों पर सत्संग किए।[49] *मेहरबान वाली जन्म-साखी* में आता है कि गुरु साहिब उज्जैन, विंध्याचल पर्वत, नर्मदा नदी, बीकानेर और सौराष्ट्र की ओर भी गए। दूसरी जन्म-साखियों में बीकानेर को छोड़कर इन स्थानों का वर्णन नहीं मिलता।

तीसरी उदासी

गुरु साहिब की तीसरी उदासी उत्तर की ओर थी। इस उदासी के समय हस्सू लोहार और सींहा छीपा गुरु जी के साथ थे। मैकॉलिफ़ के अनुसार गुरु साहिब की इस उदासी का पहला पड़ाव अचल बटाला था। अचल बटाला

ज़िला गुरदासपुर में आजकल के बटाला से चार मील की दूरी पर था। यहाँ आपकी योगियों के साथ लंबी गोष्ठी हुई और आपने यहीं पर सिध गोस्ट नामक रचना की।[50] भाई गुरदास जी की वारों से इस बात की साक्षी नहीं मिलती; क्योंकि उनके अनुसार यह घटना बहुत देर बाद गुरु साहिब की पश्चिम की यात्रा के बाद घटी।

पुरातन जन्म-साखी के अनुसार गुरु नानक साहिब अचल बटाला से कश्मीर के शहर श्रीनगर गए। वहाँ आप कुछ दिन रुके और बहुत-से लोग आपका सत्संग सुनकर और आपकी संगति में आकर आपके अनुयायी बन गए।

श्रीनगर से गुरु साहिब हिमालय पर्वत में दूर तक चले गए और वहाँ की कई ऊँची चोटियों पर चढ़े। लोक कथा के अनुसार प्रसिद्ध है कि आप लद्दाख और तिब्बत तक पहुँचे, परंतु अभी तक इस बात के सबूत में कोई शिलालेख नहीं मिला है।[51] *पुरातन जन्म-साखी* में ज़िक्र है कि गुरु साहिब सुमेरु पर्वत पर गए और वहाँ सिद्धों के साथ गोष्ठी की। भाई गुरदास ने भी इस गोष्ठी का विस्तारपूर्वक वर्णन किया है। सभी महत्त्वपूर्ण जन्म-साखियों में गुरु साहिब के सिद्धों के साथ इस मुक़ाबले का वर्णन है, चाहे विवरण में विविधता दिखाई देती है। इनके बावजूद मैकलॉड ने इसको पूरी तरह अस्वीकार किया है। वह इस बात पर ज़ोर देता है कि सुमेरु पर्वत जैसा कोई भौगोलिक स्थान नहीं है और यह केवल कल्पित कथाओं का ही अंग है। वह सुमेरु पर्वत को कैलाश पर्वत या किसी दूसरी पहाड़ी के साथ मिलाने को तैयार नहीं है; परंतु उसने इस बात पर विचार करने का प्रयत्न नहीं किया कि भाई गुरदास या जन्म-साखियों के लेखकों से हिमालय पर्वत संबंधी वास्तविक भौगोलिक ज्ञान की आशा नहीं की जा सकती।

चौथी उदासी

गुरु साहिब की चौथी उदासी हसन अब्दाल (अटक ज़िले का एक गाँव जो अब पाकिस्तान में है) से शुरू हुई, जहाँ से गुरु साहिब पश्चिम की

ओर गए।[52] कहा जाता है कि हसन अब्दाल में गुरु साहिब ने पर्वत पर से लुढ़कती चली आ रही एक भारी चट्टान को हाथ देकर रोका। यह चट्टान एक मुसलमान फ़क़ीर ने ग़ुस्से में आकर नीचे की ओर धकेल दी थी। मान्यता है कि इस चट्टान पर गुरु साहिब के पंजे का निशान बन गया और यह स्थान 'पंजा साहिब' के नाम से प्रसिद्ध हुआ। मैकलॉड ने इस घटना को यह कहकर एकदम अस्वीकार कर दिया है कि इसमें कोई ऐसी बात नहीं जिसके आधार पर इसे सच माना जा सके।[53]

लगभग सौ साल तक गुरु साहिब की अरब देशों की यात्रा के वृत्तांतों को शक की नज़र से देखा जाता रहा है। परंतु हाल ही में ऐसे प्रमाण मिले हैं, जिनसे पता लगता है कि गुरु साहिब सचमुच ही पृथ्वी के इस भाग की यात्रा पर गए थे।[54] भाई गुरदास ने गुरु साहिब के बग़दाद, मक्का और मदीना जाने का भी संकेत दिया है।[55] *पुरातन जन्म-साखी* और *मेहरबान वाली जन्म-साखी* में मदीना और बग़दाद का वर्णन नहीं है, परंतु मक्का की यात्रा का विवरण ज़रूर मिलता है। जबकि *ज्ञान रत्नावली* और *भाई बाले वाली जन्म-साखी* दोनों में बग़दाद का वर्णन आता है। मैकॉलिफ़ ने गुरु साहिब के मक्का, मदीना और बग़दाद तीनों स्थानों पर जाने की परंपरागत साखी को सही माना है।[56]

अपनी पहली वार में भाई गुरदास जी द्वारा दिया गया गुरु साहिब की मक्का-यात्रा का वर्णन जितना सजीव है, उतना ही विश्वसनीय भी। उनके अनुसार एक मुसलमान फ़क़ीर के पहनावे में गुरु साहिब मक्का गए। उन्होंने नीले वस्त्र पहने हुए थे; एक हाथ में डंडा था, बग़ल में पुस्तक थी, दूसरे हाथ में लोटा था और कंधे पर था मुसल्ला। मक्का में आप एक मसजिद में ठहरे। रात को सोते समय उन्होंने अपने पैर मेहराब की तरफ़ कर लिए। एक भाई, जिसका नाम जीवन था (*भाई बाले वाली जन्म-साखी* के अनुसार रुकन दीन*) गुरु साहिब से कहने लगा कि मेहराब की तरफ़ पैर करके सोना कुफ़्र है, क्योंकि इस ओर काबा अर्थात्

* इनको रुकुनुद्दीन भी कहा जाता है।

परमात्मा का घर है। गुरु साहिब ने कहा, "भाई, जिस ओर रब नहीं रहता, मेरी टाँगें उस ओर कर दो।" सब लोग गुरु साहिब के इन ज्ञान से भरपूर शब्दों पर हैरान हुए और सबने उनका आदर किया। मुसलमान दरवेशों ने आपसे कई पारमार्थिक समस्याओं पर प्रश्न पूछने शुरू कर दिए। गुरु साहिब से एक प्रश्न यह पूछा गया, "हिंदू बड़ा है कि मुसलमान?" उन्होंने उत्तर दिया, "नेक अमलों के बिना हिंदू सच्चा हिंदू नहीं और मुसलमान सच्चा मुसलमान नहीं है। बिना नेक कर्मों के दोनों में से किसी को भी रब की दरगाह में जगह नहीं मिल सकती। मुसलमान और हिंदू नादानी की वजह से एक दूसरे से नफ़रत करते हैं, पर यह नहीं जानते कि राम और रहीम एक ही रब के दो नाम हैं।"

भाई गुरदास के अनुसार गुरु नानक साहिब मक्का से बग़दाद गए। आपके द्वारा बग़दाद में किए गए कार्यों का कोई विश्वासपूर्ण वर्णन नहीं मिलता, परंतु इससे उनकी बग़दाद की यात्रा के बारे में शंका नहीं की जा सकती। इस संबंध में कुछ समय पूर्व दो शिलालेख मिले हैं और दोनों से ही इस बारे में काफ़ी विश्वसनीय गवाही मिलती है। एक चबूतरे के पीछे खड़ी दीवार पर खुदे एक लेख का अनुवाद इस प्रकार किया गया है:

"गुरु अर्थात् संत-सतगुरु बाबा नानक फ़क़ीर औलिया की याद में यह भवन सात दरवेशों की मदद से दोबारा बनाया गया है। (तारीख़ का वर्णन) बख़्शे हुए मुरीद ने रहमत का चश्मा बहा दिया है—वर्ष 927 हिज़री (सन 1520-21)।"[57]

दूसरा शिलालेख स्वामी आनन्द आचार्य को बग़दाद से बाहर एक मक़बरे पर मिला। उन्होंने अपनी एक कविता में इस लेख का अनुवाद इस प्रकार किया है:

> "यहाँ हिंदू गुरु नानक ने फ़क़ीर बहलोल को अपने वचन सुनाए और इन साठ सख़्त सर्दियों में, जब से गुरु ईरान से गया, बहलोल की आत्मा ने गुरु के शब्द पर इस तरह विश्राम किया है, जिस तरह शहद की मक्खी, उषा की लाली से प्रकाशित शहद से भरे गुलाब पर बैठती है।"[58]

मक्का जाने का भाव अमली तौर पर मदीना जाना भी है। कोई कारण नहीं कि एक पवित्र शहर की यात्रा के बाद गुरु साहिब ने दूसरे शहर की यात्रा न की हो। भाई गुरदास ने इस ओर केवल इतना ही संकेत किया है:

गड़ बगदादु निवाइ कै मका मदीना सभे निवाइआ॥

वार 1: पउड़ी 37

अब गुरु साहिब अपनी उदासी के अंतिम पड़ाव पर पहुँच चुके थे। वे करतारपुर वापस आ गए और उदासी यानी यात्री का वेश उतार दिया।

कई लोगों का विश्वास है कि जब बाबर ने 1520ई. में सैदपुर (ऐमनाबाद) को लूटा उस समय गुरु नानक उस शहर में मौजूद थे। यह विचार अधिकतर गुरु साहिब के आदि ग्रन्थ में शामिल बाबर-वाणी[59] नाम से पुकारे जानेवाले शब्दों पर आधारित है। मानव-जाति के दु:ख के प्रति गहरी सहानुभूति और संवेदनशीलता के कारण गुरु साहिब के हृदय से दयापूर्ण वाणी का वह शक्तिशाली प्रवाह बहने लगा, जिसमें पीड़ा की गहरी भावना के साथ सूक्ष्म प्रतिरोध के भाव भी दिखाई देते हैं।[60] एक शब्द में गुरु साहिब कहते हैं:

जिन सिर सोहन पटीआ मांगी पाए संधूर॥
से सिर काती मुंनीअन्ह गल विच आवै धूड़॥
महला अंदर होदीआ हुण बहण न मिलन्ह हदूर॥
आदेस बाबा आदेस॥
आद पुरख तेरा अंत न पाइआ कर कर देखह वेस॥
जदहो सीआ वीआहीआ लाड़े सोहन पास॥
हीडोली चड़ आईआ दंद खंड कीते रास॥
उपरहो पाणी वारीऐ झले झिमकन पास॥
इक लख लहन्ह बहिठीआ लख लहन्ह खड़ीआ॥

गरी छुहारे खांदीआ माणन्ह सेजड़ीआ॥
तिन्ह गल सिलका पाईआ तुटन्ह मोतसरीआ॥
धन जोबन दुए वैरी होए जिन्ही रखे रंग लाए॥
दूता नो फुरमाइआ लै चले पत गवाए॥
जे तिस भावै दे वडिआई जे भावै दे सजाए॥
अगो दे जे चेतीऐ तां काइत मिलै सजाए॥
साहां सुरत गवाईआ रंग तमासै चाए॥
बाबरवाणी फिर गई कुइर न रोटी खाए॥
इकना वखत खुआईअह इकन्हा पूजा जाए॥
चउके विण हिंदवाणीआ किउ टिके कढह नाए॥
राम न कबहू चेतिओ हुण कहण न मिलै खुदाए॥
इक घर आवह आपणै इक मिल मिल पुछह सुख॥
इकन्हा एहो लिखिआ बह बह रोवह दुख॥
जो तिस भावै सो थीऐ नानक किआ मानुख॥

आदि ग्रन्थ, पृ.417

यह वर्णन बाबर की लूट और ज़ुल्म की विभीषिका का इतना सच्चा और सजीव चित्र पेश करता है कि इससे प्रभावित होकर मैकलॉड कह उठा: दु:ख और तबाही के इस वर्णन में वह ओज और तेजस्विता है तथा भावों की वह गहराई है, जो केवल सीधे निजी अनुभव से ही पैदा हो सकती है।[61]

अंतिम वर्ष

गुरु साहिब के जीवन का अंतिम काल 1520 से 1539 तक का है। यह सैदपुर की तबाही और लूटमार से लेकर उनके ज्योति-ज्योत समाने तक का समय है। उन्होंने यह सारा समय रावी नदी के किनारे करतारपुर गाँव में गुज़ारा। भाई गुरदास के अनुसार उन्होंने यहाँ एक गृहस्थ के वेश में सत्य के सच्चे मार्गदर्शक का जीवन व्यतीत किया:

फिरि बाबा आइआ करतार पुरि भेखु उदासी सगल उतारा।
पहिरि संसारी कपड़े मंजी बैठि कीआ अवतारा।

वार 1: पउड़ी 38

यहाँ गुरु साहिब ने परमेश्वर के सच्चे ज्ञान की वाणी उचारी, जिससे अज्ञानता का अँधेरा दूर हुआ और ज्ञान का प्रकाश फैला। उन्होंने सच्चे ज्ञान के सत्संग और सच के विचार का प्रवाह चलाया[62] और अपनी संगति में आनेवालों को अनहद शब्द की अखंड ध्वनि से जोड़ा:

बाणी मुखहु उचारीऐ हुइ रुसनाई मिटै अंधिआरा।
गिआन गोसटि चरचा सदा अनहदि सबदि उठे धुनकारा।

वार 1: पउड़ी 38

भाई गुरदास जी कहते हैं कि इस सच्चे गुरुमुख के बताए हुए मार्ग पर चलनेवाले लोग अथर्ववेद का भार उतारने में सफल हो गए।[63] भाव यह है कि उनको अंदर सच्चा ज्ञान प्राप्त हो गया। इसलिए उन्हें किसी बाहरी ज्ञान की आवश्यकता न रही। इस प्रकार गुरु साहिब ख़ुद सहज अवस्था का अनुपम जीवन व्यतीत कर रहे थे और उनकी संगति में आनेवाले जीव भी इससे अद्भुत लाभ प्राप्त कर रहे थे।

जीवन के इस दौर में गुरु साहिब द्वारा शुरू की गई दो महत्त्वपूर्ण प्रथाओं का वर्णन करना ज़रूरी है। ये हैं – लंगर और सेवा की प्रथाएँ। गुरु का लंगर, समानता, नम्रता और भ्रातृभाव का सूचक था, क्योंकि लंगर में संगत की सेवा में जुटे सभी लोग समान उद्देश्य के साथ जाति-पाँति तथा अमीरी-ग़रीबी के भेदभाव भुलाकर एक ही पंक्ति में बैठकर भोजन करते हैं। गुरु साहिब से मिलने आनेवाले बाहर के लोग भी उसी पंक्ति में बैठकर भोजन करते थे, जिससे पारमार्थिक विचारों वाले सभी लोग एक समान भाईचारे का अंग बन जाते थे। संगत के लिए कुएँ से पानी खींचना, ढोना, ईंधन लाना, आटा पीसना, भोजन पकाना और संगत में बरताना,

बर्तन साफ़ करना, झाड़ू देना आदि कार्य सेवा में शामिल थे। किसी काम को सांसारिक दृष्टि से जितना घटिया या नीचा गिना जाता, पारमार्थिक दृष्टि से उतना ही उसको अधिक फलदायक माना जाता था।

गुरु नानक साहिब के इस व्यस्त जीवन में कोई असाधारण घटनाएँ नहीं घटीं, जो जन्म-साखियों के लेखकों के लिए कहानी की सामग्री बन सकतीं। जन्म-साखियों के लेखकों ने इस समय की केवल दो घटनाएँ ही वर्णन-योग्य समझी हैं: एक, गुरु साहिब के सच्चे और वफ़ादार साथी भाई मरदाना का परलोक सिधारना और दूसरा, खडूर के भाई लहना का गुरु साहिब का प्रेमी शिष्य बनना और अंत में गुरु साहिब का उनको ही गुरु-गद्दी सौंपना।

मरदाना की आयु 76 वर्ष की हो चुकी थी। वह बीमार हो गया और इतना कमज़ोर हो गया कि उसके बचने की कोई आशा न रही। वह जन्म से मुसलमान था। गुरु साहिब ने उससे पूछा कि तुम्हारे मृतक शरीर का अंतिम संस्कार कैसे किया जाए? उसने उत्तर दिया कि जैसे भी आप ठीक समझो। फिर आपने पूछा, "तू कहे तो तेरा मक़बरा बनवा दें ताकि सारे संसार में तेरा नाम हो।" मरदाना ने कहा, "जब सतगुरु मेरी रूह को शरीर की क़ब्र में से आज़ाद कर रहे हैं तो मेरे शरीर को पत्थर के मक़बरे में क्यों क़ैद करना चाहते हैं?" अगले दिन सुबह मरदाना परलोक सिधार गया[64] और उसके शरीर को रावी नदी में प्रवाहित कर दिया गया। इस प्रकार उस रबाबी के शानदार जीवन का अंत हुआ, जिसने अपनी ज़िंदगी के सैंतालीस वर्षों का लंबा समय अपने सतगुरु की संगति में बिताया और उनकी परछाईं की तरह संसार के चारों कोनों में उनके साथ रहा। मरदाना के प्रति गुरु साहिब का इतना स्नेह था कि तलवंडी में आप बहुत निकट के संबंधियों या पड़ोसियों के साथ भी इतने प्रसन्न नहीं होते थे, जितने कि मरदाना के साथ।[65]

पाँचवीं पातशाही गुरु अर्जुन साहिब ने मरदाना का इतना अधिक सम्मान किया कि उसके तीन शब्द आदि ग्रन्थ में शामिल किए। इनमें से एक शब्द इस प्रकार है:

कल कलवाली काम मद मनूआ पीवणहार॥
क्रोध कटोरी मोह भरी पीलावा अहंकार॥
मजलस कूड़े लब की पी पी होए खुआर॥
करणी लाहण सत गुड़ सच सरा कर सार॥
गुण मंडे कर सील घिउ सरम मास आहार॥
*गुरमुख पाईऐ नानका खाधै जाहे बिकार॥**

आदि ग्रन्थ, पृ.553

भाई लहना का करतारपुर में बड़ी शुभ घड़ी में आगमन हुआ। उनका जन्म मुक्तसर के निकट सराय नागा नामक गाँव में हुआ था, परंतु वह छोटी आयु में ही अपने परिवार के साथ खडूर में आ बसे। खडूर साहिब करतारपुर से 60 मील की दूरी पर है। यहाँ गुरु नानक साहिब का जोधा नामक एक भक्त रहता था जिसके होठों से सदा 'गुरु-गुरु' की ध्वनि सुनाई देती थी। गाँव के लोग दुर्गा के पुजारी थे[66] और उसकी गुरुभक्ति का मज़ाक उड़ाया करते थे। भाई लहना अपने साथियों के साथ हर साल हिमालय की ढलानों में स्थित ज्वालामुखी की यात्रा के लिए जाया करते थे। एक दिन भाई जोधा, गुरु साहिब की वाणी के कुछ शब्द गा रहा था। भाई लहना पर इन शब्दों का इतना गहरा प्रभाव पड़ा कि अपने साथियों के साथ ज्वालामुखी की यात्रा के लिए जाते हुए उन्होंने अपने मन में करतारपुर में गुरु साहिब के दर्शन करने का निश्चय किया।

गुरु नानक साहिब के साथ पहली मुलाक़ात में ही भाई लहना के सभी सवाल और संशय दूर हो गए। उन्हें गुरु साहिब की संगति में अद्भुत अकथनीय शांति और आनंद प्राप्त हुआ जो पहले कहीं और नहीं मिला था।

* **कल...बिकार**=कलियुग की कड़ाही में काम की शराब निकाली जा रही है और मन शराबी है। क्रोध का प्याला मोह से भरा हुआ है और हौंमैं पिला रही है। झूठ की सभा में बैठकर यह नशा पीनेवाला तबाह हो रहा है। इसके विपरीत यदि कोई सतगुरु की संगति में जाकर शुभ कर्मों की कड़ाही में, निर्मलता का गुड़ डालकर, नाम की शराब निकालकर पिये और इसके साथ नेकी की रोटियाँ, संयम का घी और करनी का मांस खाए तो उसके सभी विकार दूर हो जाएँ।

उनकी खोज ख़त्म हुई, उनका सफ़र समाप्त हो गया। उन्होंने घंटियों को दूर फेंक दिया जिनको बजाते हुए वे देवी के सामने नाचा करते थे। गुरु साहिब ने पूछा, "भाई, तेरा नाम क्या है?" जवाब मिला, "जी, मेरा नाम लहना है।" गुरु साहिब बोले, "हाँ, भाई, तुझे हमसे कुछ लेना है, इसीलिए अकालपुरुष ने तुझे हमारे पास भेजा है।"[67] 'लहना' का अर्थ 'लेना' है। भाई लहना ने गुरु साहिब से वह दात ली, जो केवल उनके लिए ही रखी गई थी और समय पाकर वह आपके उत्तराधिकारी बने। जो गुरु नानक थे, वही लहना बन गए, जैसा गुरु था, वैसा ही शिष्य बन गया।[68]

थापिआ लहिणा जीवदे गुरिआई सिर छतर फिराइआ।
जोती जोति मिलाइकै सतिगुर नानक रूप वटाइआ।
लखि न कोई सकई आचरजे आचरज दिखाइआ।
काइआ पलटि सरूप बणाइआ॥

वार1: पउड़ी 45

संसार से प्रस्थान

पुरातन जन्म-साखी में गुरु नानक साहिब के संसार से प्रस्थान का बड़ा सजीव और प्रभावशाली वर्णन किया गया है। ऐसा लगता था कि वृद्धावस्था में प्रवेश करके गुरु साहिब ने संसार से प्रस्थान करने का विचार कर लिया। गुरु साहिब ने भाई लहना को अपने स्थान पर नियुक्त करके उनको अंगद के नाम से संबोधित किया, जिसका भाव है कि यह मेरा ही अंग है।[69] इससे हर ओर ख़बर फैल गई कि सतगुरु अंतिम सफ़र की तैयारी में हैं। संगत सतगुरु के अंतिम दर्शनों के लिए एकत्रित होने लगी।

गुरु साहिब का परिवार, सारे मित्र, संबंधी और शिष्य असह्य पीड़ा का अनुभव कर रहे थे और सबके नेत्रों से आँसुओं की वर्षा हो रही थी। गुरु साहिब ने उनको धीरज बँधाया और रोने से मना किया। आपने उस समय निम्नलिखित शब्द का उच्चारण किया और संगत को उपदेश किया कि वह परमपिता परमात्मा ख़ुद ही जगत का कर्ता है और ख़ुद

ही सबको संसार में भेजनेवाला और वापस बुलानेवाला है। संसार में चार दिन रहकर हर एक को यहाँ से चले जाना है और आगे जाकर हर एक को अपने किए हुए कर्मों का फल भोगना है। इस संसार में आकर सदा उस परमेश्वर के नाम में लीन रहना चाहिए, क्योंकि केवल उनका ही संसार में आना सफल है जो एक मन और एक चित्त होकर उस परमपिता का ध्यान करते हैं। किसी की मौत पर रोना व्यर्थ है क्योंकि जो कुछ हो रहा है, कुलमालिक के भाणे यानी मौज में हो रहा है। वास्तव में संसार के अज्ञानी लोग माया के प्रभाव के अधीन रोते और दुःखी होते हैं। सच्चा रोना वह है जो उस परमात्मा के प्रेम का सूचक हो, नहीं तो बाक़ी किसी तरह के रोने का कोई लाभ नहीं। यहाँ किसी भी चीज़ का मान करना व्यर्थ है, क्योंकि जो कोई संसार में आया है, उसे यहाँ से अवश्य चले जाना है। इसलिए मन में परमात्मा की सच्ची प्रीति और सच्चा विरह होना चाहिए।

धंन सिरंदा सचा पातसाह जिन जग धंधै लाइआ॥
मुहलत पुनी पाई भरी जानीअड़ा घत चलाइआ॥
जानी घत चलाइआ लिखिआ आइआ रुंने वीर सबाए॥
कांइआ हंस थीआ वेछोड़ा जां दिन पुंने मेरी माए॥
जेहा लिखिआ तेहा पाइआ जेहा पुरब कमाइआ॥
धंन सिरंदा सचा पातसाह जिन जग धंधै लाइआ॥
साहिब सिमरहो मेरे भाईहो सभना एह पइआणा॥
एथै धंधा कूड़ा चार दिहा आगै सरपर जाणा॥
आगै सरपर जाणा जिउ मिहमाणा काहे गारब कीजै॥
जित सेविऐ दरगह सुख पाईऐ नाम तिसै का लीजै॥
आगै हुकम न चलै मूले सिर सिर किआ विहाणा॥
साहिब सिमरिहो मेरे भाईहो सभना एह पइआणा॥
जो तिस भावै संम्रथ सो थीऐ हीलड़ा एह संसारो॥
जल थल महीअल रव रहिआ साचड़ा सिरजणहारो॥

साचा सिरजणहारो अलख अपारो ता का अंत न पाइआ॥
आइआ तिन का सफल भइआ है इक मन जिनी धिआइआ॥
ढाहे ढाह उसारे आपे हुकम सवारणहारो॥
जो तिस भावै संम्रथ सो थीऐ हीलड़ा एह संसारो॥
नानक रुंना बाबा जाणीऐ जे रोवै लाए पिआरो॥
वालेवे कारण बाबा रोईऐ रोवण सगल बिकारो॥
रोवण सगल बिकारो गाफल संसारो माइआ कारण रोवै॥
चंगा मंदा किछ सूझै नाही इह तन एवै खोवै॥
ऐथै आइआ सभ को जासी कूड़ करहो अहंकारो॥
नानक रुंना बाबा जाणीऐ जे रोवै लाए पिआरो॥

आदि ग्रन्थ, पृ.578-579

यह शब्द सुनकर सभी संगत और उनके संबंधी वाणी के शब्द गाने लगे। सारा वातावरण पवित्र गीतों की दिव्य-ध्वनि से गूँज उठा। पुरातन जन्म-साखी में वर्णन है कि इस पर गुरु साहिब समाधि में अंतर्ध्यान हो गए और बारह माहा का उच्चारण किया, जिसमें आत्मा की परमात्मा के साथ गहरी तड़प और वेदना को गीतबद्ध किया गया है। सारे बारह माहा में स्त्री और पुरुष के रूपक द्वारा जीवात्मारूपी विरहिणी का परमात्मारूपी पति से मिलाप की तड़प का भावमय वर्णन किया गया है।

शब्दों के गायन का यह क्रम समाप्त होने पर गुरु साहिब ने अपनी वाणी की पोथी भी गुरु अंगद साहिब को सौंप दी। इस समय रात का अंतिम पहर समाप्त हो गया था और प्रभात हो चुका था। जन्म-साखी में गुरु साहिब के अंतिम क्षणों का वर्णन इस प्रकार किया गया है:

तब गुरु साहिब से नाम धारण करनेवाले मुसलमानों ने कहा कि हम मृतक शरीर को दफ़नाएँगे। नाम धारण करनेवाले हिंदुओं ने कहा कि हम इसे जलाएँगे। गुरु साहिब ने कहा कि तुम अपने-अपने फूल रख दो। यदि कल को हिंदुओं के फूल हरे रहेंगे तो शरीर को जला देना और यदि मुसलमानों के हरे रहें तो इसे दफ़ना देना। तब गुरु साहिब ने संगत को

वाणी का पाठ-कीर्तन करने का हुक्म दिया। हुक्म अनुसार संगत पाठ पढ़ने और कीर्तन करने लगी।*[70]

जै घर कीरत आखीऐ करते का होए बीचारो॥
तित घर गावहो सोहिला सिवरिहो सिरजणहारो॥
तुम गावहो मेरे निरभउ का सोहिला॥
हउ वारी जित सोहिलै सदा सुख होए॥
नित नित जीअड़े समालीअन देखैगा देवणहार॥
तेरे दानै कीमत ना पवै तिस दाते कवण सुमार॥
संबत साहा लिखिआ मिल कर पावहो तेल॥
देहो सजण असीसड़ीआ जिउ होवै साहिब सिउ मेल॥
घर घर एहो पाहुचा सदड़े नित पवंन॥
सदणहारा सिमरीऐ नानक से दिह आवंन॥

आदि ग्रन्थ, पृ. 12

फिर जप जी के अंत में आनेवाला श्लोक पढ़ा गया और गुरु साहिब अपने ऊपर चादर खींचकर लेट गए। जन्म-साखी में आता है:

जब श्लोक पढ़ा गया तो गुरु साहिब ने चादर ओढ़ ली। संगत ने माथा टेका। चादर उठाई गई तो वहाँ कुछ न था। परंतु फूल हिंदू व मुसलमान दोनों के हरे रहे। दोनों अपने-अपने फूल ले गए। सारी संगत चरणों पर गिर पड़ी।†[71]

* तब हिंदू मुसलमान नाऊ धरीक लगे आखणि। मुसलमान लगे आखणि 'असीं दबहिंगे।' अते हिंदू लागे आखणि 'जो असीं जलाहांगे।' तब बाबे आखिआ, जो तुसां दोहींवली फुल रखहु, जिसके भलके हरे रहिनगे, जे हिंदुआं दे हरे रहनि जालहिंगै अतै जो मुसलमानां के हरे रहिनगे तां दबहिंगे। तब बाबै संगति नूं हुकमु कीता, कीरतनु पड़हु तब संगति लगी कीरतन पड़णि।

† जब शलोक पड़िआ, तब बाबै चादर ऊपरि लै करि सुता। संगति मथा टेकिआ। जब चादर उठावनि ता कुछ नाही। तदहुं फुल दुहां के हरै रहै। हिंदू आपणे लै गए अते मुसलमान आपणै लै गए। सरबत संगति पैरी गई।

गुरु नानक साहिब ने 7 सितंबर, 1539* के दिन अपना पंचभौतिक शरीर त्याग दिया। गुरु साहिब ख़ुद नाशवान संसार से चले गए परंतु आप आनेवाली पीढ़ियों के लाभ के लिए एक अथाह रूहानी विरासत छोड़ गए।

गुरु साहिब की इच्छा के विरुद्ध उनके अनुयायियों ने उनकी याद में कई भवन बनवाए, परंतु इन सबको रावी नदी अपने साथ बहाकर ले गई। यह देखकर उनके अनुयायियों और परिवार के सदस्यों ने रावी के दूसरे किनारे पर डेरा बाबा नानक नामक क़स्बा बसाया। यहाँ रहनेवाले निवासी अपने पूर्वजों को ही इस क़स्बे को बसाने का श्रेय देते हैं।

* यह तारीख़ आदि ग्रन्थ की करतारपुरी बीड़ में दर्ज तारीख़ से मेल खाती है, जो गुरु अर्जुन साहिब द्वारा लिखवाई गई मूल बीड़ है। डेरा बाबा नानक में इसी दिन गुरु साहिब के ज्योति-जोत समाने का पर्व मनाने का रिवाज चला आ रहा है। अलग-अलग जन्म-साखियों में गुरु साहिब के प्रभु में समा जाने की अलग-अलग तारीख़ें दी गई हैं। परंतु बाले की जन्म-साखी में दी गई तारीख़ 7 सितंबर, 1539 है। मैकलॉड ने भी अपनी पुस्तक गुरु नानक एण्ड द सिक्ख रिलीजन (पृ. 101) में यही तारीख़ मानी है।

उपदेश

अखी बाझहो वेखणा विण कंना सुणणा॥
पैरा बाझहो चलणा विण हथा करणा॥
जीभै बाझहो बोलणा इउ जीवत मरणा॥
नानक हुकम पछाण कै तउ खसमै मिलणा॥[1]

सबदै धरती सबदै अकासु।
सबदै सबद होआ परगासु।
सारी स्रिस्टि सबद कै पाछै।
नानक सबद घटै घटि आछै॥[2]

बिन सतगुर किनै न पाइओ॥
बिन सतगुर किनै न पाइआ॥[3]

कर्मकांड का खंडन

जब संसार अज्ञानता के अंधकार में फँस जाता है और विषय-विकारों की दासता में जकड़ा जाता है, तब लोगों को इन बुराइयों से मुक्त करने के लिए संत-महात्मा और पीर-पैग़ंबर संसार में प्रकट होते हैं। गुरु नानक साहिब का संसार में उस समय जन्म हुआ जब यहाँ सच्चा धर्म लुप्त हो रहा था। क्या हिंदू और क्या मुसलमान दोनों ही कर्मकांड, रीति-रिवाज और शरीअत को ही सच्चा धर्म समझने लगे थे। जनेऊ पहनना, मस्तक पर केसर का तिलक लगाना, बिना विचार या भाव के मशीन की तरह

माला फेरे जाना और देवी-देवताओं को प्रसन्न करने के लिए पशुओं और मनुष्यों तक की बलि देने को धर्म का नाम दिया जाने लगा था। एक निराकार परमात्मा की सच्ची भक्ति का मार्ग अनेक छोटे-बड़े इष्टों की पूजा और आराधना के जंगल में खो चुका था।

गुरु साहिब ने ज़ोरदार शब्दों में मूर्ति-पूजा का खंडन किया। उन्होंने समझाया कि मूर्ति-पूजा का कोई पारमार्थिक लाभ नहीं है; बल्कि चेतन जीव का जड़ पत्थरों की पूजा करना आत्मा को ऊँचा उठाने के बजाय नीचे गिरानेवाला कर्म है। गुरु साहिब बड़े सुंदर ढंग से समझाते हैं कि हे पाँड़े! तूने अपने घर में मूर्तियों के रूप में इष्ट और अनेक देवताओं की सभा सजाई हुई है। तू अज्ञानतावश इनको सच्चे देवता समझकर स्नान कराता है, धूप, फूल, केसर आदि चढ़ाता है और झुक-झुककर इनके आगे माथा रगड़ता है। इतना सब करने के बावजूद तुझे रोटी-कपड़े के लिए दूसरों के आगे हाथ फैलाने पड़ते हैं। ये पत्थर के ठाकुर न तो तेरी भूख ख़त्म कर सकते हैं और न ही मौत से बचा सकते हैं:

घर नाराइण सभा नाल॥ पूज करे रखै नावाल॥
कुंगू चंनण फुल चड़ाए॥ पैरी पै पै बहुत मनाए॥
माणूआ मंग मंग पैन्है खाए॥ अंधी कंमी अंध सजाए॥
भुखिआ दे न मरदिआ रखै॥ अंधा झगड़ा अंधी सथै॥[4]

उस समय के जैन और बौद्ध भी इस प्रकार की रूहानी गिरावट के दोष से पूरी तरह मुक्त नहीं थे। उस समय के क़रीब-क़रीब सभी धर्म अंधविश्वास, ढोंग, कपट और दिखावे का रूप धारण कर चुके थे। वास्तव में, लोग धर्म की गिरी यानी सारतत्त्व को खो चुके थे और उसके छिलके से ही संतुष्ट हो रहे थे।

गुरु नानक साहिब उन महान संतों की परंपरा में से हैं, जिन्होंने परमपिता परमेश्वर के साक्षात निजी अनुभव को ही सच्चे धर्म का सार माना है। गुरु साहिब ने अपने समय के धर्मों में प्रचलित जाति-पाँति,

देश, क़ौम आदि के छोटे-बड़े सभी बंधनों को तोड़ा और अनेक प्रकार के कर्मकांड का खंडन किया। गुरु साहिब मानव-मन को अंधविश्वास, हठधर्मिता और संकीर्णता के जाल से मुक्त करने के लिए आए थे। उन्होंने प्रचलित विश्वासों को केवल बुद्धि और तर्क की कसौटी पर परखने का उपदेश नहीं दिया, क्योंकि इससे जीव के संदेह और संशय की अँधेरी गली में खो जाने का ख़तरा होता है। उन्होंने विवेक और तर्क के साथ-साथ एक आशा तथा आनंद का संदेश भी दिया जो अज्ञानता, अविश्वास और निराशा के चारों ओर फैले हुए अंधकार और उदासी को ख़त्म करने में समर्थ था।

मनुष्य की सर्वोच्चता

गुरु साहिब ने बताया कि मनुष्य-जन्म एक विशेष उद्देश्य की सिद्धि के लिए है, आपकी शिक्षा ने इस ध्येय की प्राप्ति का सीधा मार्ग बताया। हालाँकि यह उपदेश या मार्ग नया नहीं था, क्योंकि भारत के प्राचीन ग्रंथों में भी इसका वर्णन है, परंतु सदियाँ बीत जाने के कारण लोग इस उपदेश यानी मार्ग को भूल चुके थे। गुरु साहिब ने ऐसे सुंदर ढंग से इसे पुनर्जीवित किया कि यह उपदेश न केवल नया, बल्कि प्रभावशाली भी प्रतीत होने लगा। गुरु साहिब ने अपने समय के लोगों को यह बात समझाई कि मनुष्य का जीवन पशुओं की ज़िंदगी की तरह उद्देश्यहीन नहीं है। मनुष्य केवल इसलिए संसार में नहीं आया कि वह पशुओं की तरह पैदा होकर, खा-पीकर यहाँ से चला जाए। चौरासी लाख योनियों के अनंत प्रसार में केवल मनुष्य को ही यह महिमा दी गई है कि वह जन्म-मरण यानी आवागमन के निरंतर चक्र को तोड़कर अपनी आत्मा को इससे आज़ाद कर ले। यह रचना चौरासी लाख योनियों का एक बड़ा जेलख़ाना है, जिसमें से बाहर निकलने का केवल एक ही दरवाज़ा है। वह दरवाज़ा मनुष्य-जन्म है। केवल मनुष्य को ही संसाररूपी जेल से छुटकारा प्राप्त करने की शक्ति दी गई है। इस दृष्टि से मनुष्य को सारी सृष्टि में सबसे ऊँचा पद प्राप्त है।

गुरु अर्जुन साहिब कहते हैं:

लख चउरासीह जोन सबाई॥
माणस कउ प्रभ दीई वडिआई॥
इस पउड़ी ते जो नर चूकै
सो आए जाए दुख पाइदा॥[5]

कबीर साहिब उपदेश देते हैं:

इस देही कउ सिमरह देव॥
सो देही भज हर की सेव॥[6]

परमात्मा न केवल मनुष्य-शरीर में विराजमान है, बल्कि वह शरीर के अंदर ही प्रकट होता है। इस प्रकार मनुष्य-जन्म को दोहरी महिमा मिली हुई है, क्योंकि मनुष्य-शरीर में परमात्मा मौजूद है और इसी में वह प्राप्त होता है।

गुरु अमरदास जी कहते हैं कि परमेश्वररूपी अनमोल रत्न मनुष्य-शरीर में ही प्राप्त होता है, परंतु मनमुख लोग यह बात मानने के लिए तैयार नहीं होते कि मनुष्य का शरीर ही असली हरिमंदिर है:

हर मंदर एह सरीर है गिआन रतन परगट होए॥
मनमुख मूल न जाणनी माणस हर मंदर न होए॥[7]

गुरु रामदास जी ने भी कहा है कि मनुष्य-शरीर वह ख़ूबसूरत शहर है, जिसमें बैठकर हरिरस यानी सच्चे अमृत का व्यापार किया जा सकता है:

काइआ नगर नगर है नीको विच सउदा हर रस कीजै॥[8]

उस अंदर बैठे हुए परमात्मा को बाहर ढूँढ़ना अज्ञानता भी है और मूर्खता भी। अंतर में मौजूद परमेश्वर को बाहर मंदिरों, मसजिदों, गिरजाघरों, तीर्थों, नदियों, सरोवरों, जंगलों, पहाड़ों, पेड़-पौधों, पशु-पक्षियों आदि में ढूँढ़ने

का कोई भी प्रयत्न किसी हालत में सफल नहीं हो सकता। संत-महात्माओं और गुरु साहिबान ने ऐसे सभी प्रयत्नों का खंडन किया है। गुरु रामदास जी कहते हैं कि जो व्यक्ति परमात्मा को शरीर से बाहर ढूँढ़ता फिर रहा है, वह मूर्ख और अज्ञानी है। वह उस हिरन के समान है जो अपनी नाभि में पड़ी कस्तूरी की खोज में बाहर झाड़ियों में भटकता फिरता है:

विण काइआ जे होर थै धन खोजदे से मूड़ बेताले॥
से उझड़ भरम भवाईअह जिउ झाड़ मिरग भाले॥[9]

गुरु नानक साहिब समझाते हैं कि हमारा शरीर ही परमात्मा के रहने का असली मंदिर है और हमारे शरीर के अंदर ही, इस मंदिर में प्रवेश करने का दरवाज़ा है। यह काया एक क़िला या महल है, जिसमें वह सच्चा प्रभु अपने सुलतानी तख़्त पर विराजमान है। काया के अंदर चौदह भुवन, सूर्य, चंद्र आदि हैं और काया के अंदर ही परमात्मा और उसके नाम का अमोलक धन है। जो लोग गुरुमुखों के सुझाव के अनुसार अंदर जाते हैं, वे माया के हर तरह के ज़हर से बच जाते हैं और उनको अंदर ही प्रभुरूपी वास्तविक धन प्राप्त हो जाता है:

घर दर मंदर जाणै सोई॥ जिस पूरे गुर ते सोझी होई॥
काइआ गड़ महल महली प्रभ साचा सच साचा तखत रचाइआ॥
चतुर दस हाट दीवे दुए साखी॥ सेवक पंच नाही बिख चाखी॥
अंतर वसत अनूप निरमोलक गुर मिलिऐ हर धन पाइआ॥[10]

आप समझाते हैं कि हमारा शरीर ही उत्तम से उत्तम हरिमंदिर है। इसमें पाँच बड़े-बड़े खंड या मंडल हैं। उन सब मंडलों से ऊपर वह निराकार परमेश्वर विराजमान है। शरीर में मौजूद प्रभु हमें नज़र नहीं आता, क्योंकि हमारा ज्ञान और ध्यान दोनों केवल शरीर के नौ द्वारों तक ही सीमित है। ये नौ द्वार सांसारिक कारोबार के लिए हैं। वह सर्वशक्तिमान परमात्मा इंद्रियों से परे और निर्लिप्त है। वह इन नौ द्वारों, मन और बुद्धि

के मंडलों से परे और ऊपर है। जब हम उसकी कृपा से शरीर के अंदर दसवें दरवाज़े में दाख़िल हो जाते हैं तो उस अलख प्रभु को अपने अंदर ही लख लेते हैं:

देही नगरी ऊतम थाना॥ पंच लोक वसह परधाना॥
ऊपर एकंकार निरालम सुंन समाध लगाइआ॥
देही नगरी नउ दरवाजे॥ सिर सिर करणैहारै साजे॥
दसवै पुरख अतीत निराला आपे अलख लखाइआ॥[11]

केवल गुरु नानक और भारत के संत-महात्माओं या इस देश के ग्रंथ-शास्त्रों ने ही, मनुष्य-देह की इतनी महिमा नहीं की है। क़ुरान शरीफ़ में भी इनसान को अशरफ़ुल-मख़लूकात यानी सारी रचना में सबसे श्रेष्ठ माना गया है। बाइबल में भी ज़िक्र है कि परमात्मा ने इनसान को अपनी शक्ल पर बनाया है। (जैनेसिस 1:27)। इस तरह गुरु साहिब ने ऐसे सच का वर्णन किया जिसका संसार के लगभग सभी बड़े धर्मों ने उल्लेख किया है, परंतु उस सच को लोग काफ़ी समय से भूल चुके थे।

रूहानी ज्ञान

गुरु नानक साहिब के उपदेश का मूल तत्त्व और वास्तविक केंद्र यह विचार है कि मनुष्य अपने अंदर ही परमात्मा के दर्शन कर सकता है। यह निजी अनुभव सभी प्रयत्नों और इच्छाओं की पूर्ति यानी मंज़िल है। इससे मनुष्य समय-स्थान की क़ैद और इनके साथ जुड़ी हुई सब कमज़ोरियों और कमियों से ऊपर उठ जाता है। इससे मनुष्य एक ओर तो जन्म-मरण और सुख-दुःख के चक्र से आज़ाद हो जाता है, दूसरी ओर इस अवस्था की प्राप्ति से मनुष्य अमर आनंद, अनंत सुंदरता और स्थायी शांति का भागीदार बन जाता है। यह अवस्था समयहीनता या अनंतता की सूचक है, इसलिए यह आदि-अंत, उतार-चढ़ाव और घट-बढ़ के नियमों से भी मुक्त है। समय से मुक्त होने के कारण यह अवस्था कारण और कार्य या

कर्म और फल से भी ऊपर है, क्योंकि कारण और कार्य या कर्म और फल का संबंध भी समय से जुड़ा हुआ है। कर्म और फल का वास्तविक अर्थ ही यह है कि एक समय में किया गया कर्म समय पाकर फल देता है। परंतु जो जीव समय की सीमा से ऊपर उठ जाता है, वह अपने आप ही कर्म और फल की सीमा से भी ऊपर उठ जाता है।

परमात्मा को अंदर प्राप्त कर लेने के इस निजी अनुभव को ही आत्मिक अनुभव, रूहानी अनुभव या रहस्यवादी अनुभव की संज्ञा दी गई है। यह अवस्था न ख़याली है, न बनावटी। इसका संबंध न तो मनोविज्ञान से है, न शरीर की परा-शक्तियों से। न यह बुद्धि के दायरे की वस्तु है और न तर्क के। यह भाव और विचार से परे और पार की ऐसी अकथ कथा है, जिसका वर्णन न कोई भाषा कर सकती है और न ही जिसका मुक़ाबला बाहरी जगत की किसी वस्तु या अवस्था से किया जा सकता है। यह ऐसी अवस्था है, जिसमें सारी सृष्टि की अनेकता के पीछे विचर रही एक ऐसी मूल एकता का जीता-जागता अनुभव हो जाता है जो मन, इंद्रियों, तर्क और बुद्धि से परे की वस्तु है।

गुरु अर्जुन साहिब फ़रमाते हैं: *नानक एको रव रहिआ दूसर होआ न होग॥*[12] संत नामदेव जी कहते हैं: *सभ गोबिंद है सभ गोबिंद है गोबिंद बिन नहीं कोई॥*[13] मौलाना रूम का कथन है: *हम कूज़ा ओ हम कूज़ागर ओ हम मिल्ल-ए-कूज़ा।*[14] भाव यह है कि वह ख़ुद ही बर्तन है, ख़ुद ही कुम्हार है और ख़ुद ही बर्तन की मिट्टी है। वास्तव में यह ऐसी पूर्ण अद्वैत यानी एकता की अवस्था है कि इसमें देखनेवाला और दृश्य, साधक और साध्य, पुजारी और इष्ट का द्वैत समाप्त हो जाता है। इस अवस्था में परम आनंद की प्राप्ति के साथ-साथ आश्चर्यमयी सुंदरता और अद्भुत शांति का भी अनुभव होता है। सभी पूर्ण संतों की वाणी इसका संकेत देती है। इस अनुपम अवस्था में जीव दृश्यमान जगत की अनेकता से सिमटकर अदृश्यमान परम सत्य की पूर्ण एकता में समा जाता है। परम सत्य की प्राप्ति के अपूर्व आनंद में लीन होकर उसका रूप हो जाना ही इस रहस्यमय रूहानी अनुभव का वास्तविक सार है। गुरु नानक साहिब

कहते हैं: *नामे राते अनदिन माते नामै ते सुख होई॥*[15] फिर फ़रमाते हैं: *नानक भगता भुख सालाहण सच नाम आधार॥ सदा अनंद रहहे दिन राती गुणवंतिआ पा छार॥*[16]

रूहानियत का यह अलौकिक आनंद इंद्रियों का विषय नहीं है। यह इंद्रियों के सीमित सुख-दुःख से भिन्न तथा घट-बढ़, उतार-चढ़ाव, आदि-अंत से परे और ऊपर है। यह ऐसा अजर, अमर और अथाह अनुभव है जो समय तथा स्थान से उत्पन्न परिवर्तनों से मुक्त है। इस अवस्था में पहुँचकर जन्म-मरण यानी आवागमन के हर प्रकार के बंधन ख़त्म हो जाते हैं। गुरु साहिब बताते हैं कि कोई विरला सौभाग्यशाली जीव ही पूरे गुरु के उपदेश पर चलकर इस अवस्था तक पहुँचता है:

गुरमुख कोई सच कमावै॥ आवण जाणा ठाक रहावै॥[17]

अकथ कहाणी पद निरबाणी को विरला गुरमुख बूझए॥[18]

इस अवस्था में पहुँचकर ही साधक को सच्चे जीवन की प्राप्ति का आभास होता है। उसको पता चलता है कि मन-इंद्रियों के जगत, या फिर समय और स्थान के संसार का असल में अपना कोई स्वतंत्र अस्तित्व नहीं है; यह किसी अदृष्ट असलियत की परछाईं और माया का छलावा-मात्र है। गुरु साहिब इसका वर्णन करते हुए कहते हैं:

सो जीविआ जिस मन वसिआ सोए॥
नानक अवर न जीवै कोए॥[19]

ऐथै गोइलड़ा दिन चारे॥ खेल तमासा धुंधूकारे॥
बाजी खेल गए बाजीगर जिउ निस सुपनै भखलाई हे॥[20]

जो लोग सतगुरु के बताए हुए मार्ग पर चलकर उस निश्चल अवस्था को प्राप्त कर लेते हैं, वे माया की ढलती हुई परछाईं और छलपूर्ण प्रसार से सदा के लिए मुक्त हो जाते हैं:

साच महल गुर अलख लखाइआ॥
निहचल महल नही छाइआ माइआ॥[21]

इस अवस्था की प्राप्ति का मार्ग बहुत कठिन है। कई दार्शनिकों और महात्माओं ने इसको तलवार की धार जैसा मार्ग कहा है। परंतु जब मंज़िल पर पहुँच जाते हैं तो फल भी अमूल्य मिलता है, इस मार्ग में जितनी मुसीबतें उठानी पड़ती हैं उनका पूरा मुआवज़ा भी मिल जाता है। गुरु साहिब फ़रमाते हैं कि इस अवस्था को पाकर मन के सभी विकार और बंधन दूर हो जाते हैं तथा आत्मा निर्मल और पवित्र हो जाती है:

पंच तसकर धावत राखे चूका मन अभिमान॥
दिसट बिकारी दुरमत भागी ऐसा ब्रहम गिआन॥[22]

पीछे वर्णन किया गया है कि इस सत्य की प्राप्ति जीव को अपने अंदर होती है और इस अंतर्मुख अनुभव की प्राप्ति ही सच्चे धर्म या सच्ची रूहानियत का सार है। प्रसिद्ध सूफ़ी संत मौलाना रूम कहते हैं कि बाहरी जगत की ओर खुले इंद्रियों के द्वार बंद करने से अंदर ही सत्य का भेद प्राप्त हो जाता है। वे दावा करते हैं कि यदि शरीर के नौ दरवाज़े बंद करने से भी हक़ अर्थात् परमात्मा का भेद प्रकट न हो तो मुझे जो मरज़ी कहें:

चश्म बंद ओ गोश बंद ओ लब बबंद।
गर न बीनी सिर्रे हक़्क़ बर मन बखंद।[23]

गुरु रामदास जी ने भी संकेत किया है कि जब शरीर के नौ द्वार बंद करके दसवें दरवाज़े में दाख़िल हो जाते हैं तो इंद्रियों के भोग फीके लगने लगते हैं और अंदर ऐसे आनंददायक अमृत की प्राप्ति हो जाती है, जिसको पाकर मन और आत्मा सदा के लिए शांत हो जाते हैं: *नउ दरवाज नवे दर फीके रस अंम्रित दसवे चुईजै॥*[24]

रूहानी प्राप्ति और सदाचार

सदाचार में नेकी-बदी, भले-बुरे का प्रश्न उठाया जाता है, परंतु परमात्मा में समाकर परमात्मा का रूप हो चुका व्यक्ति इस द्वैत से भी मुक्त हो जाता है। गुरु अमरदास जी कहते हैं कि जब सब जीवों का कर्ता एक परमात्मा है तो अच्छा किसे कहा जाए और बुरा किसे:

जीअ जंत सभ तिस दे सभना का सोई॥
मंदा किस नो आखीऐ जे दूजा होई॥[25]

इसी प्रकार सदाचार पर दृढ़ रहनेवाले लोग नेकी और प्रेम के शुभ गुणों पर ज़ोर देते हैं। यह अच्छी बात है, परंतु परमात्मा के भक्त या प्यारे इस बात पर ज़ोर देते हैं कि संपूर्ण नेकी, भलाई तथा सच्चे प्रेम का स्रोत वह परमपिता परमात्मा है। वे कहते हैं कि सदाचार के गुण धारण करने चाहिएँ; परंतु जब तक मनुष्य भले-बुरे और राग-द्वेष के द्वैत से मुक्त नहीं हो जाता, न वह सच्ची नेकी का रूप बन सकता है और न ही सच्चे प्रेम का। सारी बुराई की जड़ द्वैत या अहंकार है। जो व्यक्ति अपने अंदर बदी की जड़ को काट देता है, वह सदा के लिए बदी की पकड़ से आज़ाद हो जाता है और नेकी का साक्षात रूप बन जाता है। जब हौंमैं को दूर करने से द्वैत भाव ही समाप्त हो जाता है तो वह बुराई किससे कर सकता है? गुरु साहिब बड़े सुंदर ढंग से समझाते हैं:

हउ हउ मै मै विचहो खोवै॥ दूजा मेटै एको होवै॥[26]

नानक सा सोहागण कंती पिर कै अंक समावए॥[27]

प्रेम पदारथ पाईऐ गुरमुख तत वीचार॥
सा धन आप गवाइआ गुर कै सबद सीगार॥[28]

इस प्रकार जब जीवात्मा उस प्रेम के स्वरूप प्रभु में लीन हो जाती है तो वह स्वयं भी प्रेम का रूप हो जाती है और उसके अंदर दूसरों के लिए भी प्रेम उमड़ने लगता है। गुरु साहिब ने और अन्य संत-महात्माओं ने आत्मा

और परमात्मा के प्यार को समझाने के लिए स्त्री और पुरुष के रूपक को अपनाया है। यद्यपि यह रूपक उस अनंत प्रेम की धुँधली-सी परछाईं ही प्रस्तुत कर सकता है, परंतु इससे पता चलता है कि जीवात्मारूपी स्त्री को सच्चा सुख और सच्ची शांति, केवल परमात्मारूपी पति के मिलाप से ही मिल सकती है। जब वह उस प्रीतम के प्यार में समाकर सहज अवस्था को प्राप्त कर लेती है तो वह दिन-रात अर्थात् आठों पहर उस प्यार के आनंद में मग्न रहती है। उस हालत में ही वह अपने प्रीतम के पैदा किए जीवों के साथ सच्चा प्यार कर सकने में समर्थ हो सकती है।

गुरु साहिब फ़रमाते हैं:

आपणे कंत पिआरी सा सोहागण नानक सा सभराई॥
ऐसै रंग राती सहज की माती अहिनिस भाए समाणी॥
सुंदर साए सरूप बिचखण कहीऐ सा सिआणी॥[29]

पिर छोडिअड़ी जीउ कवण मिलावै॥
रस प्रेम मिली जीउ सबद सुहावै॥[30]

इस विवरण से प्रश्न का उत्तर सहज ही मिल जाता है कि ऐसे रूहानी अनुभव का संसार में नेक जीवन व्यतीत करने पर क्या प्रभाव पड़ता है। कई बार यह दोष लगाया जाता है कि इस तरह का रूहानी अभ्यास सांसारिक ज़िम्मेदारियों और दूसरी वास्तविकताओं से मुँह मोड़कर एक तरह से स्वार्थपूर्ण सुख या आनंद में मग्न रहने के बराबर है। पश्चिमी देशों के कई आलोचकों ने भारत के संत-महात्माओं पर ख़ास तौर से यह आक्षेप किया है कि वे ज़िंदगी और इसके आवश्यक कर्तव्यों से दूर भागने के दोषी हैं। लेकिन सच्चाई यह है कि परम सत्य में लीन हो चुका व्यक्ति ही सही अर्थों में नेक जीवन व्यतीत कर सकता है और असल में वही सच्चे प्रेम, सच्ची दया और सच्चे उपकार की मूर्ति होता है। सबको पता है कि अकसर एक संत इस संसार से जाते हुए अपना कार्य अपने उत्तराधिकारी को सौंप जाता है। इस प्रकार सच्ची नेकी, सच्चा प्रेम,

सच्ची सेवा और सच्चे त्याग का दीपक आगे से आगे जलता रहता है। कोई भी पूर्ण संत-सतगुरु दूसरों के दुःखों और कष्टों के प्रति उदासीन नहीं रहता। वह संसार का त्याग नहीं करता और केवल अपनी ही मुक्ति और निजी रूहानी प्राप्ति से संतुष्ट नहीं हो जाता, बल्कि वह संसार को भी दुःखों से निवृत्ति का सच्चा मार्ग दिखाता है। इसलिए उसको स्वार्थी नहीं कहा जा सकता क्योंकि जिस रूहानी मार्ग को वह उत्तम समझता है, वह संसार को भी उसी मार्ग का उपदेश देता है। पूर्ण संत-सतगुरु का जीवन के प्रति अपना विशेष दृष्टिकोण होता है। वह सांसारिक ज़रूरतें पूरी करने या दुनियावी दुःखों से छुटकारा पाने के बजाय सच्ची रूहानियत की प्राप्ति को कहीं अधिक ज़रूरी समझता है। संत-सतगुरु दूसरे लोगों को रूहानियत का सच्चा रास्ता दिखाना ही सबसे ऊँचा परोपकार और सबसे बड़ी सेवा मानते हैं।

भौतिक दृष्टिकोण वाले लोगों और संतों के सोचने के ढंग में एक बुनियादी फ़र्क़ यह है कि पदार्थवादी यह मानकर चलते हैं कि संसार को काफ़ी हद तक सुखों की नगरी बनाया जा सकता है और समाज सुधार की ऐसी योजनाएँ लागू की जा सकती हैं, जिनसे संसार की दशा सुधर जाए। परंतु गुरु नानक, महात्मा बुद्ध और अन्य सभी संत-महात्मा यह मानकर चलते हैं कि दुःख संसार के मूल में है। इस दुःख का मूल कारण जीव का अहं भाव या उसका परमेश्वर से बिछोह है। जब तक जीव हौंमैं का शिकार है और परमेश्वर से अपनी अलग हस्ती बनाए हुए है, तब तक उसके दुःखों का अंत नहीं हो सकता। गुरु नानक साहिब कहते हैं: *हउमै बिख पाए जगत उपाइआ सबद वसै बिख जाए॥*[31] अर्थात् हौंमैं या दुःख संसार की जड़ में हैं। केवल परमेश्वर के शब्द यानी नाम में लीन होने पर ही जीव इस दुःख से मुक्ति प्राप्त कर सकता है। आप फ़रमाते हैं कि सारा संसार बुरी तरह दुःखों की चक्की में पिस रहा है: *नानक दुखीआ सभ संसार॥*[32] संसार दुःखों का घर है, परंतु जो लोग नाम (शब्द) के साथ जुड़ जाते हैं, वे सदा के लिए सुख प्राप्त कर लेते हैं: *नानक नाम रते सदा सुख होए॥*[33] गुरु साहिब कहते हैं:

बाबा जग फाथा महा जाल॥
गुर परसादी उबरे सचा नाम समाल॥[34]

तथा:

नानक हउमै रोग बुरे॥
जह देखां तह एका बेदन आपे बखसै सबद धुरे॥[35]

जब तक जीव अद्वैत परमात्मा से बिछुड़कर काल और मन-माया की पैदा की गई अनेकता, द्वैत या हौंमैं का शिकार है, उसे कभी भी सच्चा सुख नहीं मिल सकता। जब तक द्वैत या हौंमैं है, दु:ख का नाश नहीं हो सकता। इसलिए पूर्ण संत-सतगुरु संसार के सच्चे हितैषी बनकर, जीवों को इस सत्य के प्रति सचेत करते हैं, इस दु:खों की भट्ठी में से निकलने का मार्ग दिखाते हैं और इस मार्ग पर चलने में उनकी सहायता भी करते हैं। जो लोग संतों के सच्चे रूहानी मार्ग को स्वार्थ या कायरता समझते हैं, उन्होंने संतों के जीवन तथा उनके रूहानी संदेश को समझने का पूरा प्रयास नहीं किया है।

रूहानियत और धर्म

साधारण तौर पर रूहानियत को धार्मिक कार्य माना जाता है। यदि धर्म का अर्थ परमपिता परमात्मा से मिलाप करना है, तो रूहानियत सचमुच ही धार्मिक कार्य है। संत सदा उस अनंत और अनादि सत्य की बात करते हैं, जिसके साथ वे मिलाप प्राप्त कर चुके हैं। अपने निजी अनुभव से उन्होंने यह ज्ञान प्राप्त किया है कि वह परमेश्वररूपी सत्य अत्यंत निर्मल और परम चेतन है। वह नेकी, उपकार, प्रेम और दया का रूप है। वह निश्चल और अविनाशी है और हर प्रकार के परिवर्तन, हौंमैं, निराशा, दु:ख और चिंता से मुक्त है। सच्ची रूहानियत को धारण करनेवाले गुरुमुख को इस सत्य में समाकर ऐसी अद्‌भुत अवस्था प्राप्त हो जाती है, जिसका बुद्धि द्वारा अनुमान लगा सकना असंभव है। इस दृष्टि से यदि रूहानियत को धर्म का मूल तत्त्व कहा जाए तो यह सही होगा। परंतु यदि किसी विशेष मत,

विश्वास, मान्यता, गुट या जत्थे को धर्म माना जाता है तो रूहानियत और रूहानी अनुभव धर्म में नहीं आते। सच्ची रूहानियत संसार के किसी ख़ास धर्म के पक्ष या विपक्ष में नहीं है। दरअसल रूहानियत एक धार्मिक कार्य है या नहीं? यह प्रश्न करने के बजाय हमें प्रश्न यह करना चाहिए कि क्या रूहानियत ही धर्म का असली आधार नहीं है? इस प्रश्न का बिना किसी झिझक के यह उत्तर दिया जा सकता है कि संसार के अधिकांश धर्म और भारत के सभी बड़े धर्म, मूल रूप में रूहानियत और आंतरिक अनुभव पर आधारित हैं। रूहानी अनुभव यानी प्रत्यक्ष आंतरिक ज्ञान सब धर्मों का प्राण है। सब धर्म एक ही रूहानियत या एक ही रूहानी विचारधारा की शाखाओं के रूप में अंकुरित हुए हैं। परंतु समय के साथ हर धर्म में आत्मा को अंदर परमात्मा से जोड़कर सत्य का साक्षात अनुभव प्राप्त करनेवाले संत-महात्मा लुप्त हो गए और उनके साथ ही अंदर रूहानी अनुभव प्राप्त करने की अमली रूहानी साधना का भी अंत हो गया।

गुरु नानक साहिब के आने से भारत में सच्ची धार्मिक भावना फिर से उभरी। गुरु साहिब के आने से पहले लोग सच्ची रूहानियत यानी सच्ची धार्मिकता को भुलाकर बाहरमुखी कर्मकांड और रीति-रिवाजों में बुरी तरह फँस चुके थे। लोग कई तरह के विश्वासों और विचारों से बँधकर अनेक छोटे-छोटे मत-मतांतरों के क़ैदी बन चुके थे और उनके बीच दरारें पड़ चुकी थीं। धर्म से आशा तो यह की जाती थी कि वह जीव के अंदर छिपे हुए परम तत्त्व को उभारकर उसको नेकी, प्रेम, सेवा और त्याग की मूर्ति बनाने में सहायता देगा, परंतु परिणाम इसके बिलकुल विपरीत निकल रहे थे। हालाँकि लोग धर्म का तिरस्कार नहीं करते थे, पर वे इसमें विश्वास अवश्य खो चुके थे। परंतु गुरु नानक साहिब ने लोगों को ऐसी निर्मल रूहानी साधना की युक्ति बताई, जो हर प्रकार के कर्मकांड, शरीअत और रीति-रिवाज से ऊपर थी। इस साधना का मूल उद्‌देश्य आत्मा को अंदर परमात्मा से जोड़ना और अंतर में सच्चा ज्ञान और प्रकाश प्राप्त करना था। इसलिए इस युक्ति का किसी बाहरी जत्थेबंदी और अंधविश्वास से कोई संबंध नहीं था। यह अंतर्मुख युक्ति हर प्रकार के बाहरमुखी भेदभाव से

ऊपर थी। इस तरह गुरु साहिब ने मनुष्य को सच्चे विश्वास और सच्ची करनी का मार्ग दिखाया। यह कहना ग़लत न होगा कि गुरु साहिब केवल इनसान के अपने और परमात्मा में खोए हुए विश्वास को फिर से जाग्रत करने के लिए ही संसार में आए थे। यही कारण है कि गुरु साहिब ने जीवों को उस समय प्रचलित अनेक प्रकार की विधियों, जैसे कि कर्मयोग, उपासनायोग, लययोग, राजयोग, हठयोग, ज्ञानयोग, भक्तियोग और अन्य अनेक प्रकार के जप-तप, पूजा-पाठ, कर्मकांड आदि की भूल-भुलैयाँ में से निकाला। आपने लोगों को प्राचीन समय के पूर्ण संतों द्वारा परमेश्वर की प्राप्ति के लिए अपनाया गया वह सरल और स्वाभाविक मार्ग दिखाया जो परमात्मा ने स्वयं जीव के कल्याण के लिए उसके अंदर रचा हुआ है। यह मार्ग अपनी आत्मा को अंदर शब्द से जोड़ने और जीते-जी सच्ची मुक्ति प्राप्त करने का मार्ग है।

रूहानी अभ्यास

गुरु नानक साहिब द्वारा अपनाई और प्रचारित की गई रूहानी साधना को 'सुरत-शब्द योग' का नाम दिया जा सकता है। इसको शब्द-योग, सहज-योग या शब्द-अभ्यास भी कहा गया है। इस अभ्यास में साधक अपने ध्यान और सुरत (आत्मा) की धारा सारे शरीर से पूरी तरह समेटकर आँखों के पीछे एक बिंदु पर एकाग्र करता है। इस बिंदु को पारमार्थिक भाषा में तीसरी आँख* कहा गया है।

साधक को इस अभ्यास में संसार की ओर खुलनेवाले शरीर के नौ द्वार बंद करके सुरत को पूरी तरह तीसरी आँख में एकाग्र

* इसका कई अन्य नामों से भी वर्णन किया गया है। इसको आंतरिक आँख, एक आँख या आँख भी कहा गया है। तुलसी साहिब ने इसको खस-खस का दाना, सूई द्वार, दूरबीन, महीन दाना, मुकुर (शीशा), तिल आदि भी कहा है। हिंदू महात्मा इसको शिवनेत्र, दिव्य चक्षु या तीसरा तिल कहते हैं। मुसलमान फ़क़ीरों ने इसको नुक़्तए-सुवैदा कहा है। शायद फ्राँसीसी दार्शनिक रैने डैकारटे का पीनिअल ग्लैंड से यही भाव है।

करना पड़ता है, जो कि सुरत या आत्मा का असली निवास-स्थान या सदर-मुक़ाम है। सुरत को इस नुक़्ते यानी केंद्र पर पूरी तरह एकाग्र करने से समाधि की अवस्था प्राप्त हो जाती है। यह निर्मल चेतनता की अवस्था है, जिसमें सच्चे आनंद और सच्ची शांति की प्राप्ति होती है। आत्मा को दसवें दरवाज़े अर्थात् आँखों के केंद्र के पार, मन और आत्मा अथवा जड़ और चेतन की गाँठ खोलने की युक्ति का आदि ग्रन्थ में कई स्थानों पर वर्णन आया है। गुरु साहिबान और भाई गुरदास ने आँखों के केंद्र का कई शब्दों द्वारा वर्णन किया है। दूसरे शब्दों के अतिरिक्त उन्होंने इसको दसवां, तिल घर, घर मंदिर, घर, दिव्य दृष्टि, तिल, घर दर, दर, सो दर, मुकत द्वार आदि कई नामों से याद किया है। गुरु अमरदास जी कहते हैं:

नउ दर ठाके धावत रहाए॥ दसवै निज घर वासा पाए॥
ओथै अनहद सबद वजह दिन राती गुरमती सबद सुणावणिआ॥[36]

हर जीउ गुफा अंदर रख कै वाजा पवण वजाइआ॥
वजाइआ वाजा पउण नउ दुआरे परगट कीए दसवा गुपत रखाइआ॥[37]

गुरदुआरै लाए भावनी इकना दसवा दुआर दिखाइआ॥
तह अनेक रूप नाउ नव निध तिस दा अंत न जाई पाइआ॥[38]

आदि ग्रन्थ में कई स्थानों पर घर मंदिर, तिल घर या केवल घर कहकर भी इसका वर्णन किया गया:

मन खिन खिन भरम भरम बहु धावै तिल घर नही वासा पाईऐ॥
गुर अंकस सबद दारू सिर धारिओ घर मंदर आण वसाईऐ॥[39]

घर रहो रे मन मुगध इआने॥ राम जपहो अंतरगत धिआने॥[40]

कहा चलहो मन रहहो घरे॥
गुरमुख राम नाम त्रिपतासे खोजत पावहो सहज हरे॥[41]

मन बैरागी घर वसै सच भै राता होए॥
गिआन महा रस भोगवै बाहुड़ भूख न होए॥[42]

गुरबानी में इसको अन्य कई स्थानों पर दिव्य दृष्टि, घर दर या मुक्ति द्वार भी कहा गया है:

हर का गाहक होवै सो लए पाए रतन वीचारा॥
अंदर खोलै दिब दिसट देखै मुकत भंडारा॥[43]

दिब द्रिसट जागै भरम चुकाए॥ गुर परसाद परम पद पाए॥[44]

राम रसाइण गुरमुख चाखै॥ दर घर महली हर पत राखै॥[45]

जित दर वसह कवन दर कहीऐ दरा भीतर दर कवन लहै॥
जिस दर कारण फिरा उदासी सो दर कोई आए कहै॥[46]

घर दर मंदर जाणै सोई॥
जिस पूरे गुर ते सोझी होई॥[47]

नानक मुकत दुआरा अत नीका नान्हा होए सो जाए॥
हउमै मन असथूल है किउ कर विच दे जाए॥[48]

भाई गुरदास, जिनकी वाणी को श्री आदि ग्रन्थ की कुंजी कहा जाता है, इस विषय का विस्तृत वर्णन करते हैं। आपके दो कवित्त, पंडित नरैन सिंह ज्ञानी द्वारा की गई व्याख्या सहित दिए जा रहे हैं:

किंचित कटाच्छ कृपा बदन अनूप रूप,
अति असचरज मय नाइका कहाई है॥
लोचन की पुतरी मै तनिक तारिका स्याम,
तांको प्रतिबिंब तिल बनिता बनाई है॥
कोटिन कोटानि छबि तिल (मै) छपत छाह,

कोटिन कोटानि शोभ लोभ ललचाई है॥
कोटि ब्रहमंड के नाइक की नाइका भई,
तिलके तिलक सर्ब नाइका मिटाई है॥[49]

अर्थात् जब गुरुरूपी पति ने थोड़ा-सा भी कृपा-कटाक्ष से देखा तो जीवात्मा के चेहरे पर अनूप रूप चमक पड़ा, इसी लिए तो वह आश्चर्यजनक नायिका (स्त्री) कहलाती है। आँखों की पुतली में रत्ती के समान काले रंग की (तारिका) बिंदी का परछाईं रूप तिल है, उसकी बिंदी स्त्री ने लगाई अर्थात् जैसे स्त्रियाँ मस्तक पर सुहाग की निशानी के रूप में बिंदी लगाती हैं, वैसे ही नेत्र की पुतलियों के परे, पिछली ओर जो प्रकाश आ रहा है, उस प्रकाश का स्रोत, अंतर की ओर है, गुरुमुख उसको बिंदी लगाना कहते हैं। करोड़ों प्रकार की शोभा उस तिल की छाया के नीचे छिपी है और करोड़ों उस तिल की शोभा पाने को ललचा रही हैं। जीवात्मा करोड़ों ब्रह्मांडों के स्वामी की स्वामिनी (पत्नी) हो गई है और उस तिल की चमक ने सारी स्त्रियों की आभा मिटा दी है।

प्रीतम की पुतरी मै तनिक तारिका स्याम,
तांको प्रतिबिंब तिल तिलक त्रिलोक को॥
बनिता बदन पर प्रगट बनाइ राख्यो,
कामदेव कोटि लोट पोट अबिलोक को॥
कोटिन कोटान रूप की अनूप रूप छवि,
सकल सिंगार को सिंगार सर्ब थोक को॥
किंचित कटाच्छ कृपा तिल की अतुल सोभा,
सरसुती कोट मान भंग ध्यान कोक को॥[50]

प्रीतम सतगुरु के नेत्रों की पुतली में जो तारे जैसा छोटा-सा काला बिंदु (नुक़ता) है उसकी केवल तिल के समान ही झलक तीनों लोकों में तिलक के समान शोभायमान हो रही है। जीवरूपी स्त्री के चेहरे पर

तिलक की सुंदरता झलक रही है। करोड़ों तरह की सुंदरता भी उस अनुपम शोभा की तुलना नहीं कर पा रही। वह शोभा तो संसार के सभी पदार्थों के शृंगार से भी श्रेष्ठ है। सतगुरु की थोड़ी-सी मेहर-भरी नज़र की शोभा बेअंत है, जिसका ध्यान करके करोड़ों सरस्वती का अभिमान चकनाचूर हो जाता है और चकोर का ध्यान भी भंग हो जाता है।

शब्द

गुरु नानक साहिब की वाणी में बार-बार आए लफ़्ज़ 'शब्द' से क्या भाव लिया जाए? शब्द का लफ़्ज़ी अर्थ आवाज़ या ध्वनि है। किसी धार्मिक गीत या भजन को भी शब्द कह दिया जाता है। परंतु संत-महात्माओं का 'शब्द' से भाव एक परम चेतन, निराकार सत्ता से है। यह वह अकथ कथा है जिसको ज़बान प्रकट नहीं कर सकती, कान सुन नहीं सकते, क़लम लिख नहीं सकती और भाषा जिसका वर्णन नहीं कर सकती। यह इनसानी मन-बुद्धि से परे की हक़ीक़त है। यह हर तरह के द्वैत, हर तरह के परिवर्तन से परे का वह सच है जो सृष्टि की हर वस्तु और हर प्राणी में रमा हुआ है। गुरु नानक साहिब समझाते हैं कि शब्द के बिना हमारे अंदर अँधेरा ही अँधेरा रहता है। गुरु साहिब से सिद्ध प्रश्न करते हैं कि भवसागर से पार करनेवाला शब्द कहाँ रहता है। दस प्रकार की पवन में से वह किसके सहारे टिका हुआ है:

> *सो सबद का कहा वास कथीअले जित तरीऐ भवजल संसारो॥*
> *त्रै सत अंगुल वाई कहीऐ तिस कहो कवन अधारो॥*[51]

गुरु साहिब उत्तर देते हैं कि शब्द सर्वव्यापक है और हर एक के अपने अंदर ही है। जिस ओर नज़र करें, शब्द ही शब्द है। शब्द ऐसी अकल-कला अर्थात् अकृत्रिम कला है जो अपने सहारे आप खड़ी है, किसी दूसरे पर निर्भर नहीं है:

> *सो सबद कउ निरंतर वास अलखं जह देखा तह सोई॥*
> *पवन का वासा सुंन निवासा अकल कला धर सोई॥*[52]

श्री आदि ग्रन्थ में नाम* और वाणी आदि कई अन्य पदों द्वारा भी शब्द का वर्णन किया गया है। गुरु अमरदास जी कहते हैं कि युग-युग से चली आ रही वाणी ही शब्द के रूप में पहचानी जाती है और वही मीठा और प्यारा नाम है: *जुग जुग बाणी सबद पछाणी नाउ मीठा मनह पिआरा॥*[53] इसी को गुरु नानक साहिब ने हुक्म भी कहा है। आप कहते हैं: तेरा हुक्म सच्चा है, जिसकी समझ गुरुमुखों के द्वारा प्राप्त होती है। सतगुरु के मत पर चलकर हौंमैं को दूर करने पर इस सच का ज्ञान होता है: *सचा तेरा हुकम गुरमुख जाणिआ। गुरमती आप गवाए सच पछाणिआ॥*[54] इसी तरह आप फ़रमाते हैं कि हे प्रभु, तेरा हुक्म, तेरा नाम चारों दिशाओं में और पाताल लोक तक व्याप्त है। वह शब्द ही सच्चा प्रभु बनकर सर्वव्यापक हो रहा है, तेरी कृपा से ही हम उस शब्द को पा सकते हैं:

> *चहु दिस हुकम वरतै प्रभ तेरा चहु दिस नाम पतालं॥*
> *सभ मह सबद वरतै प्रभ साचा करम मिलै बैआलं॥*[55]

स्पष्ट है कि गुरु साहिब न केवल नाम, शब्द और हुक्म का, बल्कि सच और प्रभु का भी एक ही अर्थ में प्रयोग कर रहे हैं। नीचे लिखे पद में भी आप नाद, शब्द, धुन, सच और नाम का एक ही अर्थ में प्रयोग कर रहे हैं:

> *नानक निरमल नाद सबद धुन सच रामै नाम समाइदा॥*[56]

बाइबल में भी इस शक्ति को वर्ड (शब्द) कहा गया है। सेंट जॉन के अनुसार, "शुरू में शब्द था, शब्द परमेश्वर के साथ था और शब्द ही परमेश्वर था।" वेदों में इसको नाद या आकाशवाणी कहा गया है। मुसलमान संतों ने इसको कलमा (शब्द), निदाए आसमानी (आकाशवाणी), बाँगे आसमानी (आकाश की आवाज़), इस्मे आज़म (सबसे बड़ा नाम) या सुलतानुल-अज़कार (सिमरनों का बादशाह) कहा है।

---

* श्री गुरु ग्रन्थ साहिब में शब्द विशेष तौर पर तो नाम के अर्थों में आया है। जो गुरु ग्रन्थ साहिब में नाम का अर्थ है, वही शब्द का अर्थ है।

श्री गुरु ग्रन्थ कोश, पृ.225-226

गुरु साहिब के कथनों से स्पष्ट हो जाता है कि शब्द के दो गुण हैं – आवाज़ और प्रकाश:

अंतर जोत निरंतर बाणी साचे साहिब सिउ लिव लाई॥[57]

अंतर जोत सबद धुन जागै सतगुर झगर निबेरै॥[58]

सिंङी सुरत अनाहद वाजै घट घट जोत तुमारी॥[59]

सबसे ऊँची रूहानी मंज़िल पर पहुँचने के लिए साधक के मार्ग में आवाज़ और प्रकाश दोनों आवश्यक हैं। जैसे अँधेरे में रास्ता भूला हुआ मनुष्य कहीं दूर से आती हुई आवाज़ की मदद से अपना रुख़ क़ायम कर लेता है, उसी तरह शब्द भी अभ्यासी की आत्मा को अपने स्रोत की ओर खींचता है। जिस प्रकार बाहर का प्रकाश रास्ते के गड्ढों आदि से बचाते हुए सफ़र तय करने में सहायता देता है, उसी तरह शब्द का आंतरिक प्रकाश अभ्यासी को अनेक आंतरिक रुकावटों से बचाता है। गुरु साहिब कहते हैं, हे प्रभु! तेरे प्रकाश की किरणें अंदर हर ओर फैल रही हैं और अनहद शब्द की मीठी धुनें अंदर सुनाई देती हैं:

पसरी किरण जोत उजिआला॥ कर कर देखै आप दइआला॥
अनहद रुण झुणकार सदा धुन निरभउ कै घर वाइदा॥[60]

शब्द की दिव्य-ध्वनि उस परमपिता परमात्मा में से प्रकट होकर समस्त खंडों और ब्रह्मांडों की रचना करके, उनका आधार बनी हुई है। यदि यह कहें कि वह प्रभु रूहानियत का अथाह सागर है और आत्मा उस सागर की ही एक बूँद है तो शब्द उस समुद्र में से निकल रही ऐसी विशाल नदी है जो प्रभुरूपी समुद्र से निकलकर सारे निचले खंडों-ब्रह्मांडों के जीवन का आधार बनी हुई है।

इस प्रकार शब्द ही परमात्मा का निज-रूप है और शब्द ही वास्तविक परमतत्त्व है। शब्द की ध्वनि सब खंडों-ब्रह्मांडों में गूँज रही है। यही समस्त जीवन और चेतना का मूल स्रोत है। हम शब्द को परमेश्वर का

सर्वव्यापी रूप कह सकते हैं यानी यह कह सकते हैं कि परमेश्वर शब्द रूप में ही सर्वव्यापक है और आत्मा तथा शब्द दोनों का असली यानी मूल रूप परमात्मा ही है, इसलिए जिस तरह चुंबक सूई को अपनी ओर खींचता है, शब्द भी बलपूर्वक आत्मा को अपनी ओर खींचता है। इसी लिए इस रूहानी अभ्यास को सुरत-शब्द योग कहा जाता है अर्थात् इसमें सुरत (आत्मा) को अलख, अगम मंडलों से आ रहे शब्द के साथ जोड़ा जाता है। इसी साधना का वर्णन करते हुए गुरु साहिब कहते हैं कि हम सुरत (आत्मा) को शब्द से जोड़कर संसाररूपी भवसागर को पार कर सकते हैं: *सुरत सबद भवसागर तरीऐ नानक नाम वखाणे॥*[61] फिर कहते हैं कि साकत या मनमुख जीव सुरत को शब्द से जोड़ने की युक्ति नहीं जानते, परंतु जब तक सुरत को शब्द में लीन करने की युक्ति नहीं आती, किसी का आवागमन के चक्र से छुटकारा नहीं हो सकता: *साकत नर सबद सुरत किउ पाईऐ॥ सबद सुरत बिन आईऐ जाईऐ॥*[62] मुसलमान संतों ने भी इस विचार को इसी ढंग से प्रकट किया है। सूफ़ी फ़क़ीर शाह नियाज़ कहते हैं कि तू उस अनंत और अनादि कलाम अर्थात् शब्द को सुन, जिसका कोई आदि या अंत नहीं है। वह कलाम सुनकर तू जन्म-मरण की क़ैद से आज़ाद हो जाएगा:

बिशनवी यक कलामे-लामक़तूअ,
अज़ हदूसो-फ़ना बबद मरफ़ुअ।[63]

मौलाना रूम भी अपनी मसनवी में कहते हैं, ऐ बहादुर, तू आसमान अपने पैरों के नीचे ले आ और ऊपर गगन में से आ रही बाँग या आकाशवाणी को सुन:

चर्ख़ रा दर ज़रे-पा आर ए शुजाअ,
बिशनौ अज़ फ़ोके फ़लक बाँग-ए-समाअ।[64]

इस शब्द के अनुभव का संकेत करते हुए मौलाना रूम कहते हैं कि जब कई प्रकार की मीठी और प्यारी राग-रागनियाँ सुनीं तो मुझे मंदिर

और मसजिद दोनों ही काफ़िर (नास्तिक) लगने लगे अर्थात् मेरे लिए इस शब्द में लीन होना ही सच्चा धर्म बन गया और मुझे किसी तरह के बाहरी मंदिर, मसजिद और इनसे संबंधित धर्मकर्म की ज़रूरत न रही:

नग़महा नेक शुनीदम वा निदाहा वाफ़िर।
काबा बुतख़ाना बनिज़्दम शुदा हर दो काफ़िर॥[65]

जीते-जी मरना

भारत में साधारण लोगों का विचार है कि यदि ज़िंदगी में शुभ कर्म किए जाएँ तो मौत के बाद मुक्ति मिल जाती है। प्रश्न पैदा होता है कि क्या हम जीते-जी मुक्ति या निर्वाण की ऊँची और पवित्र अवस्था प्राप्त नहीं कर सकते? क्या हम जीते-जी मौत की दहलीज़ के पार नहीं निकल सकते? दुनिया कहती है कि नहीं, परंतु गुरु नानक साहिब विश्वास दिलाते हैं कि हम ऐसा ज़रूर कर सकते हैं। उन्होंने ख़ुद जीते-जी यह अवस्था प्राप्त की है और हमें भी जीते-जी यह अवस्था प्राप्त करने की युक्ति सिखाते हैं। यदि हम जीते-जी मुक्ति प्राप्त नहीं करेंगे तो इस बात का क्या भरोसा है कि मौत के बाद ज़रूर मुक्ति प्राप्त कर लेंगे? गुरु साहिब की वाणी से इस बात के प्रमाण मिलते हैं कि आप अपनी इच्छानुसार जब चाहे मौत के दरवाज़े से पार जा सकते थे और जब चाहे वापस आ सकते थे। आप कहते हैं:

नित नित मरां ते नित नित जीवां गुर ऐसी जुगत बताई हे॥[66]

सच्ची रूहानियत का प्रचार करनेवाले सभी धर्मों में मौत के द्वार को पार करने के अभ्यास का वर्णन मिलता है। उपनिषदों से लेकर भारत के सभी प्राचीन धर्मग्रंथों में इस बात की साक्षी मिलती है। *कठोपनिषद*[67] में वर्णन है कि जो प्राणी जीते-जी अपने आप की पहचान नहीं करता, उसको बार-बार जन्म-मरण के चक्कर लगाने पड़ते हैं। इसी उपनिषद में यह भी कहा गया है कि जो व्यक्ति जीते-जी अपने आप की पहचान नहीं करता, वह इस बात की कल्पना भी नहीं कर सकता कि उसको मौत के बाद कितने दुःख सहने पड़ेंगे।

मुसलमानों के धर्मग्रंथों में ज़िक्र है कि मौत से पहले मरो: *मूतू क़ब्ल अन तमूतू।*[68] मौलाना रूम कहते हैं: हे आत्मा, तू मौत से पहले ऊपर उठ और मौत से पहले उस दरगाह और अपने अनादि घर के दर्शन कर:

खेज़ बाला शा बिया पेश अज़ अजल,
दर निगर शाही ओ मुलके-ब-ख़लल।[69]

अपने अंदर यह अनुपम रूहानी अनुभव प्राप्त करना अपनी इच्छा से मरने के समान है। इसलिए गुरु नानक साहिब ने इसको जीते-जी मरना कहा है। मौत के समय धीरे-धीरे सुरत की धारा शरीर के नीचे से ऊपर की ओर सिमटती जाती है। संत अभ्यास के समय अपनी इच्छानुसार सुरत को शरीर के सभी निचले भागों में से समेटकर अंदर तीसरी आँख में एकाग्र करने का साधन बताते हैं। साधारण मनुष्य का मौत पर कोई वश नहीं चलता और वह मौत के समय मरने के लिए मज़बूर होता है परंतु इस रूहानी अभ्यास का साधक, अपनी मरज़ी से सुरत को शरीर में से समेटता है। साधारण व्यक्ति के लिए मौत बहुत दुःखदायी होती है और वह शरीर में वापस नहीं आ सकता। परंतु सुरत-शब्द का साधक, जब चाहे शरीर को ख़ाली कर सकता है और जब चाहे इसमें वापस आ सकता है। गुरु नानक साहिब उपदेश करते हैं कि मृत्यु के बाद जिस घर में जाना है, उसको जीते-जी मरकर जीत लेना चाहिए: *मुइआ जित घर जाईऐ तित जीवदिआ मर मार॥*[70] आप फ़रमाते हैं कि ऐसे योग की साधना करनी चाहिए जिसके द्वारा जीते-जी मरने की युक्ति आ जाए: *नानक जीवतिआ मर रहीऐ ऐसा जोग कमाईऐ॥*[71]

इस तरह इच्छानुसार जीते-जी मरने का अभ्यास करने से आत्मा को ऊपर के रूहानी मंडलों में रसाई हासिल हो जाती है और सभी दुःखों, कष्टों और आवागमन के बंधनों से छुटकारा मिल जाता है, गुरु साहिब बताते हैं कि जो व्यक्ति अपनी हस्ती को शब्द में लीन कर देता है, उसको सदा के लिए मुक्ति प्राप्त हो जाती है, वह बार-बार जन्म-मरण के चक्र में नहीं आता: *सबद मरै सो मर रहै फिर मरै न दूजी वार॥*[72]

गुरु नानक साहिब ने ही नहीं, अन्य अनेक संत-महात्माओं ने भी इस सच्चाई का ज़ोरदार शब्दों में वर्णन किया है। मौलाना रूम कहते हैं कि मरने से पहले मरने में यह भेद छिपा हुआ है कि इस तरह मरने से परमात्मा की अद्भुत दया-मेहर प्राप्त होती है: *सिर्रे मंत रा कबल अज़ मंत ई बवद। कज़ पाए मुर्दन गनीमतहा रसद।*[73] साईं बुल्लेशाह भी अपनी काफ़ियों में कहते हैं कि यदि तू मरने से पहले मर जाए तो तुझे फल की प्राप्ति हो जाएगी: *जे तू मरें मरन तों अग्गे, मरने दा मुल पावेंगा।*[74]

जीते-जी मरने का यह उपदेश केवल पूर्व के महात्माओं ने ही नहीं दिया, बल्कि हज़रत ईसा भी कहते हैं कि परमात्मा की दरगाह में दाख़िल होने के लिए इस ज़िंदगी में दोबारा जन्म लेना ज़रूरी है।[75] हज़रत ईसा अपने बारे में कहते हैं: "कोई भी मुझसे मेरी ज़िंदगी नहीं छीन सकता, क्योंकि मैं अपनी मरज़ी से ज़िंदगी का त्याग करता हूँ। मुझे यह शक्ति प्राप्त है कि जब चाहूँ मर जाऊँ और जब चाहूँ ज़िंदा हो जाऊँ। यह हुक्म या शक्ति मुझे मेरे पिता से मिली है।"[76] सुकरात ने भी अपने वचनों में कहा है कि मैं जब चाहूँ शरीर के अंदर जा सकता हूँ और जब चाहूँ इससे बाहर आ सकता हूँ, बिलकुल उसी तरह जिस तरह कोई व्यक्ति घर के अंदर जाता है और फिर घर से बाहर आता है; इस तरह मुझे परम आनंद और गहरी शांति प्राप्त होती है।

परमात्मा अंदर है

वह असीम तथा सर्वज्ञ प्रभु इस सीमित और अल्पज्ञ जीव में समाया हुआ है। वह अकथ, अगम, निराकार परमात्मा मनुष्य के हाड़-मांस के शरीररूपी आवरण में छिपा हुआ है, वह परमपुरुष मनुष्य-शरीर के अंदर विराजमान है। गुरु नानक साहिब ने बार-बार इस सत्य पर ज़ोर दिया है:

साचउ दूर न जाणीऐ अंतर है सोई॥[77]

घट घट अंतर ब्रहम लुकाइआ घट घट जोत सबाई॥[78]

जब गुरु साहिब यह कहते हैं कि परमात्मा मनुष्य-शरीर के अंदर है तो उनका यह भाव नहीं होता कि वह परमात्मा इस स्थूल शरीर का ही अंग है। यदि ऐसा होता तो डॉक्टर शरीर की चीर-फाड़ करके उसको अवश्य ढूँढ़ लेते। वह परमेश्वर सूक्ष्म, चेतन और ज्योतिर्मय है। इसलिए बेशक वह हमारे अंदर है, परंतु शरीर को मारने से हम परमेश्वर को नहीं मार सकते। वह शरीर, मन और इंद्रियों से परे है, इसलिए शरीर की मौत का उस पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। वास्तव में परमात्मा न तो स्थूल शरीर का अंग है और न ही स्थूल शरीर में मिल सकता है। परमात्मा हमारे अंदर है, गुरु साहिब के इस कथन का असली रूहानी भाव यह है कि हम अपनी आत्मा को अंदर एकाग्र करके, अपने अंदर ही परमात्मा को पा सकते हैं। इस संबंध में गुरु साहिब के कथन विचार योग्य हैं:

काइआ अंदर आपे वसै अलख न लखिआ जाई॥
मनमुख मुगध बूझै नाही बाहर भालण जाई॥[79]

पुहप मध जिउ बास बसत है मुकर माहे जैसे छाई॥
तैसे ही हर बसे निरंतर घट ही खोजहो भाई॥[80]

गुर परसादी वेख तू हर मंदर तेरै नाल॥[81]

मनोविज्ञान का प्रसिद्ध नियम है कि जिज्ञासु में संबंधित वस्तु या पदार्थ का ज्ञान प्राप्त करने की शक्ति होनी चाहिए। उदाहरण के लिए, हमारी आँखें अपनी ताक़त से अधिक या कम प्रकाश वाले स्थान में नहीं देख सकतीं। इसी तरह कान अपनी शक्ति से ऊँची या नीची आवाज़ें नहीं सुन सकते। जो ध्वनि या आवाज़ें कानों की ताक़त के दायरे से परे हैं, उनको सुनने के लिए हम कई तरह के यंत्रों की सहायता लेते हैं। बहुत छोटे या बहुत दूरी पर स्थित पदार्थ को देखने के लिए हम ख़ुर्दबीन या दूरबीन की सहायता लेते हैं। यह नियम स्थूल जगत के एक ही स्तर पर विचर रहे सभी व्यक्तियों और पदार्थों पर समान रूप से लागू होता है। परंतु यदि हम

सूक्ष्म मंडल की कोई वस्तु देखना चाहते हैं तो हमें सूक्ष्म बनना पड़ेगा। वह परमसत्य सूक्ष्म से सूक्ष्म है, इसलिए उसका ज्ञान प्राप्त करने या उसको साक्षात देखने के लिए हमें अपने सूक्ष्म अस्तित्व में जाना पड़ेगा अर्थात् अपनी आत्मा की सहायता से उस परमात्मा को देखना होगा।

गुरु नानक साहिब समझाते हैं कि स्थूल जगत के निरंतर बदलते रहनेवाले दृश्य हमारे सामने एक परदा तान देते हैं, इसलिए हम उस सूक्ष्म परमसत्य के दर्शन नहीं कर पाते। उपनिषद इस बात का वर्णन करते हुए कहते हैं कि माया ब्रह्म पर परदा डाल देती है, इसी लिए वह हमें दिखाई नहीं देता। इस माया के परदे को चीरकर ही हम उसके पीछे छिपे ब्रह्म को देख सकते हैं।

गुरु साहिब का यह कहना कि 'परमात्मा अंदर है' इसका यह भाव नहीं है कि परमात्मा बाहर नहीं है। गुरु साहिब का केवल इतना ही भाव है कि जब तक हम परमात्मा के दर्शन अपने अंदर नहीं कर लेते, हम कभी भी बाहर उसके दर्शन नहीं कर सकते। इसलिए पाश्चात्य चिंतकों का यह समझना कि आंतरिक अनुभव और बाहरी अनुभव एक दूसरे से पूरी तरह से स्वतंत्र या अलग होते हैं, असलियत को देखने का ठीक ढंग नहीं है। वास्तव में तो बाहर परमात्मा का जल्वा देख सकने की संभावना, अंदर उसका जल्वा देखने पर निर्भर है। इसलिए अंदर के रूहानी अनुभव को पहला स्थान प्राप्त है और बाहर परमात्मा का जल्वा देखने की बात बाद में आती है।

सतगुरु

संत-महात्माओं द्वारा रूहानियत के वर्णन के ढंग में थोड़ी-बहुत भिन्नता पाई जा सकती है, परंतु सभी पूर्ण संतों ने रूहानी उन्नति के लिए सतगुरु के मार्गदर्शन और उनकी सहायता की आवश्यकता पर एक जैसा बल दिया है। सभी पूर्ण संत इस बात से सहमत हैं कि रूहानी उन्नति करके परमात्मा से मिलाप करने के लिए सतगुरु का होना अत्यंत आवश्यक है। सतगुरु की सहायता के बिना इस उद्देश्य में सफलता प्राप्त कर सकना असंभव है। वास्तव में रूहानियत की किसी शाखा को केवल उसके

नियमों या सिद्धांतों के आधार पर ही नहीं परखा जा सकता, बल्कि ध्यान देने योग्य बात तो यह है कि उसका नेतृत्व करनेवाला महात्मा कैसा है और उसकी आंतरिक पहुँच या रसाई कितनी है?

कोई भी कला सीखने के लिए दो बातों की आवश्यकता होती है: प्रयत्न और युक्ति। बिना चले न तो सफ़र ख़त्म हो सकता है और न ही मंज़िल पर पहुँचा जा सकता है। दरअसल बिना अभ्यास किए किसी कला में निपुणता प्राप्त नहीं की जा सकती। यही नियम रूहानी तरक़्क़ी पर भी लागू होता है। प्रयत्न और अभ्यास के बिना ऊँचा रूहानी अनुभव प्राप्त कर सकना असंभव है।

परंतु केवल प्रयत्न या मेहनत ही काफ़ी नहीं। जब तक हमारे प्रयत्न की दिशा ठीक नहीं है और जब तक हम सही मार्ग पर नहीं चलते तब तक लाभ होना तो दूर रहा, हानि का ही ख़तरा बना रहेगा। यदि हम रेलवे स्टेशन पहुँचने के लिए बड़ी फुर्ती और तेज़ी से चलें, परंतु अपना मुँह विपरीत दिशा की ओर कर लें तो जितना अधिक चलते जाएँगे, मंज़िल से उतने ही दूर होते जाएँगे। अनेक जिज्ञासुओं के हृदय में परमसत्य के ज्ञान की प्रबल इच्छा और सच्ची तड़प तो होती है, परंतु उसकी प्राप्ति की असली युक्ति का ज्ञान नहीं होता। गुरु अमरदास जी कहते हैं कि परमात्मा की प्राप्ति के लिए पूजा या भक्ति तो सब करते हैं, परंतु उनको भक्ति की सच्ची युक्ति का ज्ञान नहीं है: *पूजा करह पर बिध नही जाणह दूजै भाए मल लाई॥*[82] जब संसार का कोई साधारण काम सीखने के लिए भी शिक्षक की आवश्यकता पड़ती है, तो रूहानी मार्ग पर चलने के लिए तो राह के वाक़िफ़कार उस्ताद की ज़रूरत कहीं अधिक है, क्योंकि इस सफ़र के राही को न तो इस रास्ते का पता होता है और न ही इस पर अकेले चलना ख़तरे से ख़ाली है। यह रास्ता कई तरह के संकटों और ख़तरों से भरा हुआ है। ख़्वाजा हाफ़िज़ ने कहा है कि अगर मुर्शिद शराब में मुसल्ला रँगने के लिए भी कहे तो जैसा वह कहता है वैसा ही करो, क्योंकि जिस मार्ग पर वह ख़ुद चल चुका है, उसके रास्तों और रस्मों से वह बेख़बर नहीं है:

ब-मै सज्जादा रंगी कुन गरत पीरे-मुग़ां गोयद।
किह् सालिक बेख़बर नु बवद ज़ि राहो-रस्मे मंज़िल हा।[83]

मौलाना रूम विस्तारपूर्वक कहते हैं कि तेरा सफ़र कई संकटों और ख़तरों से भरा हुआ है। इसलिए तू राह के वाक़िफ़कार यानी भेदी को ज़रूर साथ ले। जो कोई भी कामिल मुर्शिद के बिना इस रास्ते पर चलने का प्रयत्न करता है, काल या शैतान की शक्तियाँ उसको कुमार्ग पर ले जाकर दु:खों के कुएँ में फेंक देती हैं। यदि तेरे सिर पर पूरे सतगुरु का हाथ नहीं है तो शैतान तेरे अंदर सदा तरह-तरह के वहम, संशय, भ्रम आदि पैदा करता ही रहेगा और तुझे हमेशा परेशान रखेगा। तुझसे पहले तुझसे अधिक कई बुद्धिमान अकेले सफ़र करने की मूर्खता के कारण शैतान के हाथों हानि उठा चुके हैं:

पीर रा बगुज़ीं किह् बे पीर ईं सफ़र,
हस्त बस पुर आफ़तो-खौफ़ो-ख़तर।
हर किह् ऊ बे मुर्शिदे दर राह शुद,
ऊ ज़ि गूलाँ गुमरहो दर चाह शुद।
गर न बाशद साया-ए पीर ऐ फ़ुजूल,
पस तुरा सरगशता दारद बांगे-ग़ूल।
ग़ूलत अज़ रह अफ़गनद अन्दर गज़ंद,
अज़ तू दाही तर दरीं रह बस बुदंद।[84]

गुरु नानक साहिब ने लोगों को समझाया कि हमारा संसार में मौजूद होना और चौरासी यानी आवागमन का अंग बने रहना ही इस बात का पक्का सबूत है कि हम अपने प्रयत्न द्वारा इस जाल से छुटकारा प्राप्त नहीं कर सकते। गुरु अर्जुन साहिब ने बड़े सुंदर ढंग से वाणी में कहा है कि हे परमात्मा! यदि जीव अपने आप तुझसे मिलाप कर सकता तो किसका मन चाहता कि तुझसे बिछुड़कर इस रचना के दु:खों की चक्की में पिसता रहे।

उस परमात्मा से मिलाप का आनंद केवल पूरे संतों की संगति द्वारा ही प्राप्त हो सकता है:

आपण लीआ जे मिलै विछुड़ किउ रोवंन॥
साधू संग परापते नानक रंग माणंन॥[85]

केवल गुरु नानक साहिब की वाणी ही नहीं, बल्कि श्री आदि ग्रन्थ की संपूर्ण वाणी सतगुरु की महिमा और सतगुरु के प्यार से परिपूर्ण है। प्रो. पूरन सिंह का कथन है कि गुरु नानक के बाद आनेवाले पंजाब के सभी भक्तों व महात्माओं ने गुरु साहिब की वाणी के आधार पर ही अपनी वाणी रची। भाई गुरदास की वाणी का भी यही प्रधान स्वर है। प्रो. पूरन सिंह अपनी पुस्तक द स्पिरिट ऑफ़ ओरिएण्टल पोइट्री में भाई गुरदास के उद्धरण से कहते हैं कि सतगुरु का स्पर्श प्राप्त होने से अंतर में रूहानी प्रकाश भर जाता है, स्थूलता और मलिनता दूर हो जाती है और जीव के पथ पर अटूट प्रेम का नूर निरंतर झरता रहता है। शिष्य जागते हुए भी सोया रहता है और सतगुरु की दया से वह भी परमेश्वर जैसा ही निर्मल हो जाता है। भाई गुरदास गुरु के बिना शिष्य की कल्पना ही नहीं कर सकते, क्योंकि दोनों के मिलाप से ही संसार में रूहानियत के दिव्य जीवन का ज़हूर होता है। जहाँ भी शिष्य की दृष्टि जाती है, उसको वही दिव्य जीवन दिखाई देता है। सभी वस्तुएँ उसे प्रेम प्रकट करने का माध्यम लगती हैं, वह प्रेम जो कि गुरु और शिष्य के बीच होता है। उसे अपना सतगुरु सदा एक मनुष्य-देह को धारण करनेवाले परमात्मा के रूप में दिखाई नहीं देता, बल्कि उसका मन गुरु के प्रेम में इतना लीन रहता है कि उसे अपने सतगुरु के सिवाय और कुछ दिखाई नहीं देता। अपने एक पद में भाई गुरदास कहते हैं, "मेरे हृदय में प्रकाश की उस प्राणदायी मदिरा की एक बूँद टपका दे। पवित्रता के सभी नियमों को तोड़ दे और मेरा नाम उन परहेज़गारों की सूची में से काट दे, जो जीवन का अमृत नहीं पीते।"

गुरु गोबिन्द सिंह जी के भक्त भाई नन्दलाल अपने ज़िंदगी नामे में बड़े अनुपम ढंग से पूरे सतगुरु की महिमा करते हैं। आप कहते हैं: कामिल मुर्शिद की ज़बान इलाही भेद प्रकट करती है। परमात्मा की सूरत पूरे गुरु की सूरत धारण करके सामने आ जाती है, इसलिए तू कामिल मुर्शिद की सूरत मन में धारण कर ले। जिस हृदय पर कामिल मुर्शिद का स्वरूप छप जाता है, उसके अंदर परमात्मा का शब्द भी घर कर लेता है:

मुरशदे कामिल बुवद दीदारे हक़,
कज़ ज़बानश बिशनवी इसरारे हक़।
सूरते हक़ मुरशदे कामिल बुवद,
नकशे ऊ क़ायम दरूने दिल बुवद।
नकशे ऊ चूं दर दिले कस जा कुनंद,
हरफ़े-हक़ अंदर दिलश मा वा कुनंद।[86]

सतगुरु की आवश्यकता

सतगुरु का प्यार क्या है? इस प्रश्न से दूसरा प्रश्न यह पैदा होता है कि सतगुरु है क्या? यदि सतगुरु भी साधारण नाशवान मनुष्य ही है, तो उसके साथ प्यार करने के बजाय क्यों न सीधा उस सर्वव्यापक परमेश्वर से ही प्यार किया जाए, जो सृष्टि के कण-कण में समाया हुआ है? मनुष्य के प्रेम का पात्र केवल निर्लिप्त और पूर्ण प्रभु ही होना चाहिए, क्योंकि केवल पूर्ण का प्रेम ही हमें जगत या इसके प्रेम से मुक्त कर सकता है। जो ख़ुद अधूरा या अपूर्ण है, उसका प्यार हमें माया के भ्रमों में ही भटकता रहेगा और हमारा चौरासी के चक्र से छुटकारा नहीं करा सकेगा।

परंतु यह बहुत महत्त्वपूर्ण तथ्य है कि उस सर्वव्यापक निराकार परमेश्वर को अपनी प्रीति तथा भावनाओं का आधार नहीं बनाया जा सकता। क्योंकि जो भावना के दायरे में नहीं आ सकता वह प्रेम के दायरे में भी नहीं आ सकता; उसके साथ प्यार भी नहीं किया जा सकता।

वास्तव में ऐसी सत्ता को प्यार करना और उसकी भक्ति करना तो एक ओर रहा, उसके बारे में यह निश्चयपूर्वक कहना भी कठिन होगा कि वह है भी या नहीं। यह सत्य तो एक सूक्ति का रूप धारण कर चुका है कि किसी व्यक्ति या हस्ती को प्यार करने के लिए उसका मौजूद होना यानी ज़िंदा होना आवश्यक है।

वह परमपिता परमात्मा भी मनुष्य के इस संकट से अनजान नहीं है। इसलिए उसने संसार में पूर्ण संत-सतगुरुओं को हर काल और हर समय में भेजने का नियम बनाया है। यही कारण है कि पूर्ण संत-सतगुरु भटके और भूले हुए जीवों को उपदेश देने और मार्ग दिखाने के लिए सदा संसार में आते रहते हैं। परमात्मा के भेजे हुए पूर्ण संत-सतगुरु अँधेरे में भटक रहे जीवों को शब्द यानी नाम के भेद का प्रकाश देते हैं जिसके अभ्यास से जीव जन्म-मरण के चक्र से मुक्ति प्राप्त कर लेते हैं। गुरु साहिब फ़रमाते हैं कि शब्द (नाम) के बिना मुक्ति नहीं मिलती और सतगुरु के बिना शब्द (नाम)का भेद प्राप्त नहीं होता, क्योंकि परमात्मा ने अपने मिलने का यही क़ुदरती नियम बनाया है।

बिन गुर सबद न छूटीऐ देखहो वीचारा॥
जे लख करम कमावही बिन गुर अंधिआरा॥
अंधे अकली बाहरे किआ तिन सिउ कहीऐ॥
बिन गुर पंथ न सूझई कित बिध निरबहीऐ॥[87]

सचै सबद सची पत होई॥ बिन नावै मुकत न पावै कोई॥
बिन सतगुर को नाउ न पाए प्रभ ऐसी बणत बणाई हे॥[88]

इससे पता चलता है कि उस परमात्मा ने ख़ुद ही जीवों के कल्याण के लिए संत-सतगुरु का रूप धारण करके संसार में आने का नियम बनाया है। सतगुरु उस परमात्मा का ही प्रकट रूप है, क्योंकि केवल उसके प्रकट रूप से ही प्रेम किया जा सकता है। यदि केवल प्रेम के द्वारा ही परमात्मा

का मिलाप प्राप्त किया जा सकता है* तो परमात्मा से मिलाप के साधन में सतगुरु एक आवश्यक कड़ी है। गुरु साहिब 'दखणी ओअंकार' में बड़े ख़ूबसूरत ढंग से फ़रमाते हैं कि हर व्यक्ति परमात्मा के लिए अरदास (प्रार्थना) करता है, परंतु जिसको भी वह परमात्मा अपने साथ मिलने का दान देना चाहता है, पूरे गुरु के द्वारा देता है:

देह देह आखै सभ कोई जै भावै तै दे॥
गुरू दुआरै देवसी तिखा निवारै सोए॥[89]

गुरु नानक साहिब ने गुरु की आवश्यकता पर ही ज़ोर नहीं दिया, बल्कि सतगुरु का प्रत्यक्ष होना अनिवार्य माना है। परंतु सवाल यह उठता है कि क्या भूतकाल में हुआ कोई पूर्ण संत-सतगुरु हमारा गुरु नहीं हो सकता? क्या ऐसा महात्मा हमें रूहानी मार्गदर्शन और सहायता नहीं दे सकता? अपने समय के जीवित सतगुरु के बिना काम क्यों नहीं चल सकता? हमें यह बात याद रखनी चाहिए कि प्राचीनकाल में आए पूर्ण सतगुरु इसी लिए परमात्मा से हमारे पास आए थे कि हम सीधे ही परमात्मा से या उसमें समा चुके पिछले पूर्ण महात्मा से लाभ नहीं उठा सकते। वजह उनकी सामर्थ्य की नहीं, हमारी मजबूरी की है; क्योंकि हम अपनी वर्तमान अवस्था में उनसे सहायता लेने में समर्थ नहीं हैं। हम आज तक एक देश से दूसरे देश में जा चुके सूर्य से प्रकाश नहीं ले सकते। दूसरे देश में जा चुके सूर्य से लाभ उठाने के लिए हमें उस देश में जाना पड़ेगा। इसी प्रकार यदि हम ख़ुद सचखंड जा सकते तो हमें न आज और न कभी पहले किसी सतगुरु की आवश्यकता होती। वक़्त का सतगुरु पहले परमेश्वर के स्तर से हमारे स्तर पर आता है और फिर हमें परमात्मा यानी उस स्तर पर ले जाता है जिस पर पिछले पूर्ण संत-महात्मा पहुँच चुके हैं। इसलिए परमात्मा से जुड़ने के लिए कहें या पिछले समय

* (1) मन रे किउ छूटह बिन पिआर॥ गुरमुख अंतर रव रहिआ बखसे भगति भंडार॥ आदि ग्रन्थ, पृ.60

(2) बिन गुर प्रीत न ऊपजै हउमै मैल न जाए॥ – आदि ग्रन्थ, पृ.60

में हुए पूर्ण संतों से जुड़ने के लिए कहें, हर हालत में वक़्त के पूरे गुरु की आवश्यकता है।

यह ठीक है कि पिछले संतों की रचनाओं और वाणी का हमारे मन पर गहरा प्रभाव पड़ता है और उनसे हमारे मन में उनके बताए गए मार्ग पर चलने का शौक़ पैदा होता है। इसमें भी कोई संदेह नहीं कि जो जीव उन महात्माओं के जीवन-काल में उनकी संगति में आए, उन महात्माओं ने उन जीवों को परमात्मा से मिलाकर अपना यानी परमात्मा का ही रूप बना दिया। परंतु वे महात्मा अब मनुष्य-लोक से जा चुके हैं और आज हम अपने रूहानी सफ़र में उनसे कोई अमली सहायता नहीं ले सकते।

जीवित सतगुरु

वास्तव में सतगुरु शब्द का अर्थ ही जीवित यानी साक्षात सतगुरु है। पूर्ण सतगुरु और परमात्मा में यह अंतर है कि सतगुरु, देहस्वरूप में हमारे सामने प्रत्यक्ष प्रकट होता है, जबकि परमात्मा अपने निराकार स्वरूप में हमारे लिए अलख है। जब पूर्ण महात्मा देह का चोला उतार देता है तो वह वापस जाकर निराकार परमेश्वर में समा जाता है। उस हालत में उसमें और निराकार परमेश्वर में कोई भेद नहीं रहता। इसलिए रूहानी सफ़र या परमात्मा से मिलाप के लिए प्राचीन समय में हुए किसी संत-महात्मा पर निर्भर रहने से तो सीधा परमात्मा पर ही निर्भर रहना चाहिए, क्योंकि महात्मा और परमात्मा एक हो चुके हैं। उस अवस्था में किसी मध्यस्थ की आवश्यकता नहीं होनी चाहिए। सीधे परमात्मा से सहायता प्राप्त करने का अर्थ है कि हमें न आज के और न ही किसी प्राचीन समय के महात्मा की आवश्यकता है। इसका यह भाव हुआ कि हमें सतगुरु की कोई आवश्यकता ही नहीं। उस हालत में इस प्रश्न का उत्तर देना होगा कि संसार में पूर्ण संत-महात्मा क्यों आते रहे हैं?

संतों के दो रूप होते हैं। एक तो इस संसार में विचरने के लिए स्थूल शरीर; जब तक कोई संत जीवित है, इस शरीर की आवश्यकता है। दूसरा, संतों का शब्द-रूप होता है; इसे शब्द-रूप कहें या

परमेश्वर-रूप कहें, कोई अंतर नहीं। इस रूप द्वारा संत इस संसार में रहते हुए भी निराकार परमेश्वर से जुड़े यानी अभेद होते हैं और शरीर का चोला त्यागने के बाद भी वे उसी रूप में जाकर समा जाते हैं। गुरु अर्जुन साहिब समझाते हैं कि केवल देह के अंतर के कारण परमात्मा और पूर्ण संत दो नहीं होते। शरीर का भेद होने के बावजूद दोनों वास्तव में एक हैं:

हर का सेवक सो हर जेहा॥ भेद न जाणहो माणस देहा॥[90]

जब हम कहते हैं कि परमात्मा की प्राप्ति के लिए सतगुरु की आवश्यकता है तो इसका यह अर्थ नहीं कि परमात्मा से मिलने के लिए परमात्मा की आवश्यकता है, क्योंकि शरीर का चोला त्याग चुका महात्मा इस समय परमात्मा ही बन चुका है। इसलिए सतगुरु की आवश्यकता का अर्थ ही अपने समय के जीवित देहधारी महात्मा की ज़रूरत है। महात्मा का देहस्वरूप केवल तब तक रहता है जब तक वह इस मनुष्य-लोक में जीवित है। उसके बाद उसका मनुष्य-लोक में कार्य समाप्त हो जाता है। समय का सतगुरु ही प्रकट या प्रत्यक्ष सतगुरु है। इसलिए यदि हमें सतगुरु की आवश्यकता है, जैसा कि और सभी ग्रंथ-शास्त्र बार-बार हमें याद दिलाते हैं कि हमें सतगुरु की ज़रूरत है, तो निस्संदेह इसका यही अर्थ है कि हमें अपने समय के प्रत्यक्ष जीवित, देहधारी सतगुरु की आवश्यकता है; क्योंकि शरीर का चोला त्याग चुका महात्मा तो सदा के लिए परमात्मा में समा चुका है। हम केवल उसी महात्मा से लाभ उठा सकते हैं, जो आज प्रत्यक्ष हमारे सामने उपस्थित हो, जो हमें शब्द से जुड़ने का भेद दे सके और अपने साथ ऊपर के रूहानी मंडलों में ले जा सके। गुरु नानक साहिब ख़ुद बहुत सुंदर ढंग से संकेत करते हैं कि जो सतगुरु के दर्शन करता है, उससे दीक्षा और शब्द का भेद लेता है, अपना तन-मन उस पर अर्पण करता है, वही सुरत को बाहर से अंदर ले जाकर अपने आप की पहचान करने और परमेश्वर का भेद पाने में सफल होता है:

सतगुर देखिआ दीखिआ लीनी॥
मन तन अरपिओ अंतरगत कीनी॥
गत मित पाई आतम चीनी॥[91]

यदि हम खुले दिल और निष्पक्ष भाव से विचार करें तो हम पाएँगे कि पिछले समय के संत-महात्माओं पर हमारा विश्वास केवल हमारी कल्पना पर ही आधारित है, इसका कोई वास्तविक और तर्कपूर्ण आधार नहीं है। पिछले किसी गुज़र चुके महात्मा और आज के किसी जिज्ञासु में कोई संबंध स्थापित नहीं हो सकता। हम अपने मन में अवश्य सोच लेते हैं कि प्राचीन समय में हुआ अमुक महात्मा हमारा गुरु है, परंतु उस महात्मा की ओर से तो कोई 'हाँ' यानी मंज़ूरी नहीं होती कि उसने हमें शिष्य या सेवक स्वीकार कर लिया है। यदि हम पिछले समय के एक महात्मा को छोड़कर पिछले समय के ही किसी दूसरे महात्मा को गुरु धारण कर लेते हैं, तो न पहला महात्मा यह बताता है कि उसने हमें अपना शिष्य बनाने से ख़ारिज कर दिया है और न ही दूसरा यह सूचित करता है कि उसने हमें अपना शिष्य या सेवक बनाना स्वीकार कर लिया है। किसी जीव को अपना शिष्य या सेवक स्वीकार करना या न करना केवल सतगुरु का अधिकार है, शिष्य का नहीं। कोई व्यक्ति किसी महात्मा को अपना गुरु बनने के लिए विवश नहीं कर सकता। इस तरह जीवित शिष्य और गुज़र चुके सतगुरु के बीच कोई वास्तविक संबंध स्थापित नहीं होता। यह केवल हमारे मन का भ्रम या धोखा होता है। हम उसकी सहमति के बिना ही अपनी ओर से सोचते रहते हैं कि हम अमुक महात्मा के शिष्य बन चुके हैं। ऐसी स्थिति में हमारा मन ही हमारा अगुआ या गुरु होता है और हम मन के कहने पर ही चलते हैं।

एक और बात विचारणीय है कि जब हम ऐसा विश्वास कर लेते हैं कि एक विशेष महात्मा के बाद संसार में कोई दूसरा पूर्ण महात्मा नहीं आएगा, तो हम उस महात्मा से पहले और बाद में संसार में आनेवाले जीवों के साथ बहुत बड़ा अन्याय करते हैं। वह परमपिता परमात्मा जो न्याय ही नहीं, प्रेम और दया की मूर्ति भी है, अपनी दया-मेहर में कोई

भेदभाव नहीं कर सकता। वह कभी यह नहीं कर सकता कि थोड़े से समय के लिए ही अपने संत-महात्माओं को संसार में भेजे और उन महात्माओं से पहले या पीछे संसार में आनेवाले जीवों को मुक्ति प्राप्त करने और अपने साथ मिलाप कर सकने के अधिकार से दूर रखे। ऐसी स्थिति में वे लोग जो किसी संत के आने से पहले संसार में आए, विशेष तौर पर अभागे कहलाएगें, क्योंकि वे बेचारे तो उस महात्मा की कोई ख़याली तस्वीर भी नहीं बना सकते, जिसके लिए शायद यह कहा जाए कि वह अकेला ही सब आनेवाली पीढ़ियों का मुक्तिदाता है।

वास्तव में परमात्मा की दया-मेहर का स्रोत कभी नहीं सूखता। अपनी अपार दया के कारण ही उसने ऐसा प्रबंध कर रखा है कि संसार कभी भी पूर्ण संत-सतगुरुओं से ख़ाली नहीं रहता। संसार में समाज और राजनीति के नियम या क़ानून बदल सकते हैं, पर यह ईश्वरीय क़ानून कभी नहीं बदल सकता कि परमात्मा से मिलाप करने की इच्छुक आत्माओं की सहायता के लिए कोई न कोई पूर्ण संत सदा संसार में मौजूद रहेगा। जिस आत्मा में परमात्मा से मिलने की सच्ची तड़प या सच्चा विरह होगा उसकी सहायता के लिए पूरा सतगुरु ज़रूर प्रकट होगा। गुरु नानक साहिब कहते हैं, हे प्रभु तेरे संत हर युग में धन्य हैं, जो सदा तेरे गुण गाते हैं और जिनकी रसना पर सदा तेरे प्रेम के गीत हैं: *जुग जुग संत भले प्रभ तेरे॥ हर गुण गावह रसन रसेरे॥*[92] वास्तव में गुरु नानक के घर की वाणी में बार-बार इस बात पर ज़ोर दिया गया है कि पूरे सतगुरु के बिना कभी भी परमात्मा से मिलाप नहीं हो सकता:

मत को भरम भुलै संसार॥ गुर बिन कोए न उतरस पार॥[93]

बिन सतगुर सेवे नाम न पाईऐ पड़ थाके सांत न आई हे॥[94]

कहो नानक प्रभ इहै जनाई॥ बिन गुर मुकत न पाईऐ भाई॥[95]

बिन गुर दाते कोए न पाए॥ लख कोटी जे करम कमाए॥[96]

साधू सतगुर जे मिलै ता पाईऐ गुणी निधान॥[97]

सो बूझै जो सतगुर पाए॥ हउमै मारे गुर सबदे पाए॥[98]

सतगुरु के प्रति प्रेम और श्रद्धा का भाव केवल गुरु-घर की वाणी तक ही सीमित नहीं है। ईरान के सूफ़ी संतों की लेखनी में भी इस गहरे प्रेम और श्रद्धा के दर्शन होते हैं। उदाहरण के लिए शम्स तब्रेज़ के कलाम में आता है: यदि तू रब्ब का दीदार करना चाहता है तो संतों के चरणों की धूलि को अपनी आँखों का सुरमा बना, क्योंकि उनमें जन्म से अंधे को भी आँखें दे सकने की सामर्थ्य है। अंधों से आपका भाव ऐसे लोगों से है जिनको सर्वव्यापक परमात्मा कहीं नज़र नहीं आता:

गर अयां ख़ाही ज़ि ख़ाके-पाए ईशां सुरमा साज़,
जां किह् ईशां कोरे मादर ज़ाद रा राहबां कुनंद।[99]

सच्चा सतगुरु

संत-महात्माओं और ग्रंथ-शास्त्रों की वाणी में यह जान लेने के बाद कि परमात्मा की प्राप्ति के लिए पूरे सतगुरु की सहायता प्राप्त करना आवश्यक है, यह जानना भी ज़रूरी है कि पूरा सतगुरु किसे कहते हैं? पूरा सतगुरु वह महात्मा है, जिसने अपनी रूहानी चढ़ाई में सत्पुरुष यानी परमात्मा से मिलाप कर लिया है और जो दूसरे जीवों की भी परमात्मा से मिलाप करने में सहायता करता है। परमात्मा से मिलाप कर लेना और परमात्मा से मिलाप करवा सकने में समर्थ होना, पूरे सतगुरु के मुख्य लक्षण हैं। ऐसा महात्मा उच्चतम रूहानी प्राप्ति का पुंज होता है। वह ऐसी कुंजी है जो जिज्ञासु के रूहानी सफ़र के द्वार पर लगे ताले को खोलने का काम करती है। गुरु अंगद साहिब कहते हैं कि सतगुरु कुंजी है, जीव ताला है, मन कोठा है और तन छत है। गुरु के बिना ताला नहीं खुल सकता और गुरु के सिवाय किसी दूसरे के पास कुंजी नहीं है:

गुर कुंजी पाहू निवल मन कोठा तन छत॥
नानक गुर बिन मन का ताक न उघड़ै अवर न कुंजी हथ॥[100]

सतगुरु स्वयं रूहानी अभ्यास द्वारा परमात्मा से मिलाप कर चुका है, उसकी आत्मा परमात्मा में समाकर परमात्मा का रूप हो चुकी है। ऊपर कह चुके हैं कि सबसे ऊँचे रूहानी अनुभव का असली अर्थ ही परमात्मा में समाकर परमात्मा का रूप हो जाना है। गुरु साहिब इस विषय में संकेत करते हैं कि परमात्मा ने अपने आप को गुरु के अंदर रखा है: गुर मह आप रखिआ करतारे॥[101] गुरु अर्जुन साहिब कहते हैं कि परमात्मा के भक्त, देह में बैठे होने के कारण देखने में अवश्य परमात्मा से भिन्न लगते हैं, परंतु वास्तव में वे उससे भिन्न नहीं होते। जिस प्रकार समुद्र से उठी हुई लहर समुद्र में ही समा जाती है, उसी प्रकार हरि के सच्चे सेवक अर्थात् संत परमेश्वररूपी समुद्र की लहरें होती हैं। वे लहर के रूप में भी समुद्र का ही अंग होते हैं और लहर की तरह ही अंत में परमात्मारूपी समुद्र में समा जाते हैं:

हर का सेवक सो हर जेहा॥ भेद न जाणहो माणस देहा॥
जिउ जल तरंग उठह बहु भाती फिर सललै सलल समाइदा॥[102]

मुर्शिद या सतगुरु के परमात्मा में समाकर परमात्मा का रूप हो जाने का भाव शम्स तब्रेज़ बड़े सुंदर ढंग से समझाते हैं: वह सर्वशक्तिमान परमात्मा पहले मज़बूत ताला लगाकर ख़ुद दरवाज़े के पीछे छिपकर बैठ जाता है और फिर ख़ुद ही इंसानी चोला पहनकर दरवाज़ा खोलने के लिए आ जाता है:

आँ पादशाहे आअज़म दर बस्ता बूद मुहकम।
पोशीद दल्क़े-आदम यअनी किह बर दर आमद।[103]

पूरे सतगुरु की एक बड़ी निशानी गुरु नानक देव यह भी बताते हैं कि ऐसा सतगुरु अपने शिष्य को अंदर परमात्मा से विसाल करने के

समर्थ बनाता है और यह काम वह पाँच शब्दों की युक्ति या साधना द्वारा करता है।

पाँच शब्द

गुरु नानक साहिब के सिद्धांत में शब्द को ही सारी दृश्य और अदृश्य सृष्टि का कर्ता और आधार माना गया है और शब्द को ही मुक्ति या परमेश्वर-प्राप्ति का एकमात्र साधन स्वीकार किया गया है। इस विचारधारा में 'पंज सब्द' का ज़िक्र किया गया है, जिसको समझ लेना ज़रूरी है। एक ओर तो एक शब्द द्वारा संपूर्ण सृष्टि की रचना तथा दूसरी ओर पाँच शब्द की बात में जो परस्पर विरोधाभास प्रतीत होता है, उसका वास्तविक कारण यह है कि शब्द तो एक ही है और एक शब्द ही सारी सृष्टि में समाया हुआ है, परंतु यह शब्द पाँच रूहानी मंडलों में से गुज़रता हुआ, पाँच भिन्न-भिन्न रूप धारण कर लेता है। नदी का अपने स्रोत से निकलते समय आवाज़ व आकार और होता है, पहाड़ों में मार्ग बनाते समय और, घाटी में और, मैदानों में और तथा समुद्र में समाने से पहले और। इसी प्रकार शब्द की एक ही धारा अलग-अलग रूहानी मंडलों से गुज़रती हुई अलग-अलग प्रकाश और अलग-अलग धुनों का रूप धारण कर लेती है। नदी के भिन्न-भिन्न आकार, स्वरूप और आवाज़ों के विषय में पूरी जानकारी हासिल करने के लिए, उस सारे रास्ते का पूरा ज्ञान होना चाहिए, जिसमें से नदी निकलकर आती है। इसी तरह पूरे सतगुरु को अलग-अलग मंडलों में शब्द के अलग-अलग प्रकाश और इसकी अलग-अलग धुनों या आवाज़ों का पूरा ज्ञान होना चाहिए। गुरु नानक साहिब कहते हैं कि सच्चा सतगुरु जीव को शरीररूपी घर में ही परमात्मा का निज घर दिखा देता है और इसकी निशानी वे पाँच शब्द हैं, जो जीव इस रूहानी सफ़र में अपने अंदर सुनता है:

घर मह घर देखाए दे सो सतगुर पुरख सुजाण॥
पंच सबद धुनिकार धुन तह बाजै सबद नीसाण॥[104]

पाँच शब्दों का वर्णन गुरु साहिब और भारत के अन्य अनेक संतों ने ही नहीं, बाहर के देशों के सूफ़ी फ़क़ीरों ने भी किया है। ख़्वाजा हाफ़िज़ के फ़ारसी कलाम में आता है: तू ख़ामोश होकर अंदर आसमान से आती हुई पाँच नौबतें सुन। ये पाँच नौबतें, छः चक्रों और सात आसमानों के पार से आती हैं:

ख़ामोश ओ पंज नौबत बिशनौ ज़ि आसमाने,
क-आँ आसमाने बेंरूँ जां हफ़त ओ ईं शश आमद।[105]

सदाचारपूर्ण जीवन

नेक और पवित्र जीवन रूहानी उन्नति के लिए ज़रूरी शर्त है और रूहानी उन्नति का क़ुदरती परिणाम भी। ऊँचे रूहानी जीवन से नेकी इस प्रकार फूट-फूटकर निकलती है जिस प्रकार फूल से सुगंधि। सच्चा महात्मा वह नहीं है जिसका रूहानियत में केवल उसूली या सैद्धांतिक विश्वास हो। सच्चा महात्मा वास्तव में वह है जो अपने अंदर रूहानी अनुभव प्राप्त करके अमली तौर पर सच के दर्शन कर लेता है। दूसरे शब्दों में, सच्ची रूहानियत में परमात्मा के विषय में लफ़्ज़ी या किताबी ज्ञान पर ज़ोर नहीं दिया जाता, बल्कि अमली तौर पर उससे मिलाप करने पर ज़ोर दिया जाता है। जो व्यक्ति शरीर को ख़ाली करके आँखों के पीछे सुरत एकाग्र करके अंदर शब्द की आवाज़ और शब्द के प्रकाश से नहीं जुड़ा, वह साधु या महात्मा कहलाने का अधिकारी नहीं। अपने अंतर में शब्द का साक्षात अनुभव करने के लिए निर्मल रहनी या नेक जीवन ज़रूरी है। इस मार्ग पर चलने के इच्छुक जिज्ञासु और साधक के आचरण में पूर्ण निर्मलता का होना आवश्यक है। नेक आचरण के साथ ही उसकी कमाई भी नेक होनी चाहिए। गुरु साहिब कहते हैं कि दरगाह में केवल वही दान क़बूल होता है, जो अपनी हक़-हलाल की नेक कमाई में से दिया जाए: *नानक अगै सो मिलै जे खटे घाले दे॥*[106] गुरु साहिब के कहने का भाव है कि हक़-हलाल की कमाई का कुछ भाग प्रसन्नतापूर्वक दूसरों में बाँटना और परमार्थ के कामों में ख़र्च करना भी ज़रूरी है। इस तरह के 'वंड छक्कण'

अर्थात् बाँटकर खानेवाले व्यक्ति को परमात्मा के सच्चे मार्ग की पहचान हो जाती है:

घाल खाए किछ हथहो दे॥ नानक राह पछाणह से॥[107]

नेक कमाई से बने भोजन का मन पर भी नेक प्रभाव होता है। इससे रूहानी अभ्यास में सहायता मिलती है। इसके विपरीत, बुरी कमाई या पराई कमाई का भोजन रूहानी उन्नति में रुकावट डालता है। रूहानी उन्नति चाहनेवाले के लिए केवल यही ध्यान रखना काफ़ी नहीं कि कैसा भोजन किया जाए, बल्कि यह देखना भी ज़रूरी है कि भोजन कैसी कमाई से आया है और साथ ही भोजन उत्तेजना तथा विकार उत्पन्न करनेवाला नहीं होना चाहिए। गुरु साहिब कहते हैं: *बाबा होर खाणा खुसी खुआर॥ जित खाधै तन पीड़ीऐ मन मह चलह विकार॥*[108]

इस प्रकार सच्चे परमार्थी का जीवन अंदर और बाहर से एक-सा होना चाहिए। गुरु साहिब ने बड़े स्पष्ट शब्दों में पाखंड या दिखावे के जीवन का खंडन किया है। सच्चे परमार्थी के सोचने और कहने, तथा कथन और क्रिया या 'कथनी और करनी' में पूरी एकस्वरता होनी चाहिए। उसकी कथनी, करनी और रहनी उसके विचार का दर्पण होनी चाहिए। गुरु साहिब उन लोगों के बारे में साफ़ तौर पर कहते हैं कि जो बाहर से पवित्र और बड़े नेक बनकर दिखाते हैं, परंतु अंदर से झूठे और दुष्ट होते हैं। ऐसे लोग चाहे सारी आयु तीर्थों पर स्नान करते रहें, कभी निर्मल नहीं हो सकते:

अंदरहो झूठे पैज बाहर दुनीआ अंदर फैल॥
अठसठ तीरथ जे नावह उतरै नाही मैल॥[109]

गुरु साहिब ने अपने समय के पंडितों और क़ाज़ियों की ख़ास तौर पर ज़ोरदार शब्दों में आलोचना की है जो दुनिया को नेक-पाक होने का दिखावा करते थे, परंतु अंदर से साधारण लोगों की तरह ही बुराइयों या विकारों के शिकार थे। आप कहते हैं कि क़ाज़ी इनसाफ़ की कुर्सी पर

बैठता है। वह तस्बीह (माला) फेरता है और परमात्मा का नाम लेता है, परंतु वह रिश्वत लेकर नाइनसाफ़ी करता है; यदि कुछ कहें तो क़ुरान शरीफ़ की आयतें सुनाना शुरू कर देता है:

काजी होए कै बहै निआए॥ फेरे तसबी करे खुदाए॥
वढी लै कै हक गवाए॥ जे को पुछै ता पड़ सुणाए॥[110]

फिर गुरु साहिब फ़रमाते हैं कि परमात्मा के नाम पर व्यापार करनेवाले लोगों के जीवन को धिक्कार है। उनकी परमार्थ की खेती उजड़ जाती है और उनके पास साथ ले जाने के लिए कुछ नहीं बचता:

ध्रिग तिना का जीविआ जे लिख लिख वेचह नाउ॥
खेती जिन की उजड़ै खलवाड़े किआ थाउ॥[111]

सांसारिक पदार्थों तथा धन-दौलत की तृष्णा हमेशा रूहानी उन्नति के मार्ग में भारी रुकावट रही है। धन-संपत्ति आदि के लोभ में आकर जीव को भले-बुरे तक का ध्यान नहीं रहता। अधिक मिलने से उसकी तृष्णा बढ़ती ही जाती है। जैसे-जैसे लोभ की पूर्ति होती है, वैसे-वैसे लोभी का लोभ और बढ़ता जाता है। गुरु साहिब कहते हैं कि चाहे सारे लोकों की दौलत भी क्यों न मिल जाए, लोभी की तृष्णा पूरी नहीं हो सकती: *भुखिआ भुख न उतरी जे बंना पुरीआ भार॥*[112] सांसारिक पदार्थों के पीछे पागल हुआ जीव चोरी, ठगी, बेईमानी और अन्य खोटे कर्म करने से भी नहीं झिझकता:

लख चोरीआ लख जारीआ लख कूड़ीआ लख गाल॥
लख ठगीआ पहिनामीआ रात दिनस जीअ नाल॥[113]

गुरु नानक साहिब फ़रमाते हैं कि धन-दौलत का जाल और प्रभाव इतना दुःखपूर्ण है कि यह पाप के बिना इकट्ठी नहीं होती और मरने पर साथ नहीं जाती। इसके द्वारा अनेक बरबाद हो चुके हैं और अनेक हो रहे हैं:

इस जर कारण घणी विगुती इन जर घणी खुआई॥
पापा बाझहो होवै नाही मुइआ साथ न जाई॥[114]

बेईमानी की कमाई करनेवाले हिंदू और मुसलमान दोनों ही की गुरु साहिब ने एक जैसी आलोचना की है। हिंदू गाय के और मुसलमान सूअर के मांस को खाना पाप समझते हैं। गुरु साहिब कहते हैं कि पराया हक़ मारना, गाय और सूअर के मांस खाने के बराबर है। आपके कथन के अनुसार गुरु या पीर दरगाह में उनकी ही सहायता करता है जो पराए हक़ का मुरदार खाने से परहेज़ करते हैं:

हक पराइआ नानका उस सूअर उस गाए॥
गुर पीर हामा ता भरे जा मुरदार न खाए॥[115]

शाकाहारी भोजन

गुरु नानक साहिब शाकाहारी भोजन के बड़े दृढ़ समर्थक थे। शाकाहारी भोजन का रिवाज भारत के अहिंसा और जीव-दया के प्राचीन सिद्धांत पर आधारित है। जैन मत के संस्थापक भगवान महावीर और बौद्धमत के संस्थापक महात्मा बुद्ध के वक़्त से आज तक भारत के नैतिक और धार्मिक जीवन में इस सिद्धांत पर ज़ोर दिया गया है। मोहसिन फ़ानी अपनी प्रसिद्ध फ़ारसी रचना *दबिस्ताने मज़ाहिब* में जो कि गुरु नानक के विषय में एक विश्वसनीय पुस्तक है, उसमें लिखता है: वे (गुरु नानक साहिब) मांस-शराब के प्रयोग के विरुद्ध थे। उन्होंने स्वयं इन वस्तुओं के प्रयोग से परहेज़ किया और जीवों के प्रति निर्दयतापूर्ण व्यवहार के विरुद्ध प्रचार किया। उनके ज्योति-ज्योत समा जाने के बाद, उनके कुछ अनुयायियों ने मांस खाना शुरू कर दिया। जब गुरु नानक की गद्दी के गुरु, अर्जुन देव को इस बात का पता चला तो उन्होंने लोगों को मांस खाने से मना किया और फ़रमाया, "मांस खाना गुरु नानक साहिब के हुक्म के खिलाफ़ है।"

आदि ग्रन्थ में कई स्थानों पर गुरु नानक साहिब ने अपनी वाणी में हिंदुओं और मुसलमानों के धार्मिक नेताओं, पुरोहितों और मुल्लाओं के

पाखंड भरे जीवन की ज़बरदस्त आलोचना की है, ऐसे विवरणों में आपने मांसाहार का विशेष खंडन किया है। आप जप जी में एक स्थान पर कहते हैं कि संसार में अनेक लोग जीवहत्या के पाप के भागी बनते हैं और अनेक म्लेच्छ-बुद्धि वाले लोग अपवित्र भोजन ग्रहण कर रहे हैं:

असंख गलवढ हतिआ कमाहे॥ असंख पापी पाप कर जाहे॥
असंख कूड़िआर कूड़े फिराहे॥ असंख मलेछ मल भख खाहे॥[116]

आप कहते हैं कि ब्राह्मण लोगों को यज्ञोपवीत धारण करने के लिए कहता है, पर उसकी अपनी करनी यह है कि वह बकरे काटकर और पकाकर खाता है। मांस खानेवाले मुल्ला नमाज़ पढ़कर अपनी नेकी ज़ाहिर करते हैं और जीवों के गले पर छुरियाँ चलानेवाले ब्राह्मण अपने गले में यज्ञोपवीत पहने फिरते हैं। ऐसे लोगों की रहनी भी झूठी है और उनका खाना-पीना भी झूठा है। ब्राह्मण माथे पर तिलक लगाकर और शरीर पर धोती बाँधकर फिरते हैं, परंतु उनके हाथों में छुरियाँ हैं और वे कसाइयों की तरह जीवहत्या करते हैं:

तग कपाहहो कतीऐ बाम्हण वटे आए॥
कुह बकरा रिंन्ह खाइआ सभ को आखै पाए॥ ...
माणस खाणे करह निवाज॥ छुरी वगाइन तिन गल ताग॥
तिन घर ब्रहमण पूरह नाद॥ उन्हा भि आवह ओई साद॥
कूड़ी रास कूड़ा वापार॥ कूड़ बोल करह आहार॥
सरम धरम का डेरा दूर॥ नानक कूड़ रहिआ भरपूर॥
मथै टिका तेड़ धोती कखाई॥ हथ छुरी जगत कासाई॥[117]

गुरु साहिब द्वारा जारी किए गए गुरु के लंगर में भी कभी मांस परोसने की आज्ञा नहीं दी गई। गुरुद्वारों (धर्मस्थानों) के प्रबंध में आए कई परिवर्तनों के बावजूद इनमें आज तक मांस, शराब और अन्य नशीली चीज़ों के प्रवेश की इजाज़त नहीं दी गई है, ताकि इन स्थानों की पवित्रता

भंग न हो। जन्म-साखियों में मक्का और मदीना से संबंधित साखियों से और भाई बाले की जन्म-साखी से भी इस विचार की पुष्टि होती है कि गुरु साहिब के समय शाकाहारी भोजन का रिवाज था। छठी पातशाही ने भी अपने हुक्मनामों में संगत को मांस व मछली खाने से मना किया था।*

भारतवर्ष में शाकाहारी भोजन की परंपरा कर्मों के क़ानून पर आधारित है। कर्मों के क़ानून की दृढ़ धारणा है कि कोई भी जीव अपने किए हुए कर्मों के फल से नहीं बच सकता। उसका फल चाहे इस जन्म में मिले, या फिर किसी अगले जन्म में, पर मिलेगा अवश्य। बीज बोना, फ़सल काटने की मजबूरी के साथ जुड़ा हुआ है। जो इस जन्म में किसी को मारता है, उसको किसी अगले जन्म में उसके हाथों मरना भी पड़ेगा। जो किसी पशु की जान लेता है उसे, अपने कर्मों का लेखा भुगतने के लिए, जान देनी भी पड़ेगी। भारत की शायद ही कोई ऐसी विचारधारा हो जिसमें कर्म और फल के नियम को न माना गया हो। यह नियम इस जन्म तक ही सीमित नहीं है, भावी जन्मों तक भी फैला हुआ है। गुरु साहिब कहते हैं कि कर्मों का क़ानून केवल किंवदंती नहीं, एक सच्ची वास्तविकता है और हर एक को अपने किए हुए कर्मों का फल स्वयं भोगना पड़ता है:

पुंनी पापी आखण नाहे॥ कर कर करणा लिख लै जाहो॥
आपे बीज आपे ही खाहो॥ नानक हुकमी आवहो जाहो॥[118]

सुख दुख पुरब जन्म के कीए॥ सो जाणै जिन दातै दीए॥
किस कउ दोस देह तू प्राणी सहु अपणा कीआ करारा हे॥[119]

चंगिआईआ बुरिआईआ वाचै धरम हदूर॥
करमी आपो आपणी के नेड़ै के दूर॥[120]

भारतवर्ष के धर्मों में प्रचलित शाकाहारी भोजन के पीछे एक अन्य महत्त्वपूर्ण विचारधारा काम कर रही है कि हमारे आहार का हमारे विचार

* देखिए: 'हुक्मनामे', संपादक – डॉ. गंडा सिंह, पंजाबी विश्वविद्यालय, पटियाला।

और आचार पर बहुत प्रभाव पड़ता है। कुछ ऐसे सात्त्विक भोजन हैं जो शांति और धैर्य में वृद्धि करते हैं और ऐसे राजसी और तामसिक भोजन भी हैं जो उत्तेजना और विकारों को जन्म देते हैं। ऐसे भोजन भी है जो भजन-सिमरन के लिए आवश्यक एकांत वातावरण के अधिक अनुकूल हैं और ऐसे भोजन भी हैं जिनसे सांसारिक उद्यम और भागदौड़ के जीवन में रुचि बढ़ती है। गुरु साहिब कहते हैं:

> रस घोड़े रस सेजा मंदर रस मीठा रस मास॥
> एते रस सरीर के कै घट नाम निवास॥[121]

संत-महात्माओं ने इस बात पर ज़ोर दिया है कि केवल ऐसे भोजन का सेवन करना चाहिए जो रूहानी उन्नति में सहायता देनेवाला हो, क्योंकि जैसा कि प्रसिद्ध है, जैसा खाए अन्न, वैसा होए मन। इसलिए संत-महात्मा ज़ोरदार शब्दों में अपने शिष्यों और सेवकों को मांस, मछली, अंडे, शराब और नशीले पदार्थों और दवाइयों आदि के प्रयोग की सख़्त मनाही करते हैं। वे उनको दाल, अनाज, फल, सब्ज़ी और मेवे के प्रयोग की ताकीद करते हैं, क्योंकि इनसे बना भोजन स्वास्थ्य और भजन-सिमरन दोनों के लिए लाभदायक है।

अंतिम शब्द

अरस्तू ने एक स्थान पर अपने महान गुरु के विषय में ये विचार प्रकट किए हैं: "प्लेटो इतना बड़ा है कि कोई छोटा व्यक्ति उसकी प्रशंसा करने के योग्य नहीं है।" क्या गुरु नानक साहिब के विषय में की गई हमारी महिमा पर यही कथन लागू नहीं होता? हम साधारण तौर पर गुरु साहिब की महिमा करते रहते हैं कि वे महान समाज-सुधारक थे। हम कहते हैं कि उन्होंने भिन्न-भिन्न संप्रदायों के लोगों को आपस में प्रेम और प्यार से रहना सिखाया। हम यह भी कहते हैं कि उन्होंने जाति-पाँति के भेदभाव को समाप्त किया। निस्संदेह गुरु साहिब ने काफ़ी सीमा तक यह सब करने में सफलता पाई, परंतु यह तो उनके महान उपदेश का मामूली-सा

परिणाम था। जितनी मान्यता इन सब बातों के लिए हम उन्हें देते हैं, वे उनसे कहीं अधिक महान थे। जो लोग उनकी संगति में आए, गुरु साहिब ने उनको अपने महान उपदेश पर चलने के योग्य बनाया और परमसत्य की पहचान करने की सामर्थ्य बख़्शी। गुरु साहिब ने उनको उस सत्य का केवल बौद्धिक ज्ञान ही प्रदान नहीं किया, बल्कि अंदर सत्य के साक्षात दर्शन भी करा दिए। उन्होंने लोगों को इस सच का जीता-जागता अनुभव कराया कि एक ही सर्वव्यापक परमेश्वर सबमें समाया हुआ है। उन्होंने लोगों को यह प्रत्यक्ष ज्ञान प्राप्त करने के योग्य बनाया कि समस्त बाहरी भेदभाव केवल दिखावे के और बनावटी हैं, जबकि सारी सृष्टि के जीवों के अंदर एक ही परमात्मा का नूर फैल रहा है। गुरु साहिब ने अपने आंतरिक रूहानी अनुभव के आधार पर इस पूर्ण एकता का ऐसा दृढ़ ज्ञान दिया है कि हर प्रकार का द्वैत एक भ्रम बनकर रह गया। इस प्रकार के रूहानी प्रकाश और सहज ज्ञान के बाद किसी प्रकार के लड़ाई-झगड़े और वैर-विरोध की गुंजाइश ही कैसे रह सकती है? प्रेम और दया के रूप उस प्रभु में समा जाने के बाद जीवात्मा में किसी प्रकार का स्वार्थ, द्वेष, क्रोध और घृणा के लिए स्थान ही कहाँ बचता है?

किसी महान संत-सतगुरु के संसार से चले जाने के बाद सदा यही ख़तरा बना रहता है कि समय बीतने के साथ उनका ऊँचा और निर्मल उपदेश कहीं निर्बल न हो जाए, उसमें पतन न आ जाए या उसको लोग बिलकुल भूल ही न जाएँ। मुझे पूरी आशा है कि गुरु नानक साहिब द्वारा प्रकाश में लाई गई, सच की निर्मल ज्योति सदा पूरी शान के साथ जलती रहेगी और लोगों का मार्ग रोशन करती रहेगी। मैं गुरु साहिब के जीवन और उपदेश के इस वर्णन की समाप्ति एक विनम्र प्रार्थना के साथ करना चाहूँगा: हे परमपिता परमेश्वर! हमें निर्मल बुद्धि दे, ताकि हम गुरु साहिब के उपदेश को सही अर्थों में समझ सकें और हमें बल बख़्श कि हम इस उपदेश को अपने जीवन में उतार सकें।

द्वितीय भाग

वाणी

ੴ

- जप जी
- आसा की वार
- रहरास
- आरती
- सोहिला
- सिध-गोस्ट
- पहरे
- पटी
- बारह माहा
- दखणी ओअंकार

जप जी

साधारण तौर पर जप जी को गुरु नानक साहिब के उपदेश का सार माना जाता है। पाँचवीं पातशाही श्री गुरु अर्जुन देव जी ने श्री आदि ग्रन्थ का संपादन करते समय जप जी को इसमें पहला स्थान दिया है। कहा जाता है कि उस समय कुछ शिष्यों ने गुरु अर्जुन साहिब से विनती की कि जप जी बहुत गूढ़ और कठिन है, इसलिए इसकी व्याख्या करने और कई बातों को खोलकर समझाने की आवश्यकता है। इस पर गुरु साहिब ने फ़रमाया कि सारा आदि ग्रन्थ ही जप जी की व्याख्या है।

जप जी की रचना के कारण और समय के विषय में विद्वानों के विचारों में बहुत मतभेद है। अधिकांश जन्म-साखियाँ कहती हैं कि जप जी की शुरू की पंक्तियाँ गुरु साहिब ने बेईं नदी में अलोप होने के समय प्राप्त हुए आंतरिक रूहानी अनुभव के एकदम बाद रची थीं। इस तरह इन पंक्तियों के रचे जाने का समय 1500-1507ई. के बीच है। परंतु बहुत-से विद्वान इस विचार से सहमत नहीं हैं। उनका विचार है कि जप जी, आसा की वार और सिध गोस्ट में भाव और वर्णन की जो प्रौढ़ता और गंभीरता दिखाई देती है, उसे देखते हुए इसे गुरु साहिब के जीवन के अंतिम भाग की रचना मानना पड़ेगा, जब वे अपनी उदासियाँ समाप्त कर चुके थे और स्थायी रूप से करतारपुर में रहने लगे थे। इससे जप जी की रचना की संभावना 1532ई. के क़रीब है।

जप जी में उस समय के लिखने के परंपरागत ढंग को ही अपनाया गया है जिसके अनुसार रचना के शुरू में परमात्मा की स्तुति में मंगलाचरण

किया गया है और अंत में रचना के संपूर्ण हो जाने पर भी परमेश्वर के प्रति आभार प्रकट किया गया है।

जप जी के आरंभ में परमेश्वर के गुणों का वर्णन किया गया है। इसमें उस परमात्मा की सर्वव्यापकता और उसके अजर, अमर, अलख, अगम आदि रूपों की महिमा की गई है। वह परमेश्वर सत का स्वरूप है। इस वर्णन के अंत में गुरु साहिब फ़रमाते हैं कि उस सच्चे परमेश्वर की प्राप्ति केवल सतगुरु की दया-मेहर से ही हो सकती है।

गुरु साहिब ने जप जी में रूहानियत के लगभग सभी प्रमुख अंगों पर गंभीरता से विचार किया है, इसमें सृष्टि की रचना और इस रचना की अनंत अनेकता और उसके पीछे काम कर रही परमात्मा के सर्वशक्तिमान हुक्म की पूर्ण एकता का सुंदर वर्णन मिलता है। इसमें पूरे सतगुरु की आवश्यकता और सामर्थ्य पर प्रकाश डाला गया है, इसके साथ सतगुरु की बताई हुई युक्ति के अनुसार अंतर में शब्द को सुनने और मानने के गुणों का भावपूर्ण और प्रभावशाली वर्णन किया गया है। जप जी में गुरु साहिब फोकट कर्मकांड और सच्ची धार्मिकता का भी फ़ैसला करते हैं और सदाचार से रूहानी गुणों की प्राप्ति पर भी ज़ोर देते हैं। इसके अतिरिक्त इसमें रूहानी अभ्यास के समय प्राप्त होनेवाले आंतरिक सूक्ष्म अनुभव का भी संकेत है। शायद यह गुरु साहिब की ऐसी एक ही वाणी है जिसमें इस अंतर्मुख चढ़ाई का आरंभ से अंत तक का पूरा वर्णन दिया गया है और इस चढ़ाई में आनेवाले बड़े-बड़े रूहानी मंडलों का भी संकेत किया गया है। वास्तव में जप जी रूहानी विचारों का गागर में बंद सागर ही है।

सिक्ख भाई जप जी को अपनी सबसे महत्त्वपूर्ण वाणी और विनती मानते हैं। प्रत्येक सिक्ख से आशा की जाती है कि वह प्रतिदिन अपने कारोबार को शुरू करने से पहले प्रात:काल जप जी का पाठ करे।

जप जी के कुछ चुने हुए अंश यहाँ दिए जा रहे हैं, जो जप जी के अनेक पहलुओं को उजागर करते हैं और गुरु साहिब के संपूर्ण उपदेश पर भी प्रकाश डालते हैं।

निराकार परमेश्वर

इस मूलमंत्र में गुरु साहिब उस निराकार परमात्मा की महिमा कर रहे हैं। आप कहते हैं: वह परमात्मा एक है। वह हर प्रकार के द्वैत से परे और ऊपर है। वह स्वयं सत्य है और उसका नाम भी सत्य है। वह सबका कर्ता और पिता है। न वह किसी से डरता है और न किसी को डराता है। उसे किसी से वैर या विरोध नहीं है। वह अकाल है, अजर, अमर और अविनाशी है। वह अयोनि है अर्थात् जन्म-मरण के बंधनों से मुक्त है। वह अपने अस्तित्व के लिए किसी दूसरे पर निर्भर नहीं, उसका प्रकाश अपने आप से हुआ है। ऐसे गुणों से भरपूर उस सर्वसमर्थ परमेश्वर की प्राप्ति पूरे सतगुरु की दया व मेहर से होती है:

१ओ सत नाम करता पुरख निरभउ निरवैर
अकाल मूरत अजूनी सैभं गुर प्रसाद॥[1]

आदि जुगादि परमेश्वर

परमात्मा आदि जुगादि सत्य है। उसका अस्तित्व अनादि है। वह सदा था, सदा है और सदा रहेगा। वह समय से परे और पार है। युगों तक उसके विषय में सोचते रहो, परंतु उसका विचार नहीं हो सकता। युगों तक चुपचाप समाधि लगाकर उसका चिंतन करते रहो, परंतु उसका पारावार नहीं पाया जा सकता। सभी पुरियों की धन-दौलत या राज्य मिलने से भी परमात्मा का ज्ञान नहीं होता और न ही मन की तृष्णा बुझ सकती है।

हज़ारों प्रकार की बुद्धि और चतुराई भी जीव को पार नहीं लगा सकती। फिर वह परमात्मा मिले तो कैसे मिले? जीव झूठ की दीवार को गिराकर उस सच्चे परमेश्वर से मिलकर सच्चा कैसे बने? इसका एकमात्र रास्ता यह है कि वह उस अकालपुरुष के भाणे में आ जाए और अपनी रज़ा उसकी रज़ा में लीन कर दे। उसका हुक्म पहचानकर, उस हुक्म के अनुसार जीवन को ढालना ही उस परमपिता परमात्मा तक

पहुँचने का एकमात्र मार्ग है, दूसरा मार्ग न कभी हुआ है और न हो ही सकता है:

आद सच जुगाद सच॥
है भी सच नानक होसी भी सच॥
सोचै सोच न होवई जे सोची लख वार॥
चुपै चुप न होवई जे लाए रहा लिव तार॥
भुखिआ भुख न उतरी जे बंना पुरीआ भार॥
सहस सिआणपा लख होहे त इक न चलै नाल॥
किव सचिआरा होईऐ किव कूड़ै तुटै पाल॥
हुकम रजाई चलणा नानक लिखिआ नाल॥[2]

अकालपुरुष का हुक्म

परमात्मा का हुक्म सर्वसमर्थ है। वह हुक्म अकथ है, कहने सुनने से परे है। सृष्टि के सभी रूप, सभी आकार और सभी जीव उसके हुक्म से अस्तित्व में आए हैं। उसके हुक्म से ही कुछ छोटे हैं, कुछ बड़े हैं। हुक्म से ही कुछ लोगों को उससे मिलने की बड़ाई मिलती है और हुक्म से ही दूसरे लोग सदा आवागमन के चक्र में फँसे रहते हैं। जो कुछ है हुक्म के अंदर है, कोई भी और कुछ भी परमात्मा के हुक्म से बाहर नहीं है। यदि उस हुक्म की समझ आ जाए तो मनुष्य किसी भी हालत में अहंकार नहीं कर सकता और मैं-मेरी के शब्द भी नहीं उचार सकता:

हुकमी होवन आकार हुकम न कहिआ जाई॥
हुकमी होवन जीअ हुकम मिलै वडिआई॥
हुकमी उतम नीच हुकम लिख दुख सुख पाईअह॥
इकना हुकमी बखसीस इक हुकमी सदा भवाईअह॥
हुकमै अंदर सभ को बाहर हुकम न कोए॥
नानक हुकमै जे बुझै त हउमै कहै न कोए॥[3]

परमेश्वर अनंत है

वह परमात्मा अलख तथा अगम है। न तो उस अथाह परमेश्वर का कोई पारावार है और न ही उसकी रची हुई सृष्टि का:

धरती होर परै होर होर॥
तिस ते भार तलै कवण जोर॥[4]

गुरु साहिब कहते हैं कि वह प्रभु अकाल है। वह आदि और अंत से परे और ऊपर है। वह निर्मल है तथा परम पवित्र है। वह न कहीं से शुरू होता है, न कहीं पर समाप्त होता है। वह हर प्रकार के परिवर्तन से रहित है। वह सदा एकरंग, एकरस और एकरूप है। वह अनील है अर्थात् माया के हर प्रकार की मैल से मुक्त है। वह परम चेतन है, परम निर्मल है। उस परमात्मा को सदा नमस्कार है:

आदेस तिसै आदेस॥
आद अनील अनाद अनाहत जुग जुग एको वेस॥[5]

कर्तापुरुष परमेश्वर

यहाँ गुरु साहिब इस सृष्टि को उस कर्तापुरुष का अद्भुत चमत्कार कहकर उसकी महिमा कर रहे हैं। न तो इस सृष्टि के इधर के किनारे का पता है और न उधर के। इसमें विचर रहे जीवों के अनेक रंग, रूप, नाम, स्थान का कोई लेखा नहीं हो सकता। जो कुछ है, उस परमात्मा की तेज़ चल रही कलम का सुंदर चमत्कार है। वह कर्ता भी अकथ है और उसकी रचना भी अकथ है। उस प्रभु के रचे रूपों और आकारों की सुंदरता आश्चर्यजनक है। उसकी दया की दात और उसके पैदा किए हुए जीवों को देखकर और उसकी अथाह शक्ति का अनुमान लगाकर बुद्धि चकित हो जाती है। प्रकृति की वह सल्तनत कितनी महान और विशाल है, जो उस परमात्मा ने अपनी अपार दया से मनुष्य को बख़्शी है। फिर यह अनंत लीला उसके एक शब्द का चमत्कार है। सारी रचना, सभी विशाल

खंड-ब्रह्मांड उस परमेश्वर के शब्द, नाम या हुक्म की उपज हैं। जीव किसी प्रकार भी इस रचना, इसके रचनाकार और उसके कर्म को समझ सकने या उसकी स्तुति कर सकने में समर्थ नहीं है:

धरती होर परै होर होर॥ तिस ते भार तलै कवण जोर॥
जीअ जात रंगा के नाव॥ सभना लिखिआ वुड़ी कलाम॥
एह लेखा लिख जाणै कोए॥ लेखा लिखिआ केता होए॥
केता ताण सुआलिहो रूप॥ केती दात जाणै कौण कूत॥
कीता पसाउ एको कवाउ॥ तिस ते होए लख दरीआउ॥
कुदरत कवण कहा वीचार॥ वारिआ न जावा एक वार॥
जो तुध भावै साई भली कार॥ तू सदा सलामत निरंकार॥[6]

वेल न पाईआ पंडती

न पंडितों और ज्ञानियों को पता है कि संसार कब बना और न वेद या पुराण ही इस विषय में कुछ बताते हैं। क़ाज़ी भी क़ुरान में रचना की कोई तारीख़ नहीं बता सके। योगियों को भी उस घड़ी, पल, ऋतु या महीने का कुछ पता नहीं, जब सृष्टि अस्तित्व में आई। सृष्टि के कर्ता उस परमपिता परमात्मा को ही पता है कि कौन-सी शुभ घड़ी में उसने सृष्टि की रचना की।

लोग अपनी-अपनी बुद्धि के अनुसार उस कर्तापुरुष की महिमा करने का प्रयत्न करते हैं और प्रत्येक प्राणी अपने आप को दूसरों से बुद्धिमान समझता है, परंतु सच तो यह है कि सृष्टि के सुंदर कर्ता और स्वामी उस परमात्मा की शब्दों में महिमा या प्रशंसा कर सकना असंभव है। वह स्वयं बड़े से बड़ा है और उसका नाम भी बड़े से बड़ा है। जो कुछ वह या उसका नाम करता है, वही होता है और अपने किए हुए को केवल वह स्वयं ही जानता है। यदि कोई यह समझे कि मैंने परमात्मा या उसकी क़ुदरत का पारावार पा लिया है, तो परमेश्वर की दरगाह में उस मूर्ख की

कोई इज़्ज़त नहीं होती। लाखों आकाश, लाखों पाताल हैं, जो मनुष्य के विचार और पहुँच से परे हैं। सब ज्ञानी और सब ग्रंथ-शास्त्र, वेद-कतेब इस सत्य को मानते हैं कि इस संपूर्ण अनंत रचना का गुप्त आधार या मूल वह एक परमात्मा है। उस एक धातु से ही सब बर्तन बने हैं। उस अलख और अगम का भेद पा सकना असंभव है। वह अनंत परमात्मा स्वयं ही अपने आप को जान सकता है, कोई दूसरा उसका लेखा नहीं लगा सकता।

फिर हम करें तो क्या करें? हमें यही शोभा देता है कि चाहे हमें उसका बोध हो या न हो हम अपने आप को उसकी महिमा, उसकी भक्ति, उसके प्रेम में उसी तरह लीन कर दें, जैसे नदियाँ समुद्र में मिलकर समुद्र में बहती चली जाती हैं। न उनको समुद्र की थाह लगती है और न ही उनका समुद्र की थाह प्राप्त करने का विचार होता है:

वेल न पाईआ पंडती जे होवै लेख पुराण॥
वखत न पाइओ कादीआ जे लिखन लेख कुराण॥
थित वार ना जोगी जाणै रुत माह ना कोई॥
जा करता सिरठी कउ साजे आपे जाणै सोई॥
किव कर आखा किव सालाही किउ वरनी किव जाणा॥
नानक आखण सभ को आखै इक दू इक सिआणा॥
वडा साहिब वडी नाई कीता जा का होवै॥
नानक जे को आपौ जाणै अगै गइआ न सोहै॥
पाताला पाताल लख अगासा आगास॥
ओड़क ओड़क भाल थके वेद कहन इक वात॥
सहस अठारह कहन कतेबा असुलू इक धात॥
लेखा होए त लिखीऐ लेखै होए विणास॥
नानक वडा आखीऐ आपे जाणै आप॥
सालाही सालाहे एती सुरत न पाईआ॥
नदीआ अतै वाह पवह समुंद न जाणीअह॥[7]

ग्रंथ-शास्त्रों से परे

वेद परमात्मा की महिमा करते हैं, पुराण उसका गुणगान करते हैं। अनेक विद्वान और ज्ञानी शास्त्रों का अध्ययन करके उसका यश गा रहे हैं। इंद्र और ब्रह्मा, कृष्ण और गोपियाँ, सिद्ध और बुद्ध उस परमात्मा और उसके हुक्म का वर्णन करने का प्रयत्न कर रहे हैं। असंख्य उसकी महिमा करते हुए चले गए और असंख्य अन्य उसकी महिमा के लिए संसार में आएँगे। परंतु न तो कोई उस अपरंपार, अनमोल परमात्मा का मोल पहले आँक सका है और न ही कभी भविष्य में आँक सकेगा। वह परमात्मा मन और बुद्धि की पहुँच से परे है। वह बड़े से बड़ा है। जो कुछ है, वह स्वयं है और अपनी बड़ाई वह केवल स्वयं ही जानता है:

आखह वेद पाठ पुराण॥ आखह पड़े करह वखिआण॥
आखह बरमे आखह इंद॥ आखह गोपी तै गोविंद॥
आखह ईसर आखह सिध॥ आखह केते कीते बुध॥
आखह दानव आखह देव॥ आखह सुर नर मुन जन सेव॥
केते आखह आखण पाहे॥ केते कह कह उठ उठ जाहे॥
एते कीते होर करेह॥ ता आख न सकह केई के॥
जेवड भावै तेवड होए॥ नानक जाणै साचा सोए॥[8]

सतगुरु सर्वसमर्थ है

गुरु ही शब्द है, गुरु ही ज्ञान का रूप है। गुरु ही सबसे बड़ा धर्मग्रंथ या सबसे ऊँचा ज्ञान है। गुरु सर्वव्यापक है। गुरु ब्रह्मा, विष्णु और महेश तीनों देवताओं और उनकी जननी शक्ति से भी बड़ा है। गुरु द्वारा ही प्रभुरूपी सच का पूर्ण ज्ञान प्राप्त होता है। गुरु द्वारा ही यह भेद खुलता है कि एक परमात्मा ही परमसत्य है, वही सच्चा जीवन-दाता है और उसे किसी भी हालत में भुलाना नहीं चाहिए:

गुरमुख नादं गुरमुख वेदं गुरमुख रहिआ समाई॥
गुर ईसर गुर गोरख बरमा गुर पारबती माई॥
जे हउ जाणा आखा नाही कहणा कथन न जाई॥
गुरा इक देह बुझाई॥
सभना जीआ का इक दाता सो मै विसर न जाई॥[9]

सतगुरु का अधिकार

जिनको वह परमात्मा स्वयं धुर से परवाना देता है, वे ही सच्चे सतगुरु हैं और वे ही सच्चा मार्ग दिखानेवाले हैं। वे ही परमात्मा की दरगाह में शोभा पाते हैं और वे ही वहाँ और यहाँ असली कर्ता-धर्ता होते हैं। ऐसे पंच, गुरुमुख या संत, संसार का प्रकाश हैं। वे द्वैत से ऊपर उठ चुके हैं और सदा एक परमात्मा के ध्यान में मग्न रहते हैं:

पंच परवाण पंच परधान॥ पंचे पावह दरगह मान॥
पंचे सोहहे दर राजान॥ पंचा का गुर एक धिआन॥[10]

नाम सच है

परमात्मा ख़ुद सच्चा है और उसका नाम भी सच्चा है। वह परमेश्वर यानी उसका नाम प्रेम का रूप है। वह परमेश्वर यानी उसका नाम सारी प्राणधारी रचना की जान है। वह हर वस्तु की हस्ती का सार है। वह जीवन-दाता है, रचना को प्राण देनेवाला है। सब जीव उसके द्वार के भिखारी हैं। जब सारी रचना का आधार, स्वामी और दाता वह प्रभु स्वयं है और हमारे जीवन सहित जो कुछ है उस प्रभु का है, तो हम उसको क्या भेंट चढ़ा सकते हैं, उसे क्या अर्पण कर सकते हैं? आवश्यकता तो इस बात की है कि हम अमृत वेला में (सुबह-सुबह) उस सच्चे प्रभु के सच्चे नाम से लिव जोड़ें। इस प्रकार उस बख़्शिंद और दयालु प्रभु की कृपा से आवागमन का चक्र समाप्त हो जाएगा, सच्ची मुक्ति प्राप्त होगी और उस परमपिता परमेश्वर से मिलाप हो जाएगा:

साचा साहिब साच नाए भाखिआ भाउ अपार॥
आखह मंगह देह देह दात करे दातार॥
फेर कि अगै रखीऐ जित दिसै दरबार॥
मुहौ कि बोलण बोलीऐ जित सुण धरे पिआर॥
अंम्रित वेला सच नाउ वडिआई वीचार॥
करमी आवै कपड़ा नदरी मोख दुआर॥
नानक एवै जाणीऐ सभ आपे सचिआर॥[11]

शब्द को सुनने के फल

इन चार पौड़ियों में गुरु साहिब सतगुरु द्वारा बताई युक्ति से अंतर में शब्द से जुड़ने के फल का वर्णन कर रहे हैं। गुरु साहिब फ़रमाते हैं कि अंतर में शब्द के साथ जुड़ने से जीव को सिद्धों, पीरों और देवताओं की ऊँची अवस्था प्राप्त हो जाती है। उसे पाताल-लोक, मनुष्य-लोक और देवलोक का और उनको सहारा देनेवाली शक्ति का ज्ञान हो जाता है। रचना के सब भेद पुस्तक की तरह उसके सामने खुल जाते हैं। वह मौत (काल) पर विजय प्राप्त कर लेता है। उसके सभी दुःखों व पापों का नाश हो जाता है और उसका हृदय सदा अलौकिक प्रसन्नता से भरा रहता है। शब्द के साथ जुड़ी अनेक ऋद्धियाँ, सिद्धियाँ और शक्तियाँ उसे प्राप्त हो जाती हैं। वह अपने आप को पहचानने के योग्य बन जाता है और सब ग्रंथ-शास्त्रों का असली मर्म समझ लेता है। शब्द को सुनने से उसको सच्चा संतोष, सच्चा ज्ञान, सच्चा सहज और अमर आनंद प्राप्त हो जाता है। शब्द के साथ लिव जुड़ने पर वह और भी अनेक गुणों का स्वामी बन जाता है और अंत में परमपिता परमात्मा से मिलने के योग्य हो जाता है:

सुणिऐ सिध पीर सुर नाथ॥ सुणिऐ धरत धवल आकास॥
सुणिऐ दीप लोअ पाताल॥ सुणिऐ पोह न सकै काल॥
नानक भगता सदा विगास॥ सुणिऐ दूख पाप का नास॥
सुणिऐ ईसर बरमा इंद॥ सुणिऐ मुख सालाहण मंद॥

सुणिऐ जोग जुगत तन भेद॥ सुणिऐ सासत सिम्रित वेद॥
नानक भगता सदा विगास॥ सुणिऐ दूख पाप का नास॥
सुणिऐ सत संतोख गिआन॥ सुणिऐ अठसठ का इसनान॥
सुणिऐ पड़ पड़ पावह मान॥ सुणिऐ लागै सहज धिआन॥
नानक भगता सदा विगास॥ सुणिऐ दूख पाप का नास॥
सुणिऐ सरा गुणा के गाह॥ सुणिऐ सेख पीर पातसाह॥
सुणिऐ अंधे पावह राह॥ सुणिऐ हाथ होवै असगाह*॥
नानक भगता सदा विगास॥ सुणिऐ दूख पाप का नास॥[12]

शब्द में लीन होने के फल†

शब्द यानी नाम के साथ अंदर जुड़ने और उसे सुनने के फल का वर्णन करके गुरु साहिब उस साधक की अवस्था का वर्णन करते हैं जो शब्द का लगातार अभ्यास करते हुए शब्द में ही लीन हो जाता है। ऐसे साधक को वह अद्भुत अवस्था प्राप्त हो जाती है जिसका शब्दों में वर्णन कर सकना असंभव है।

शब्द में लीन होनेवाले अभ्यासी की चेतना इतनी व्यापक हो जाती है कि सारा ब्रह्मांड उसको साक्षात दिखाई देता है। सारी सृष्टि उसकी दृष्टि में आ जाती है। शब्द की अद्भुत शक्ति के सहारे वह एक से दूसरी रूहानी मंज़िल तय करता हुआ आगे ही आगे बढ़ता जाता है और अंत में परमात्मा के निज स्थान पर पहुँच जाता है, जो सबका आदि और अंत है। जैसे-जैसे वह ऊँचे मंडलों में जाता है, उसकी दृष्टि विशाल होती जाती है। उसकी आत्मा से पूर्वजन्मों के हर प्रकार के पापों के संस्कार

---

* **असगाह**=अथाह प्रभु।

† उपनिषदों में परमार्थ के तीन अंगों – श्रवण (सुनना), मनन (हृदय में बसा लेना) और निदिध्यासन (समाधि में अंदर सत्य से जुड़ना) की बहुत महिमा की गई है। गुरु साहिब भी सुणिऐ, मंनै और पंच परवान की पौड़ियों में अंदर शब्द को सुनने, शब्द के रंग में रँगे जाने और पूर्ण समाधि की अवस्था में शब्द में समाकर शब्द का रूप हो जाने की महिमा कर रहे हैं।

धुल जाते हैं और वह जन्म-मरण के दुःखों और आवागमन के बंधनों से मुक्त हो जाता है।

नाम (शब्द) माया के हर प्रकार के प्रभाव से मुक्त है और उस नाम में समा चुका व्यक्ति भी माया के हर प्रकार के छल से छुटकारा प्राप्त कर लेता है। इस प्रकार शब्द का रूप हो चुका व्यक्ति सच्ची मुक्ति प्राप्त कर लेता है और परमपिता परमेश्वर में समाकर उसका रूप हो जाता है। ऐसा गुरुमुख महात्मा स्वयं सच्ची और स्थायी मुक्ति प्राप्त कर लेता है और अन्य अनेक जीवों को भी स्थायी मुक्ति के सच्चे मार्ग पर डालने में समर्थ हो जाता है।

शब्द तो सर्वसमर्थ है, परंतु कोई विरले सौभाग्यशाली जीव ही शब्द की अपार शक्ति का भेद जानते हैं और इसकी अंतर्मुख साधना से पूरा लाभ प्राप्त करते हैं:

मंने की गत कही न जाए॥ जे को कहै पिछै पछुताए॥
कागद कलम न लिखणहार॥ मंने का बह करन वीचार॥
ऐसा नाम निरंजन होए॥ जे को मंन जाणै मन कोए॥
मंनै सुरत होवै मन बुध॥ मंनै सगल भवण की सुध॥
मंनै मुह चोटा ना खाए॥ मंनै जम कै साथ न जाए॥
ऐसा नाम निरंजन होए॥ जे को मंन जाणै मन कोए॥
मंनै मारग ठाक न पाए॥ मंनै पत सिउ परगट जाए॥
मंनै मग न चलै पंथ॥ मंनै धरम सेती सनबंध॥
ऐसा नाम निरंजन होए॥ जे को मंन जाणै मन कोए॥
मंनै पावह मोख दुआर॥ मंनै परवारै साधार॥
मंनै तरै तारे गुर सिख॥ मंनै नानक भवह न भिख॥
ऐसा नाम निरंजन होए॥ जे को मंन जाणै मन कोए॥[13]

बाहरी शब्द और आंतरिक शब्द

परमात्मा को अनेक नामों और शब्दों से याद किया जाता है तथा अनेक स्थानों से उसका संबंध जोड़ा जाता है। असंख्य आकाश, असंख्य

खंड-ब्रह्मांड, द्वीप, भवन और असंख्य आकाश-लोक के वासी, उस 'शब्द' के सहारे खड़े हैं। असंख्य कहने से भी उनकी विशालता का अनुमान नहीं हो सकता, उनकी कोई गिनती है ही नहीं।

यह ठीक है कि हम शब्दों, नामों या लफ़्ज़ों के ज़रिए ही बातचीत करते हैं और इनके सहारे ही हमारा लिखने, पढ़ने, ज्ञान प्राप्त करने और परमात्मा की महिमा करने का सारा कार्य चलता है। जीव और परमात्मा के संबंध का वर्णन भी अक्षरों अथवा शब्दों के द्वारा ही किया जाता है, परंतु वह प्रभु स्वयं इन शब्दों और कर्मों की सीमा से परे है। जिनके कर्म लिखे जाते हैं, वे जीव तो समय और स्थान के बंधनों तथा कर्म और फल के नियम के अनुसार चल रही कर्मभूमि के वासी हैं, परंतु कर्मों का क़ानून बनानेवाला वह कुलमालिक समय और स्थान, कर्म और फल के बंधनों में नहीं है। वह गुप्त परमात्मा अपने शब्द (नाम) के द्वारा प्रकट होता है। उसका नाम (शब्द) ही सारी सृष्टि का रचनहार है। वह शब्द सर्वव्यापक है, सर्वसमर्थ है। जो कुछ किया है, उस शब्द (नाम) ने किया है। वह कर्तापुरुष और उसका शब्द दोनों अकथ हैं:

असंख नाव असंख थाव॥ अगंम अगंम असंख लोअ॥
असंख कहहे सिर भार होए॥
अखरी नाम अखरी सालाह॥ अखरी गिआन गीत गुण गाह॥
अखरी लिखण बोलण बाण॥ अखरा सिर संजोग वखाण॥
जिन एह लिखे तिस सिर नाहे॥ जिव फुरमाए तिव तिव पाहे॥
जेता कीता तेता नाउ॥ विण नावै नाही को थाउ॥
कुदरत कवण कहा वीचार॥ वारिआ न जावा एक वार॥
जो तुध भावै साई भली कार॥ तू सदा सलामत निरंकार॥[14]

ओह धोपै नावै कै रंग

हाथों या पैरों को मैल लग जाए तो हम उनको पानी से धो लेते हैं। शरीर को लगी मैल भी पानी से धोई जा सकती है। कपड़े गंदे हो जाएँ तो साबुन

से साफ़ किए जाते हैं। परंतु जब मन पापों की मैल से गंदा हो जाता है तो केवल नाम का अमृत और नाम का साबुन ही इसकी मलिनता धोकर इसको निर्मल या पवित्र कर सकता है। यह संसार करमा संदड़ा खेत है। यहाँ हर एक को अपने बोए हुए कर्मों की फ़सल काटनी पड़ती है। अपने अंदर जाकर नाम के तीर्थ में स्नान करने की तुलना में दूसरे अनेक प्रकार के साधन जप-तप, दान-पुण्य और तीर्थों की यात्रा कुछ भी नहीं हैं।

यदि मन में सच्चा शौक़, सच्चा विरह या तड़प उत्पन्न नहीं हुई, यदि हृदय में श्रद्धा और भरोसा पैदा नहीं हुआ और यदि अंतर में प्यार के पौधे ने गहरी जड़ें नहीं पकड़ीं तो हर प्रकार के बाहरमुखी कर्मकांड पानी को मथने के समान हैं:

भरीऐ हथ पैर तन देह॥ पाणी धोतै उतरस खेह॥
मूत पलीती कपड़ होए॥ दे साबूण लईऐ ओह धोए॥
भरीऐ मत पापा कै संग॥ ओह धोपै नावै कै रंग॥
पुंनी पापी आखण नाहे॥ कर कर करणा लिख लै जाहो॥
आपे बीज आपे ही खाहो॥ नानक हुकमी आवहो जाहो॥
तीरथ तप दइआ दत दान॥ जे को पावै तिल का मान॥
सुणिआ मंनिआ मन कीता भाउ॥ अंतरगत तीरथ मल नाउ॥[15]

जीव निर्बल और बेबस है

दरअसल जीव निर्बल, अल्पज्ञ और तुच्छ है, परंतु वह हौंमैं के कारण अपने आप को बहुत बड़ा और शक्तिशाली समझता है। यदि धुर-मस्तक यानी भाग्य में नहीं लिखा तो जीव चाहे ज़मीन आसमान एक कर दे, फिर भी उसके ख़याल, इरादे, संकल्प और प्रयत्न कभी सफल नहीं हो सकते। अज्ञानी जीव यह नहीं सोचता कि उसके अपने किए हुए पिछले कर्म ही उसके अच्छे-बुरे भाग्य का कारण हैं। जब तक कुलमालिक परमेश्वर की दया नहीं होती, जीव कभी भी जन्म-मरण के चक्र से मुक्त नहीं हो सकता।

गुरु साहिब उस दयालु परमेश्वर के आगे प्रार्थना करते हैं कि हे दाता! मुझे अकेला न छोड़, क्योंकि मैं अपने आप में कुछ भी नहीं हूँ। मैं तो अपनी शक्ति से ज़बान भी नहीं हिला सकता और चुप भी नहीं रह सकता। मैं न अपनी शक्ति से कुछ माँग सकता हूँ और न दे सकता हूँ। जीवन और मृत्यु मेरे वश में नहीं हैं। इसलिए मैं न अपनी ताक़त से जी सकता हूँ, न मर ही सकता हूँ। मैं अपनी मरज़ी से न राजा बन सकता हूँ, न भिखारी। अपने बल से मुझे न अपना ज्ञान हो सकता है, न तेरा। न ही मैं अपने प्रयत्न से संसाररूपी भवसागर से तर सकता हूँ। जो कुछ होना है, तेरी दया-मेहर से होना है। जो मूर्ख, अज्ञानी यह समझता है कि अपने बल से कुछ कर सकता है, वह अपना ज़ोर लगाकर देख ले, उसके इरादे कभी पूरे नहीं हो सकेंगे। कोई भी अपने आप उत्तम या नीच नहीं है, जो कुछ है सब उस मालिक के भाणे में है:

आखण जोर चुपै नह जोर॥ जोर न मंगण देण न जोर॥
जोर न जीवण मरण नह जोर॥ जोर न राज माल मन सोर॥
जोर न सुरती गिआन वीचार॥ जोर न जुगती छुटै संसार॥
जिस हथ जोर कर वेखै सोए॥ नानक उतम नीच न कोए॥[16]

सो दर केहा सो घर केहा

सो दर का शाब्दिक अर्थ वह दरवाज़ा अथवा वह द्वार है। जिस प्रकार घर में प्रवेश करने के लिए कोई दरवाज़ा होता है, उसी प्रकार आंतरिक रूहानी मंडलों में दाख़िल होने के लिए एक दर अर्थात् एक द्वार होता है। रूहानी सफ़र इस द्वार में दाख़िल होने से शुरू होता है और सचखंड में पहुँचकर परमात्मा से मिलाप कर लेने पर समाप्त होता है। रूहानी मंडल में प्रवेश करने के इस बिंदु को परमार्थ की भाषा में तीसरी आँख कहा गया है। हिंदू शास्त्रों में इसको शिव नेत्र कहा गया है। मुसलमानों की पवित्र पुस्तकों में नुक़्तए-सुवैदा या काला नुक़ता कहकर इसका वर्णन किया गया है। बाइबल में इसको एक आँख कहा

गया है: "यदि तू एक आँख वाला बन जाए तो तेरा सारा शरीर नूर से भर जाएगा।"[17]

गुरु नानक साहिब ने इसको दर कहा है क्योंकि इस बिंदु से ही हमारा असली रूहानी सफ़र शुरू होता है। यह बिंदु सचखंडरूपी महल की दहलीज़ के समान है।

इस बिंदु पर पहुँचकर जीवात्मा नीचे की ओर के जगत का रागरंग देख या सुन सकती है और ऊपर की ओर भी देख सकती है। यहाँ पहुँचकर नीचे और ऊपर की सृष्टि का विराट दृश्य दिखाई देता है। इस बिंदु पर पहुँचकर अनेक नाद अर्थात् शब्द बजते हुए सुनाई देते हैं। पाँच तत्त्व और इनसे बनी सारी सृष्टि ही नहीं, बल्कि सभी देवी-देवता, सिद्ध, बुद्ध, अवतार, जपी, तपी, ऋषि, मुनि और कर्मों का हिसाब रखनेवाला धर्मराज आदि उस कर्तापुरुष की महिमा करने में व्यस्त दिखाई देते हैं।

इस अवस्था की प्राप्ति से ऋषियों, मुनियों जैसी दिव्य दृष्टि प्राप्त हो जाती है। जीव को अंतर्यामिता प्राप्त हो जाती है और भविष्यवाणी कर सकने की शक्ति मिल जाती है। दृष्टि इतनी विशाल हो जाती है कि जो कुछ भविष्य में होनेवाला है। वह वर्तमान में साफ़-साफ़ दिखाई देने लगता है।

इस बिंदु पर पहुँचकर सारी सृष्टि, चाँद, सूर्य, तारे, ग्रह, उपग्रह आदि मिलकर एक सम्मिलित संगीत के ताल पर नाचते दिखाई देते हैं। सारी सृष्टि परमपिता के सर्वशक्तिमान हुक्म के सूत में पिरोई दिखाई देती है। सब खंड-ब्रह्मांड उस कर्ता के हुक्म के अनुसार काम करते दिखाई देते हैं। हमें अनुभव हो जाता है कि जो कुछ होता है, उसके हुक्म या रज़ा के अनुसार होता है। तब वह परमात्मा ही सारी सृष्टि का कर्ता, मालिक, स्वामी और सभी शाहों का शाह दिखाई देता है। वह सर्वव्यापक, सर्वशक्तिमान और करण-कारण ही सर्वसमर्थ प्रतीत होता है। ऐसा लगता है कि जो कुछ है, वही है:

सो दर केहा सो घर केहा जित बह सरब समाले॥
वाजे नाद अनेक असंखा केते वावणहारे॥
केते राग परी सिउ कहीअन केते गावणहारे॥
गावह तुहनो पउण पाणी बैसंतर गावै राजा धरम दुआरे॥
गावह चित गुपत लिख जाणह लिख लिख धरम वीचारे॥
गावह ईसर बरमा देवी सोहन सदा सवारे॥
गावह इंद इदासण बैठे देवतिआ दर नाले॥
गावह सिध समाधी अंदर गावन साध विचारे॥
गावन जती सती संतोखी गावह वीर करारे॥
गावन पंडित पड़न रखीसर जुग जुग वेदा नाले॥
गावह मोहणीआ मन मोहन सुरगा मछ पइआले॥
गावन रतन उपाए तेरे अठसठ तीरथ नाले॥
गावह जोध महाबल सूरा गावह खाणी चारे॥
गावह खंड मंडल वरभंडा कर कर रखे धारे॥
सेई तुधुनो गावह जो तुध भावन रते तेरे भगत रसाले॥
होर केते गावन से मै चित न आवन नानक किआ वीचारे॥
सोई सोई सदा सच साहिब साचा साची नाई॥
है भी होसी जाए न जासी रचना जिन रचाई॥
रंगी रंगी भाती कर कर जिनसी माइआ जिन उपाई॥
कर कर वेखै कीता आपणा जिव तिस दी वडिआई॥
जो तिस भावै सोई करसी हुकम न करणा जाई॥
सो पातसाह साहा पातसाहिब नानक रहण रजाई॥[18]

सच खंड वसै निरंकार

वह कुलमालिक, निराकार परमेश्वर सबसे ऊँचे रूहानी मंडल, सचखंड का रहनेवाला है। उस निरंकार की दयादृष्टि ही सचखंड के वासियों के जीवन, सुंदरता और आनंद का एकमात्र स्रोत है। सभी खंड-ब्रह्मांड

सचखंड में समाए हुए हैं। जो कुछ बना है, उस निराकार और उसके हुक्म से बना है और जो कुछ हो रहा है, उसके हुक्म में हो रहा है। वह कुलमालिक सदा आनंदमय है। दया के रूप, आनंद और सुंदरता के रूप उस अनंत, बेपरवाह, निराकार की उपमा कर सकना असंभव है:

सच खंड वसै निरंकार॥ कर कर वेखै नदर निहाल॥
तिथै खंड मंडल वरभंड॥ जे को कथै त अंत न अंत॥
तिथै लोअ लोअ आकार॥ जिव जिव हुकम तिवै तिव कार॥
वेखै विगसै कर वीचार॥ नानक कथना करड़ा सार॥[19]

पवण गुरू पाणी पिता

जप जी का अंत गुरु साहिब ने जिस श्लोक से किया है, उसमें आप यह विचार प्रकट करते हैं कि मनुष्य-शरीर हवा, पानी और मिट्टी आदि का बना है।

गुरु साहिब ने हवा को गुरु कहा है, क्योंकि जिस तरह गुरु के बिना आत्मिक जीवन संभव नहीं, उसी तरह हवा के बिना जीवित रह सकना असंभव है। पानी को पिता कहा है। जिस तरह पानी पौधों को पालता है और उन्हें हरा-भरा रखता है। उसी तरह शरीर पानी पर पलता है और पानी से ठीक रहता है। धरती माता है क्योंकि यह सभी वस्तुओं का आधार है। यह माँ के समान ही विशाल हृदय वाली दाई और माँ की तरह ही पालन-पोषण करनेवाली है। दिन और रात खेल खिलानेवाली आया की तरह हैं, जो ज़िंदगी का पालना हिलाते रहते हैं। सारा संसार इस पालने में पड़ा कर्मों के खेल खेलता है। संसार, कर्म और फल का अखाड़ा है। धर्मराज संसार में आए हर प्राणी के सब अच्छे और बुरे कर्मों का हिसाब रखता है और फल देता है। हर जीव को कर्मों का फल भोगना पड़ता है। परंतु जो लोग परमेश्वर का नाम जपते हैं और उसके नाम से लिव जोड़कर रखते हैं, वे सदा के लिए जन्म-मरण के दु:खों से पार हो जाते हैं। उनका परमात्मा से मिलाप हो जाता है और वे उस सच्चे आनंद का

ही रूप हो जाते हैं। ऐसे सच्चे गुरुमुख या भक्त न केवल स्वयं ही मुक्त हो जाते हैं, बल्कि उनकी संगति में आनेवाले अन्य अनेक जीव भी सच्ची मुक्ति प्राप्त कर लेते हैं:

पवण गुरू पाणी पिता माता धरत महत॥
दिवस रात दुए दाई दाइआ खेलै सगल जगत॥
चंगिआइआ बुरिआईआ वाचै धरम हदूर॥
करमी आपो आपणी के नेड़ै के दूर॥
जिनी नाम धिआइआ गए मसकत घाल॥
नानक ते मुख उजले केती छुटी नाल॥[20]

आसा की वार

आसा की वार गुरु नानक साहिब की प्रात:काल गाई जानेवाली वाणी का संग्रह है। परंतु जहाँ साधारण तौर पर जप जी का पाठ हर व्यक्ति अकेला करता है, आसा की वार मिलकर गाई जाती है। मूल वार वीर रस में राग आसा के नमूने पर रची गई है, जिसका संबंध श्रद्धा और भक्ति भाव से है। इसकी चौबीस पौड़ियाँ हैं। पौड़ियों के साथ श्लोक भी शामिल किए गए हैं, जो वार के बुनियादी भावों की ही व्याख्या करते हैं।

पौड़ियों और श्लोकों के इकट्ठे रूप में आसा की वार पूरी तरह किसी एक विषय की व्याख्या नहीं करती और न ही पौड़ियों और श्लोकों का आपस में अटूट संबंध है। फिर भी सारी रचना केवल इसी विचार के सूत में पिरोई हुई दिखाई देती है कि जीव अपनी वर्तमान अवस्था से ऊपर उठकर ऊँची रूहानी अवस्था कैसे प्राप्त कर सकता है और परमात्मा से मिलाप के लिए किस प्रकार तैयार हो सकता है?

वार का आरंभ सतगुरु की महिमा में रचे गए मंगलाचरण से होता है। सतगुरु की अपार कृपा है क्योंकि वही जीव को नीच से ऊँचा करके परमात्मा से मिलाप करने के योग्य बना सकता है। जो जीव इस भ्रम में है कि वह स्वयं इस काम में सफल हो सकता है, वह कभी भी मंज़िल पर नहीं पहुँच सकता।

परमपिता परमात्मा ने यह सृष्टि और इसके नियमों की रचना की है। ये नियम सत्य और न्याय पर आधारित हैं। गुरु नानक साहिब फ़रमाते हैं कि जीव को केवल उस कर्तापुरुष और उसके नाम की पूजा, भक्ति या

महिमा करनी चाहिए, क्योंकि केवल परमात्मा ही सच्चा दाता है और केवल वही एकमात्र अविनाशी अटल सत्य है। उस अलख, अगम परमात्मा की थाह पा सकना असंभव है। जीव या तो उसकी महिमा और आराधना कर सकता है या उसके किए हुए कर्मों को देखकर आश्चर्य और प्रसन्नता प्रकट कर सकता है।

सृष्टि की प्रत्येक वस्तु उस परमात्मा के भय अर्थात् हुक्म में चल रही है। केवल वह परमात्मा निर्भय है, क्योंकि केवल वही अकाल और बंधनमुक्त है। विष्णु के अवतार श्रीराम और श्रीकृष्ण जी भी अपने-अपने समय में परमात्मा के हुक्म में अपनी लीला दिखाकर, कर्मों के बँधे हुए यहाँ से चले गए। उन अवतारों को भी आवागमन के चक्र से मुक्ति नहीं मिल सकी।

गुरु साहिब उपदेश करते हैं कि तीर्थों या सरोवरों पर भटकने से परमात्मा नहीं मिलता। परमात्मा की कृपा से कोई पूरा सतगुरु मिल जाए तब ही उस प्रभु से मिलाप हो सकता है। पूरा सतगुरु अपने शिष्य को शब्द की कमाई की युक्ति सिखाता है, जिसकी सहायता से शिष्य मन और हौंमैं से ऊपर उठकर चौरासी के चक्र से मुक्ति प्राप्त कर लेता है।

सत्य और असत्य दोनों का कर्ता वह परमात्मा स्वयं है और केवल वही दया-मेहर करके हमें दोनों की पहचान करने की युक्ति सिखा सकता है। कोई भी जीव केवल कर्मकांड के सहारे असत्य या माया से ऊपर उठकर सच में लीन नहीं हो सकता। माया से मुक्ति परमात्मा की दया से होती है। बाहरमुखी कर्मकांड इसमें कोई सहायता नहीं देते।

पूर्ण सतगुरु की दया-मेहर के बिना कोई परमात्मा से मिलाप करने में सफल नहीं हुआ, क्योंकि वह परमात्मा स्वयं सतगुरु का रूप धारण करके जीवों के उद्धार यानी कल्याण के लिए संसार में आता है। सतगुरु, परमात्मा का प्रतिनिधि है और केवल वही जीव को उस सच्चे शब्द से जोड़ सकता है, जो उसको वापस परमात्मा की दरगाह में ले जाता है।

पाप, बुराई और अज्ञानता की जड़ हौंमैं है। हौंमैं पर विजय प्राप्त करने के लिए नेक और पवित्र जीवन व्यतीत करना, मांस, शराब और दूसरे

विषय-विकारों से परहेज़ करना तथा सतगुरु की शिक्षा के अनुसार शब्द की कमाई करना ज़रूरी है।

ग्रंथ-पोथियों के निरंतर पाठ से कभी किसी को परमात्मा से मिलाप करने की युक्ति प्राप्त नहीं हो सकती। धर्म-पुस्तकें रूहानी उन्नति में कभी पूरे गुरु का स्थान नहीं ले सकतीं। शब्द की अंतर्मुख साधना के बिना धर्म-पुस्तकों का पाठ जीव की हौंमैं में वृद्धि करता है। इसी प्रकार तीर्थों की यात्रा करने से अपनी नेकी और उच्चता का अहंकार हो जाता है। जप-तप, घरबार के त्याग या हठयोग के साधनों से भी कुछ लाभ नहीं होता है, क्योंकि मन पर चढ़ी हुई हौंमैं की मलिनता केवल शब्द (नाम) की कमाई से ही उतरती है। जब शब्द के अभ्यास से हृदय निर्मल हो जाता है तो जीव को सबमें एक ही परमेश्वर का नूर दिखाई देता है। फिर इसके हृदय में संसार के सभी जीवों के प्रति प्यार जाग्रत हो जाता है।

वर्तमान समय में कलियुग का ज़ोर है। इस युग में हर जीव के सिर पर काम, लोभ और मोह का भूत सवार है। विद्वान सच्ची विद्या से कोरे हैं और योद्धाओं में सच्ची शूरवीरता नहीं है। वह कर्तापुरुष घट-घट की जानता है और अंत में हर किसी को अपने किए हुए कर्मों का फल भोगना पड़ेगा।

साधारण तौर पर तो दु:ख एक रोग और सुख दवा बन जाता है। लेकिन परमार्थ में दु:ख सभी दु:खों की दवा बन जाता है क्योंकि दु:ख में हमारा ध्यान कुलमालिक परमात्मा की ओर जाता है, जबकि दुनिया में ऐशो इशरत यानी सुख-भोग के समय मन परमात्मा को भूल जाता है। कलियुग के पापों, दु:खों और कमज़ोरियों से छुटकारे का एकमात्र साधन पूरा सतगुरु है। सतगुरु का उपदेश सब दु:खों की औषधि है।

बाहरी भेषों के प्रभाव में भटकना और भूलना नहीं चाहिए। सेमल का पेड़ लंबा, ऊँचा और मोटा होता है और वह देखने में बहुत सुंदर लगता है, परंतु उसके पत्ते, फल और फूल किसी काम में नहीं आते। सेमल अकड़कर सिर ऊँचा रखता है, परंतु फलदार वृक्ष झुक जाता है। इसी प्रकार सच्ची रूहानियत का बाहरमुखी प्रदर्शन से कोई संबंध नहीं है। माथे पर

केसर के तिलक लगाना और तोते की तरह ग्रंथों और शास्त्रों का पाठ करते जाने का कोई लाभ नहीं। हिंदू जनेऊ को पवित्र समझते हैं, परंतु यह जनेऊ या तो जीते-जी टूट जाता है या मरने पर आग में जल जाता है। इसलिए, क्यों न दया, संतोष, सत्य और संयम का जनेऊ धारण किया जाए, जो लोक और परलोक दोनों में सहायक हो?

बाहरमुखी पवित्रता केवल दिखावा है। वास्तविक पवित्रता हृदय की है। जब तक मन, वचन और कर्म या विचार, भाषा और कार्य में निर्मलता नहीं आती, बाहरमुखी पवित्रता व्यर्थ है।

गुरु साहिब फ़रमाते हैं कि स्त्री-जाति की निंदा करना या उसे निम्न स्तर का समझना ठीक नहीं है। पुरुषों और स्त्रियों का जन्म समान रूप से होता है। राजाओं, महाराजाओं और महापुरुषों को जन्म देनेवाली नारी की क्यों निंदा की जाए? कौन-सा जीव है जो माता के पेट से नहीं जन्मा? फिर नारी की निंदा की जाए तो क्यों?

सच तो यह है कि किसी की भी निंदा नहीं करनी चाहिए। निंदक का अपना ही तीर अपने तन और मन को घायल करता है और अपने अंदर ही ज़हर फैलाता है। निंदक से सभी घृणा करते हैं। लोग निंदक को दुष्ट समझकर उसके मुँह नहीं लगना चाहते। जो अंदर से झूठा और मैला है वह बेशक अपनी चतुराई से मान और बड़ाई प्राप्त कर ले, परंतु वह पाखंडी सच्ची बड़ाई का अधिकारी नहीं है। इस प्रकार के बाहरी तौर पर अमीर और ऊँचे, लेकिन अंदर से नीच व्यक्ति के बजाय नेक और उदार हृदय वाला कंगाल लाख दरजे अच्छा है।

बड़ाई है तो पूरे सतगुरु की और यश गाना हो तो पूरे सतगुरु का गाना चाहिए। वह परम मानव है और बड़े से बड़ा है, क्योंकि वही सच्चा मार्ग दिखाता है, वही अंदर से बुराई निकालता है और वही जीव को परमात्मा से मिलने के लिए समर्थ बनाता है।

आसा की वार में से कुछ चुने हुए अंश नीचे दिए जा रहे हैं, जिनसे इस वार के संपूर्ण स्वरूप और भाव का कुछ अनुमान हो सकेगा।

नानक गुरू न चेतनी

खेत में बुआड़ के पौधे बिलकुल तिलों जैसे होते हैं, परंतु उनके अंदर तिल नहीं होते या सड़ जाते हैं। किसान तिल की कटाई के समय बुआड़ को खेत में ही छोड़ देता है। जो लोग अपने आप को बुद्धिमान समझते हैं और सतगुरु की मति पर नहीं चलते, वे भी बुआड़ के पौधों के समान हैं। बाहर से देखने पर लगता है कि वे संसार में फल-फूल रहे हैं और ख़ूब उन्नति कर रहे हैं, परंतु वे अंदर से बुआड़ की तरह खोखले होते हैं, यानी बाहर से हरे-भरे परंतु अंदर से ख़ाली और सड़े हुए होते हैं:

नानक गुरू न चेतनी मन आपणै सुचेत॥
छुटे तिल बूआड़ जिउ सुंञे अंदर खेत॥
खेतै अंदर छुटिआ कहो नानक सउ नाह॥
फलीअह फुलीअह बपुड़े भी तन विच सुआह॥[1]

लख नेकीआ चंगिआईआ

जीव की लाख नेकियाँ और अच्छाइयाँ उसे जन्म-मरण के चक्र से मुक्त नहीं करा सकतीं। अनेक प्रकार के जप-तप, अनेक तीर्थों की यात्रा और वीरता के लाखों काम दिखाते हुए रणभूमि में अपनी जान क़ुर्बान कर देने से भी सच्ची मुक्ति नहीं मिल सकती। ग्रंथ-पोथियों का पाठ और वाचक-ज्ञान भी किसी को चौरासी के चक्कर से नहीं छुड़ा सकता। उस मालिक की दृष्टि में ऐसे सब धर्मकर्म व्यर्थ हैं। वह जिसको चाहता है, अपनी कृपादृष्टि से सच्चे ज्ञान की दात बख़्श देता है। परंतु वह सच्चा प्रभु अपनी दया सदा सतगुरु के द्वारा ही बाँटता है। अज्ञानी लोग इस बात को नहीं जानते। वे इस भ्रम का शिकार बने रहते हैं कि हम स्वयं ही सब कुछ कर सकते हैं। ऐसे अहंकारी लोग किसी किनारे नहीं लग सकते।

विद्वान को अपनी विद्या का अहंकार होता है; परंतु वह यह नहीं जानता कि ग्रंथ-पोथियों के पाठ का मालिक की दरगाह में कौड़ी जितना

मूल्य भी नहीं है। चाहे कोई ग्रंथ पढ़-पढ़कर उनकी गाड़ियाँ या जहाज़ लाद ले और सारी आयु हर साँस से पाठ करता रहे, फिर भी उसे रूहानी उन्नति प्राप्त नहीं हो सकती। अंत समय तो सतगुरु का प्रेम और शब्द (नाम) की कमाई ही साथ देती है।

यह सारा बाहरमुखी पाठ या ज्ञान मन की मलिनता धोने के बजाय मन को और अधिक गंदा कर देता है। इससे हौंमैं की मैल में भारी वृद्धि हो जाती है। जितनी अधिक कोई तीर्थों की यात्रा करता है उतनी अधिक वह अपनी पवित्रता की शेख़ी बघारता है, क्रोध करता है और उतना अधिक हौंमैं का शिकार होता है। जितना कोई त्यागियों जैसा जीवन बिताने की कोशिश करता है, उतना ही वह दु:खी होता जाता है। इस बाहरमुखी कर्मकांड का कोई मूल्य नहीं है। त्यागी और वैरागी भूखे रहकर मुँह का स्वाद ही बिगाड़ लेते हैं।

दुनियादारों और मनमुखों की संगति करके सदा पश्चाताप करना पड़ता है और मौन धारण करने से जीवन व्यर्थ चला जाता है। सतगुरु की दया-मेहर के बिना माया द्वारा भरमाया जीव अज्ञानता की नींद से कैसे जाग सकता है? सब लोग अज्ञानता के शिकार हैं। त्यागी नंगे पैर रहकर शरीर को व्यर्थ कष्टों में डालता है। वह निषद्ध वस्तुएँ भी खाता है और माथे पर भभूत लगाता है, वह जंगलों, सुनसान और श्मशान में रहकर अपनी देह को व्यर्थ दु:ख देता है। गुरु साहिब कहते हैं कि ऐसा व्यक्ति अंधा है, क्योंकि उस अज्ञानी को यह मालूम नहीं कि परमात्मा के सच्चे नाम (शब्द) की कमाई के बिना किसी भी हठ कर्म का कोई लाभ नहीं है। सतगुरु द्वारा सच का ज्ञान होने पर ही मनुष्य को सच्ची शांति प्राप्त हो सकती है।

गुरु साहिब कहते हैं कि जीव के अपने वश में कुछ नहीं है। जिस पर वह कर्ता स्वयं दया-मेहर करता है, उसको ही प्रभुप्राप्ति की बड़ाई मिलती है। वह शब्द की कमाई द्वारा आशा, निराशा और हौंमैं को जीतकर सदा के लिए मुक्त हो जाता है:

लख नेकीआ चंगिआईआ लख पुंना परवाण॥
लख तप उपर तीरथां सहज जोग बेबाण॥
लख सूरतण संगराम रण मह छुटह पराण॥
लख सुरती लख गिआन धिआन पड़ीअह पाठ पुराण॥
जिन करतै करणा कीआ लिखिआ आवण जाण॥
नानक मती मिथिआ करम सचा नीसाण॥
सचा साहिब एक तूं जिन सचो सच वरताइआ॥
जिस तूं देह तिस मिलै सच ता तिन्ही सच कमाइआ॥
सतगुर मिलिऐ सच पाइआ जिन्ह कै हिरदै सच वसाइआ॥
मूरख सच न जाणन्ही मनमुखी जनम गवाइआ॥
विच दुनीआ काहे आइआ॥
पड़ पड़ गडी लदीअह पड़ पड़ भरीअह साथ॥
पड़ पड़ बेड़ी पाईऐ पड़ पड़ गडीअह खात॥
पड़ीअह जेते बरस बरस पड़ीअह जेते मास॥
पड़ीऐ जेती आरजा पड़ीअह जेते सास॥
नानक लेखै इक गल होर हउमै झखणा झाख॥[2]

लिख लिख पड़िआ॥ तेता कड़िआ॥
बहु तीरथ भविआ॥ तेतो लविआ॥
बहु भेख कीआ देही दुख दीआ॥
सहु वे जीआ अपणा कीआ॥
अंन न खाइआ साद गवाइआ॥
बहु दुख पाइआ दूजा भाइआ॥
बसत्र न पहिरै॥ अहिनिस कहरै॥
मोन विगूता॥ किउ जागै गुर बिन सूता॥
पग उपेताणा॥ अपणा कीआ कमाणा॥
अल मल खाई सिर छाई पाई॥
मूरख अंधै पत गवाई॥ विण नावै किछ थाए न पाई॥

रहै बेबाणी मड़ी मसाणी॥ अंध न जाणै फिर पछुताणी॥
सतगुर भेटे सो सुख पाए॥ हर का नाम मंन वसाए॥
नानक नदर करे सो पाए॥
आस अंदेसे ते निहकेवल हउमै सबद जलाए॥[3]

कूड़ सभ संसार

संसार के सब रिश्ते और पदार्थ झूठे हैं। राजा और प्रजा झूठ हैं; महल और भवन तथा उनमें रहनेवाले झूठ हैं; संसार का संपूर्ण धन, सब पदार्थ झूठ हैं। शरीर, सुंदरता, सुंदर वस्त्र और सब हार-शृंगार झूठे हैं। संसार के सब रिश्ते मात्र छलावा हैं, पति-पत्नी का रिश्ता भी सच्चा और स्थायी नहीं है, यह भी कच्चा और थोड़े समय का है। परंतु कितने आश्चर्य की बात है कि झूठ, झूठ से नेह कर रहा है और उस परमात्मा और उसके नाम को भूला बैठा है! परमात्मा का सच्चा नाम केवल सच्चे हृदय में ही प्रकट हो सकता है। यह नाम ही आत्मिक ज्ञान की सच्ची युक्ति है। यह नाम ही पापों की मैल को धोनेवाला और सच्चा मुक्ति का दाता है।

यह सही है कि दिखाई देनेवाला संसार झूठा और चलायमान है, परंतु उस अदृश्य प्रभु और उसके नाम से कैसे प्यार किया जाए? गुरु साहिब उत्तर देते हैं कि वह परमात्मा और उसका नाम अवश्य सच्चा है परंतु वह निराकार परमात्मा आँखों से दिखाई नहीं देता, इसलिए उस गुप्त परमात्मा का प्रकट रूप पूरा सतगुरु ही हमारे प्यार का सच्चा अधिकारी है। संसार के रिश्तेदार तो जीते-जी साथ छोड़ जाते हैं, परंतु सच्चा सतगुरु मौत के बाद भी साथ निभाता है। गुरु नानक साहिब प्रार्थना करते हैं कि मुझे सतगुरु की चरणधूलि* मिल जाए तो उसका माथे पर तिलक लगाऊँ। परंतु यह सौभाग्य तभी प्राप्त होता है, जब कुलमालिक ने भाग्य में लिखा हो, नहीं तो तुच्छ बुद्धि वाला मनुष्य तो की हुई थोड़ी-बहुत सेवा का फल भी खो बैठता है:

* यहाँ सतगुरु के नूरी स्वरूप के प्रकाश की ओर संकेत है। इस आंतरिक प्रकाश को पारमार्थिक भाषा में सतगुरु की चरणधूलि कहा गया है।

कूड़ राजा कूड़ परजा कूड़ सभ संसार॥
कूड़ मंडप कूड़ माड़ी कूड़ बैसणहार॥
कूड़ सुइना कूड़ रुपा कूड़ पैन्हणहार॥
कूड़ काइआ कूड़ कपड़ कूड़ रूप अपार॥
कूड़ मीआ कूड़ बीबी खप होए खार॥
कूड़ कूड़ै नेह लगा विसरिआ करतार॥
किस नाल कीचै दोसती सभ जग चलणहार॥
कूड़ मिठा कूड़ माखिउ कूड़ डोबे पूर॥
नानक वखाणै बेनती तुध बाझ कूड़ो कूड़॥
सच ता पर जाणीऐ जा रिदै सचा होए॥
कूड़ की मल उतरै तन करे हछा धोए॥
सच ता पर जाणीऐ जा सच धरे पिआर॥
नाउ सुण मन रहसीऐ ता पाए मोख दुआर॥
सच ता पर जाणीऐ जा जुगत जाणै जीउ॥
धरत काइआ साध कै विच दे करता बीउ॥
सच ता पर जाणीऐ जा सिख सची ले॥
दइआ जाणै जीअ की किछ पुंन दान करे॥
सच तां पर जाणीऐ जा आतम तीरथ करे निवास॥
सतगुरू नो पुछ कै बह रहै करे निवास॥
सच सभना होए दारू पाप कढै धोए॥
नानक वखाणै बेनती जिन सच पलै होए॥
दान महिंडा तली खाक जे मिलै त मसतक लाईऐ॥
कूड़ा लालच छडीऐ होए इक मन अलख धिआईऐ॥
फल तेवेहो पाईऐ जेवेही कार कमाईऐ॥
जे होवै पूरब लिखिआ ता धूड़ तिन्हा दी पाईऐ॥
मत थोड़ी सेव गवाईऐ॥[4]

दया क्या है?

साधारण लोग धन-दौलत, ऐशो इशरत, स्वास्थ्य और मान-बड़ाई की प्राप्ति को ही परमात्मा की दया समझते हैं। गुरु नानक साहिब कहते हैं कि सच्ची दया वह है, जिससे मन उस परमात्मा की ओर जाए, उसकी याद में जागे और जीव का उस प्यारे प्रीतम से मिलाप हो जाए। गुरु साहिब इस दृष्टि से परमात्मा की याद भुलानेवाले सुख को दु:ख और परमात्मा की याद करानेवाले दु:ख को सुख कहते हैं। प्रभु से बिछुड़ जाना और प्रभु को बिसार देना ही सब दु:खों का मूल है। इसलिए उस प्रभु की याद करानेवाला दु:ख ही सब दु:खों की औषधि है।

गुरु साहिब ने उस परमात्मा को करता, क़ुदरत वसिआ और अकल कला भरपूर कहकर उसकी सराहना की है। आप कहते हैं कि वह अलख, अगम परमात्मा, अनंत और अथाह है। वह सच्चा है, सर्वव्यापक है और उसका प्रकाश सबमें समाया हुआ है। वह कर्ता अपनी रज़ा का मालिक है और उसे जैसे भाता है, वैसे करता है। धन्य है वह सतगुरु, जो मन को वश में करके उस अनंत प्रभु से मिलाप करने का सच्चा ज्ञान देता है।

गुरु साहिब कहते हैं कि केवल पुस्तकीय ज्ञान के आधार पर किसी की महानता की परख नहीं की जा सकती। वास्तविक महानता उसके कर्मों में होती है। पढ़े-लिखे पापी को अपने कर्मों की सज़ा स्वयं भोगनी पड़ेगी, उसके स्थान पर किसी अनपढ़ साधु को बलि का बकरा नहीं बनाया जा सकता। उस मालिक की दरगाह में किए हुए कर्मों पर निबेड़ा होता है। दरगाह में पढ़े-लिखे लोगों की विद्वत्ता नहीं, बल्कि करनी आँकी जाती है। गुरु साहिब सावधान करते हैं कि जब हर एक को किए हुए कर्मों की सज़ा भोगनी ही पड़ेगी, तो हमें ऐसे कर्म नहीं करने चाहिएँ जिनके कारण दरगाह में बाज़ी हारनी पड़े। आप चेतावनी देते हैं कि जो लोग मन के अधीन होकर कुमार्ग पर चलते हैं और सही मार्ग पर चलने का प्रयत्न नहीं करते, वे अंत में दु:खी होते हैं और पछताते हैं:

दुखु दारू सुख रोग भइआ जा सुख ताम न होई॥
तूं करता करणा मै नाही जा हउ करी न होई॥
बलिहारी कुदरत वसिआ॥ तेरा अंत न जाई लखिआ॥
जात मह जोत जोत मह जाता अकल कला भरपूर रहिआ॥
तूं सचा साहिब सिफत सुआल्हिउ जिन कीती सो पार पइआ॥
कहो नानक करते कीआ बाता जो किछ करणा सो कर रहिआ॥ ...
कुंभे बधा जल रहै जल बिन कुंभ न होए॥
गिआन का बधा मन रहै गुर बिन गिआन न होए॥
पड़िआ होवै गुनहगार ता ओमी साध न मारीऐ॥
जेहा घाले घालणा तेवेहो नाउ पचारीऐ॥
ऐसी कला न खेडीऐ जित दरगह गइआ हारीऐ॥
पड़िआ अतै ओमीआ वीचार अगै वीचारीऐ॥
मुह चलै सो अगै मारीऐ॥[5]

सूतक

गुरु साहिब सूतक, छूतछात या पवित्र-अपवित्र हो जाने के वहम के बारे में अपने विचारों से सबको चकित कर देते हैं। लोग कई चीज़ों में सूतक देखते हैं और यह सोचते हैं कि इनके साथ छूकर अपवित्र हो जाएँगे। यदि सूतक का विचार सही मान लिया जाए तो हर ओर सूतक ही सूतक दिखाई देगा। गोबर और लकड़ी के अंदर कीड़े हैं, इसलिए इनको हाथ लगाने या जलाने से अपवित्र हो जाएँगे। अन्न के दाने-दाने में जीव हैं। पानी में भी जीव हैं, जो सब पेड़-पौधों को हरियाली बख़्शता है। इस प्रकार के सूतक मानने से लकड़ी, गोबर और अन्न-जल कुछ भी रसोई में नहीं चढ़ सकते। इस प्रकार का सूतक किसी को पार नहीं उतार सकता। गुरु साहिब कहते हैं कि केवल शब्द (नाम) की कमाई या उस परमात्मा का सच्चा ज्ञान ही हर प्रकार के सूतक को साफ़ कर सकता है।

यह सूतक केवल बाहरी पदार्थों तक ही सीमित नहीं है। लोभ मन को मैला करता है और झूठ जिह्वा को अपवित्र करता है। पराई स्त्री,

पराए रूप और पराए धन को बुरी नज़र से देखने से आँखें मैली हो जाती हैं और पराई निंदा सुनने से कान अशुद्ध होते हैं। इस प्रकार की मलिनता का शिकार होनेवाले लोग बाहर से हंसों की तरह कितने ही सुंदर क्यों न दिखाई दें, पर वे नरकों में अवश्य जाएँगे। हर प्रकार की गंदगी और अपवित्रता का कारण भ्रम या अज्ञानता है, जिसके कारण जीव एक परमात्मा को छोड़कर संसार की दूसरी वस्तुओं से प्यार करता है।

हर प्रकार की मलिनता से छुटकारा प्राप्त करने के इच्छुक को चाहिए कि पूरे सतगुरु की खोज करे, क्योंकि जो लोग पूरे सतगुरु की मति पर चलते हैं, उनके सभी सूतक दूर हो जाते हैं। सतगुरु बड़ा है और बड़ाई के योग्य है। जिसके सिर पर वह अपना दयापूर्ण और समर्थ हाथ रख देता है, उसके अंदर से सब मलिनता निकल जाती है। और तो और सतगुरु तो कृपा करके हमारा परमात्मा से मिलाप करवा देता है और उसको सदा के लिए हमारे अंदर बसा देता है। जब सतगुरु की कृपा होती है तो अपने अंदर ही सबसे ऊँची दौलत मिल जाती है:

जे कर सूतक मंनीऐ सभ तै सूतक होए॥
गोहे अतै लकड़ी अंदर कीड़ा होए॥
जेते दाणे अंन के जीआ बाझ न कोए॥
पहिला पाणी जीउ है जित हरिआ सभ कोए॥
सूतक किउ कर रखीऐ सूतक पवै रसोए॥
नानक सूतक एव न उतरै गिआन उतारे धोए॥
मन का सूतक लोभ है जिहवा सूतक कूड़॥
अखी सूतक वेखणा पर त्रिअ पर धन रूप॥
कंनी सूतक कंन पै लाइतबारी खाहे॥
नानक हंसा आदमी बधे जम पुर जाहे॥
सभो सूतक भरम है दूजै लगै जाए॥
जंमण मरणा हुकम है भाणै आवै जाए॥

खाणा पीणा पवित्र है दितोन रिजक संबाहे॥
नानक जिन्ही गुरमुख बुझिआ तिन्हा सूतक नाहे॥[6]

सतगुर वडा कर सालाहीऐ जिस विच वडीआ वडिआईआ॥
सह मेले ता नदरी आईआ जा तिस भाणा ता मन वसाईआ॥
कर हुकम मसतक हथ धर विचहो मार कढीआ बुरिआईआ॥
सह तुठै नउ निध पाईआ॥[7]

नानक फिकै बोलिऐ

दूसरों की निंदा करनेवाला या लोगों को बुरा कहनेवाला एक तो अपने तन और मन को गंदा करता है और दूसरे सारे संसार में बदनाम होता है। इस लोक में उसका तिरस्कार होता है और परमात्मा की दरगाह में उसको धक्के दिए जाते हैं। ऐसे मूर्ख को हर कोई जूते मारता है। जो आदमी अंदर से पापी है, परंतु बाहर से नेक और ईमानदार बनकर दिखाता है और अहंकार से अकड़कर चलता है, वह चाहे अड़सठ तीर्थों का स्नान कर ले, फिर भी उसकी मैल कभी धुल नहीं सकती। इसके विपरीत जो लोग बाहर से देखने में गूदड़ के समान लगते हैं परंतु अंदर से रेशम जैसे कोमल हैं, वे सही अर्थों में भले लोग हैं। उनके अंदर उस परमात्मा का सच्चा प्यार होता है और उनको सदा उसके दर्शन की तड़प लगी रहती है। मालिक के ऐसे भक्त सदा अपने हाल में मस्त रहते हैं। उनको परमात्मा या उसके सच्चे नाम के सिवाय किसी वस्तु की इच्छा नहीं होती। वे केवल एक मालिक के द्वार के मँगते हैं। जो कुछ वह अपनी मौज में दे देता है, उसी में राज़ी रहते हैं। वह परमात्मा ही सबका स्वामी है। जो कुछ हो रहा है उसके हुक्म की क़लम से लिखा हो रहा है। वह मालिक हर कर्म का लेखा माँगता है। बुरे कर्म करनेवाले दरगाह में इस प्रकार पीसे जाते हैं जैसे कोल्हू में घानी पीसी जाती है।

श्लोकों के बाद आई पौड़ी में गुरु साहिब परमात्मा की सर्वव्यापकता और सर्वशक्तिमानता की महिमा करते हुए कहते हैं कि उस कुलमालिक

ने स्वयं ही संसार की रचना की है और स्वयं ही इसका आधार बना हुआ है। वह स्वयं ही जगत की लीला का कर्ता है और स्वयं इसका तमाशा देख रहा है। वह स्वयं कच्चों और पक्कों की परख और सँभाल करता है। उसके हुक्म में ही जीव अपनी बारी आने पर संसार से कूच कर जाते हैं। गुरु साहिब कहते हैं कि उस मालिक को तो कभी एक पल के लिए भी मन से नहीं भुलाना चाहिए, जो हमारे जीवन और प्राणों का दाता है। इस संसार में आकर और उस मालिक की भक्ति करके अपना उद्धार कर लेना चाहिए:

नानक फिकै बोलिऐ तन मन फिका होए॥
फिको फिका सदीऐ फिके फिकी सोए॥
फिका दरगह सटीऐ मुह थुका फिके पाए॥
फिका मूरख आखीऐ पाणा लहै सजाए॥
अंदरहो झूठे पैज बाहर दुनीआ अंदर फैल॥
अठसठ तीरथ जे नावह उतरै नाही मैल॥
जिन्ह पट अंदर बाहर गुदड़ ते भले संसार॥
तिन्ह नेह लगा रब सेती देखन्हे वीचार॥
रंग हसह रंग रोवह चुप भी कर जाहे॥
परवाह नाही किसै केरी बाझ सचे नाह॥
दर वाट उपर खरच मंगा जबै दे त खाहे॥
दीबान एको कलम एका हमा तुम्हा मेल॥
दर लए लेखा पीड़ छुटै नानका जिउ तेल॥[8]

आपे ही करणा कीओ कल आपे ही तै धारीऐ॥
देखह कीता आपणा धर कची पकी सारीऐ॥
जो आइआ सो चलसी सभ कोई आई वारीऐ॥
जिस के जीअ पराण हहे किउ साहिब मनहो विसारीऐ॥
आपण हथी आपणा आपे ही काज सवारीऐ॥[9]

रहरास

रहरास सिक्खों की संध्या की प्रार्थना का एक भाग है। इनमें ज़्यादातर गुरु रामदास जी और गुरु अर्जुन देव जी की वाणी के शब्द हैं, इसके साथ गुरु नानक देव जी की वाणी के भी दो शब्द हैं। पहले शब्द में गुरु साहिब कहते हैं कि उस परमात्मा की बड़ाई तो सब करते हैं, परंतु उसकी बड़ाई वास्तव में वे ही जानते हैं जो उसमें समाकर उसका रूप हो गए हैं। जिन्होंने उस अनंत प्रभु के दर्शन नहीं किए, वे कभी भी उसकी बड़ाई का अंदाज़ा नहीं लगा सकते।

गुरु साहिब कहते हैं: हे प्रभु! तू अथाह है, तू अपार है, तू गुणों का अखूट भंडार है। बड़े-बड़े ज्ञानी और ध्यानी पूरा ज़ोर लगाकर भी तेरी तिल भर बड़ाई नहीं जान सकते। कोई अपने बलबूते से सिद्ध पुरुष भी नहीं बन सकता। दान-पुण्य और जप-तप की बड़ाई भी तेरी अपनी दात है। तू गुणों और अच्छाइयों का सागर है, परंतु कोई भी अपने प्रयत्न, ज़ोर या चतुराई से तुझसे गुण नहीं ले सकता। जिसे तू चाहता है, उसे ही सच्चे गुणों की प्राप्ति होती है और वही परमसत्य अर्थात् परमात्मा को प्राप्त कर सकता है।

दूसरे शब्द में गुरु साहिब अपार भक्ति भाव से कहते हैं कि उस परमात्मा के नाम-सिमरन में जीवन है और नाम को भुला देने में मौत है। परमात्मा के सच्चे भक्तों को सदा उस परमात्मा यानी उसके नाम की भूख लगी रहती है। वह परमेश्वर और उसका नाम ही उनके जीवन

का मूल तत्त्व या वास्तविक आधार है। परमात्मा के सच्चे नाम की तीव्र इच्छा में सब दुःख डूब जाते हैं, परंतु उसके सच्चे नाम की आराधना बहुत कठिन है।

वह नाम अकथ है। उसकी शब्दों में महिमा कर सकना असंभव है। अनेक प्रयत्नों के बावजूद भी लोग उसके नाम का गुणगान नहीं कर पाए। संसार के सब लोग मिलकर भी उसका पूरा मूल्य नहीं आँक सकते। लोगों की महिमा या निंदा से उस प्रभु या उसके नाम की बड़ाई कम या ज़्यादा नहीं हो सकती। वह अलख, अगम परमात्मा जन्म-मरण और हानि-लाभ से ऊपर है। वह दाता अपने अखूट भंडार से सदा दात बाँट रहा है। न तो कोई उस जैसा बड़ा हुआ है और न हो सकता है। उस बड़े दाता की सबसे बड़ी दात उसका सच्चा नाम है। उस कर्तापुरुष के नाम को भूलनेवाले जीव नीच और निकम्मे हैं:

सुण वडा आखै सभ कोए

सुण वडा आखै सभ कोए॥
केवड वडा डीठा होए॥
कीमत पाए न कहिआ जाए॥
कहणै वाले तेरे रहे समाए॥
वडे मेरे साहिबा गहिर गंभीरा गुणी गहीरा॥
कोए न जाणै तेरा केता केवड चीरा॥
सभ सुरती मिल सुरत कमाई॥
सभ कीमत मिल कीमत पाई॥
गिआनी धिआनी गुर गुरहाई॥
कहण न जाई तेरी तिल वडिआई॥
सभ सत सभ तप सभ चंगिआईआ॥
सिधा पुरखा कीआ वडिआईआ॥
तुध विण सिधी किनै न पाईआ॥

करम मिलै नाही ठाक रहाईआ॥
आखण वाला किआ वेचारा॥ सिफती भरे तेरे भंडारा॥
जिस तू देह तिसै किआ चारा॥ नानक सच सवारणहारा॥[1]

सच्चा नाम

आखा जीवा विसरै मर जाउ॥ आखण अउखा साचा नाउ॥
साचे नाम की लागै भूख॥ उत भूखै खाए चलीअह दूख॥
सो किउ विसरै मेरी माए॥ साचा साहिब साचै नाए॥
साचे नाम की तिल वडिआई॥ आख थके कीमत नही पाई॥
जे सभ मिल कै आखण पाहे॥ वडा न हौवै घाट न जाए॥
न ओह मरै न होवै सोग॥ देदा रहै न चूकै भोग॥
गुण एहो होर नाही कोए॥ ना को होआ ना को होए॥
जेवड आप तेवड तेरी दात॥ जिन दिन कर कै कीती रात॥
खसम विसारहे ते कमजात॥ नानक नावै बाझ सनात॥[2]

आरती

आरती सिक्खों की सोहिले की भाँति रात्रि को सोने से पहले गाई जानेवाली अरदास या विनती है। आसा की वार की तरह साधारण तौर पर आरती को मिलकर गाते हैं, परंतु सोहिले के साथ गाते समय इसको अकेले में गाया जाता है। प्राचीन समय से यह वृत्तांत चला आ रहा है कि गुरु साहिब ने जगन्नाथ पुरी में चैतन्य महाप्रभु से मुलाक़ात के समय इस आरती का उच्चारण किया था।

गुरु साहिब परंपरागत आरती का उदाहरण लेकर उस कर्तापुरुष की पैदा की हुई प्रकृति की सुंदरता का वर्णन करते हैं। सारी प्रकृति एक अद्‌भुत आरती का नमूना है। इस आरती में आकाश थाल है, चाँद और सूर्य दीपक हैं और तारे मोतियों के समान हैं। चंदन से भरे पर्वतों से आनेवाली सुगंधि धूप का काम दे रही है। पवन उस स्वामी को पंखा झुला रही है और सारी वनस्पति के फूल उसके सामने चढ़ावे के समान है। यह कैसी आश्चर्यमयी आरती हो रही है, जिसमें अनहद शब्द की अनुपम भेरी बज रही है।

गुरु साहिब इस आश्चर्यमयी आरती के इष्ट उस परमात्मा की महिमा करते हुए कहते हैं कि वह रंगरूप से ऊपर है। वह ख़ुद आँख, कान, हाथ, पैर से रहित है, परंतु सब रंगरूप, आँखों, कानों, हाथों और पैरों में वही समाया हुआ है। उसका कोई रूप नहीं, परंतु अनंत रूप उसके ही प्रकाश को प्रकट करते हैं। घट-घट में उसकी ज्योति जल रही है, परंतु इस ज्योति के दर्शन पूरे सतगुरु की शिक्षा पर चलने से ही होते हैं। इस विस्मयपूर्ण आरती की समझ भी उसके भाणे से ही होती है।

गुरु साहिब आरती के अंत में कहते हैं: हे प्रभु! मैं तेरे चरणकमलों का भ्रमर हूँ, मैं तेरे नाम की स्वाति बूँद का पपीहा हूँ। तू कृपा द्वारा मुझे अपने नाम का अमृत दे, ताकि मैं इस अमृत को पीकर इसका ही रूप हो जाऊँ:

गगन मै थाल रवि चंद दीपक बने तारिका मंडल जनक मोती॥
धूप मलआनलो पवण चवरो करे सगल बनराए फूलंत जोती॥
कैसी आरती होए॥ भव खंडना तेरी आरती॥
अनहता सबद वाजंत भेरी॥
सहस तव नैन नन नैन हहे तोहे कउ सहस मूरत नना एक तुोही॥
सहस पद बिमल नन एक पद गंध बिन
सहस तव गंध इव चलत मोही॥
सभ मह जोत जोत है सोए॥ तिस दै चानण सभ मह चानण होए॥
गुर साखी जोत परगट होए॥ जो तिस भावै सो आरती होए॥
हर चरण कवल मकरंद लोभित मनो अनदिनो मोहे आही पिआसा॥
क्रिपा जल देह नानक सारिंग कउ होए जा ते तेरै नाए वासा॥[1]

सोहिला

सोहिला* या सराहनापूर्ण गीत दिन की अंतिम विनती है, जो रात को सोते समय गाई जाती है। जिस प्रकार जप जी दिन की पहली प्रार्थना है, वैसे ही सोहिला दिन की अंतिम प्रार्थना है।

सोहिले में गुरु नानक साहिब के दो शब्द शामिल हैं। पहले में गुरु साहिब ने उपदेश दिया है कि जीव को चाहिए कि जब तक परमात्मा ने उमर बख़्शी है, उस कर्ता का भजन-सिमरन करे। अपने जीवन को उस मालिक के लेखे लगाने से ही अमर आनंद की प्राप्ति हो सकती है। वह कर्तापुरुष जीव के अपने अंदर है और अपने अंदर खोज करने से ही उससे मिलाप हो सकता है। वह दयालु प्रभु अपने सिरजे हुए सभी जीवों की सँभाल कर रहा है। न कोई उस अलख प्रभु की बड़ाई लख सकता है और न ही कोई उसकी दी हुई दात का मूल्य आँक सकता है।

गुरु साहिब कहते हैं कि जीव के लिए सबसे भाग्यशाली और ख़ुशी की घड़ी उसका अंतिम समय है, जब उसे कुलमालिक की दरगाह से बुलावा आता है। आप उस समय की तुलना विवाह से करते हैं। जिस प्रकार विवाह के समय स्त्री अपने पति के साथ ब्याही जाती है, उसी प्रकार अंत समय आत्मा के परमात्मा से ब्याहे जाने की शुभ घड़ी होती है। मौत का बुलावा हर किसी को आता है और गुरु साहिब हमें सावधान

* शब्द सोहिला का अर्थ सोने का समय है।
एम.ए. मैकॉलिफ़ – *सिक्ख रिलीजन* 1:233 फ़ुटनोट।

करते हैं कि हमें भी शीघ्र बुलावा आनेवाला है, शीघ्र ही हमारे लिए भी पुकार होनेवाली है।

दूसरे शब्दों में इस सत्य का वर्णन किया गया है कि दर्शन या फ़िलॉसफ़ी के चाहे कितने ही रूप क्यों न हों, परंतु सबका मालिक वह परमात्मा एक ही है। गुरु साहिब यहाँ छ: दर्शनों का वर्णन करते हैं, जिनमें परमात्मा और संसार के विषय में भिन्न-भिन्न विचार प्रकट किए गए हैं। गुरु साहिब ने छ: दर्शनों की तुलना छ: ऋतुओं के साथ और दिव्य ज्ञान की तुलना इन ऋतुओं को पैदा करनेवाले एक सूर्य से की है:

जै घर कीरत आखीऐ करते का होए बीचारो॥
तित घर गावहो सोहिला सिवरिहो सिरजणहारो॥
तुम गावहो मेरे निरभउ का सोहिला॥
हउ वारी जित सोहिलै सदा सुख होए॥
नित नित जीअड़े समालीअन देखैगा देवणहार॥
तेरे दानै कीमत ना पवै तिस दाते कवण सुमार॥
संबत साहा लिखिआ मिल कर पावहो तेल॥
देहो सजण असीसड़ीआ जिउ होवै साहिब सिउ मेल॥
घर घर एहो पाहुचा सदड़े नित पवंन॥
सदणहारा सिमरीऐ नानक से दिह आवंन॥[1]

छिअ घर छिअ गुर छिअ उपदेस॥ गुर गुर एको वेस अनेक॥
बाबा जै घर करते कीरत होए॥ सो घर राख वडाई तोए॥
विसुए चसिआ घड़ीआ पहरा थिती वारी माह होआ॥
सूरज एको रुत अनेक॥ नानक करते के केते वेस॥[2]

सिध-गोस्ट

गुरु नानक और योगी

यहाँ सिध-गोस्ट अर्थात् सिद्ध-गोष्ठी में से कुछ अंश दिए जा रहे हैं, जिनमें योगी गुरु साहिब की विचारधारा के विषय में कुछ बुनियादी प्रश्न करते हैं और गुरु साहिब उनके बहुत सुंदर और भावपूर्ण उत्तर देते हैं।

चरपट योगी जीवनरूपी भवसागर को तरने की युक्ति के विषय में प्रश्न करता है। गुरु साहिब समझाते हैं कि जिस प्रकार कमल का फूल और मुरग़ाबी पानी में रहते हुए भी भीगते नहीं, उसी तरह संसार या माया में रहते हुए इससे निर्लेप रहना चाहिए और अपनी सुरत को अंदर शब्द से जोड़कर संसार-सागर से पार हो जाना चाहिए।

लोहारीपा योगी कहता है कि योगी को चाहिए कि आबादियों से बचकर सुनसान में छिपकर रहे, जंगल के कंदफूल खाकर गुज़ारा करे और मन की शुद्धि के लिए तीर्थों पर स्नान करे। गुरु साहिब समझाते हैं कि आवश्यकता संसार से भागने की नहीं, बल्कि सावधान रहते हुए संसार में विचरने की है। संसार में रहते हुए मन को पराए धन, पराए तन और आशा-तृष्णा से बचाकर रखना चाहिए और थोड़ा खाने और थोड़ा सोने की आदत डालनी चाहिए।

लोहारीपा दलील देता है कि सच्चा योगी वह है जिसके कानों में मुद्राएँ और हाथ में कजकोल* हो। वह दावा करता है कि मैं गोरखनाथ

---

* फ़क़ीरों का एक तरह का भिक्षापात्र।

का पुत्र (शिष्य) हूँ और हमारी साधना छः दर्शन और योगियों के बारह संप्रदायों* में से सबसे उत्तम है। गुरु साहिब कहते हैं कि हम तो केवल सुरत को शब्द से जोड़ने की साधना को ही उत्तम मानते हैं। हमारे लिए अंदर शब्द को सुनना, कानों में मुद्रा पहनने के समान और हर स्थान पर एक परमात्मा का नूर देखना, खिंथा और कजकोल धारण करने के समान है। मुक्तिदाता तो वह परमात्मा है जो स्वयं सच्चा है और जिसका नाम भी सच्चा है।

एक और योगी पूछता है कि हे नानक! तूने घरबार क्यों त्याग दिया? तूने उदासियों का भेष क्यों पहना? तू किस वस्तु का व्यापारी है और शिष्यों व सेवकों के उद्धार के लिए तेरे पास कौन-सी युक्ति है?

गुरु साहिब उत्तर देते हैं कि परमेश्वर के विरह और सतगुरु की खोज में मैंने घर त्याग दिया और उदासियों जैसा भेष धारण किया। मैं परमात्मा यानी नामरूपी सत्य का व्यापार करता हूँ और मेरे साथियों के उद्धार का साधन गुरुमत है।

एक अन्य योगी पूछता है: जीवन किसके सहारे चलता है? गुरु कौन होता है और शिष्य कौन? और संसार से निर्लेप कैसे रहा जाता है? गुरु साहिब उत्तर देते हैं कि जीवन का मूल पवन है और मेरा उपदेश गुरुमत का है। सतगुरु का स्वरूप शब्द है और सेवक की सुरत (आत्मा) ही शिष्य है। परमात्मा की भक्ति संसार से निर्लेप रहने का साधन है। वह प्रभु शब्द-रूप में दर्शन देता है और आशा-तृष्णा की आग केवल साधु की संगति में ही बुझ सकती है।

एक और योगी टेढ़े प्रश्न करता है: मोम के दाँतों से लोहा कैसे चबाया जाए? कौन-सा भोजन है जो हौंमैं को खा जाता है? मन को कौन-सी गुफा में क़ैद करें? मन को किस सर्वव्यापक शक्ति से जोड़ा जाए और किसके स्वरूप का ध्यान किया जाए? गुरु साहिब उत्तर देते हैं: जो कुछ है,

* इन संप्रदायों के नाम हैं: हेत, पाव, आई, गमय, पागल, गोपाल, कंधरी, बानां, पुरा, चौली, रावल तथा दास।

उसको परमात्मा का रूप मानना हौंमैं को मारने की युक्ति है। संसार केवल मनमुखों के लिए लोहे की तरह सख़्त है। शब्द के अभ्यासी आसानी से यह लोहा पचा सकते हैं। जो शब्द में मर जाता है अर्थात् शब्द में लीन हो जाता है, वह सदा के लिए मौत के बंधनों से मुक्त हो जाता है।

इस पर योगी पूछते हैं: वह शब्द कहाँ रहता है? गुरु साहिब उत्तर देते हैं कि उस सर्वव्यापक शब्द से अपने अंदर जुड़ा जा सकता है। शब्द में लीन होने से, न केवल जीव सच्चा ज्ञानी और योगी बन जाता है, बल्कि परमात्मा में समाकर उसका रूप हो जाता है। पवन की तरह वह शब्द दिखाई तो नहीं देता, परंतु वह पवन की तरह ही हर स्थान पर व्यापक है। शब्द का बोध पूरे सतगुरु से प्राप्त होता है। शब्द के ज्ञान से द्वैत का नाश हो जाता है और तीनों गुणों और इड़ा, पिंगला व सुषुम्ना के तीनों मार्गों को पार करने की युक्ति मिल जाती है। इस अवस्था को पार कर चुके व्यक्ति के हर वचन में सच्चा ज्ञान भरा होता है।

चरपट योगी:

दुनीआ सागर दुतर कहीऐ किउ कर पाईऐ पारो॥
चरपट बोलै अउधू नानक देहो सचा बीचारो॥[1]

संसार-सागर को तैरना कठिन है, इसको कैसे पार किया जाए?

गुरु साहिब जवाब देते हैं, हे योगी! तू ख़ुद ही कहता है कि जगत को तैरा नहीं जा सकता और ख़ुद ही कहता है कि उसे कैसे तैर सकते हैं? तू ख़ुद को भवसागर पार हो चुका समझता है, फिर तेरे साथ क्या विचार या बहस की जाए?

गुरु नानक:

आपे आखै आपे समझै तिस किआ उतर दीजै॥
साच कहहो तुम पारगरामी तुझ किआ बैसण दीजै॥
जैसे जल मह कमल निरालम मुरगाई नै साणे॥

सुरत सबद भव सागर तरीऐ नानक नाम वखाणे॥
रहहे इकांत एको मन वसिआ आसा माहे निरासो॥
अगम अगोचर देख दिखाए नानक ता का दासो॥[2]

कमल और मुरग़ाबी की तरह पानी में रहते हुए पानी से भीगे बिना, सुरत को शब्द से जोड़कर इस भवसागर को पार किया जा सकता है। यह सबमें रहते हुए सबसे निर्लेप रहने और आशा-तृष्णा के संसार में आशारहित रहने का साधन है। मैं उस महात्मा का दास हूँ जो स्वयं उस अगम, अगोचर प्रभु के दर्शन कर चुका है और दूसरों को भी उसके दर्शन कराने में समर्थ है।

लोहारीपा योगी:

हाटी बाटी रहहे निराले रूख बिरख उदिआने॥
कंद मूल अहारो खाईऐ अउधू बोलै गिआने॥
तीरथ नाईऐ सुख फल पाईऐ मैल न लागै काई॥
गोरख पूत लोहारीपा बोलै जोग जुगत बिध साई॥[3]

वास्तविक योग यानी ज्ञान तभी प्राप्त हो सकता है जब कोई शहरों और बाज़ारों से अलग रहे और वन के पेड़-पौधों के कंदमूल पर गुज़ारा करे तथा तीर्थों पर स्नान करे तो उसके मन को कोई मैल नहीं लगेगी और उसे सुखरूपी फल की प्राप्ति होगी। यह विचार मैं गोरखनाथ का शिष्य (पुत्र) लोहारीपा प्रकट करता हूँ और यही सच्चे योग की युक्ति है।

गुरु नानक:

हाटी बाटी नीद न आवै पर घर चित न डोलाई॥
बिन नावै मन टेक न टिकई नानक भूख न जाई॥
हाट पटण घर गुरू दिखाइआ सहजे सच वापारो॥
खंडित निद्रा अलप अहारं नानक तत बीचारो॥

दरसन भेख करहो जोगिंद्रा मुंद्रा झोली खिंथा॥
बारह अंतर एक सरेवहो खट दरसन इक पंथा॥
इन बिध मन समझाईऐ पुरखा बाहुड़ चोट न खाईऐ॥
नानक बोलै गुरमुख बूझै जोग जुगत इव पाईऐ॥
अंतर सबद निरंतर मुद्रा हउमै ममता दूर करी॥
काम क्रोध अहंकार निवारै गुर कै सबद सो समझ परी॥
खिंथा झोली भरिपुर रहिआ नानक तारै एक हरी॥
साचा साहिब साची नाई परखै गुर की बात खरी॥[4]

साधक को शहरों और बाज़ारों को त्यागने की ज़रूरत नहीं है, उसे तो चाहिए कि इनमें रहते हुए निद्रा अर्थात् अज्ञानता, भ्रम और आलस्य से बचा रहे। वह सावधान रहे और पराए घर अर्थात् पराए-धन, पराए-तन आदि को देखकर मन को न डोलने दे। परंतु नाम के बिना चंचल मन ठहरता नहीं और न ही इसकी तृष्णा बुझती है। शिष्य सतगुरु द्वारा दिखाए गए आंतरिक शहर में जाकर सहज समाधि में शब्द यानी नामरूपी सच का व्यापार करे। वह थोड़ा खाए और थोड़ा सोए। इस प्रकार सच की साधना से उसको परमतत्त्व का ज्ञान हो जाएगा और यही सच्चा योग है। हे योगीराज! परमात्मा के दर्शन को ही योग का पहनावा, मुद्रा, झोली और खिंथा समझो। छ: दर्शन अलग-अलग अवश्य हैं, परंतु परमात्मा की प्राप्ति का असली मार्ग यानी सच्चा योग यही है। योगियों के बारह पंथों का लक्ष्य भी एक परमात्मा है। यदि मन को परमात्मा की एकता के ज्ञान से बाँध लें तो फिर (जन्म-मरण, सुख-दु:ख, आशा-तृष्णा की) चोटें न खानी पड़ें। परंतु इस ज्ञान की समझ सतगुरु की कृपा से आती है और केवल सतगुरु द्वारा ही सच्चे योग की प्राप्ति हो सकती है।

हमारा सच्चा योग यह है कि अंदर सुरत को शब्द से जोड़ने की मुद्रा पहनी जाए और हौंमैं व मोह-ममता को दूर किया जाए। काम, क्रोध और अहंकार को भी दूर करें। यह कार्य सतगुरु के उपदेश के अनुसार शब्द की साधना से होगा। हर स्थान पर एक प्रभु को देखें जो सबका तारनहार

है और यही वास्तविक खिंथा (कफ़नी) और चोला है। जो योगी इस प्रकार की युक्ति धारण करता है, उसे गुरु के शब्द के सच की परख हो जाती है और उसे पता चल जाता है कि वह परमात्मा भी सच्चा है और उसका नाम भी सच्चा है।

योगी:

किस कारण ग्रिह तजिओ उदासी॥ किस कारण इह भेख निवासी॥
किस वखर के तुम वणजारे॥ किउ कर साथ लंघावहो पारे॥[5]

तू किसलिए घर त्यागकर उदासी बना, तू किस वस्तु का बनजारा है और अपने साथियों को कैसे पार करेगा?

गुरु नानक:

गुरमुख खोजत भए उदासी॥ दरसन कै ताई भेख निवासी॥
साच वखर के हम वणजारे॥ नानक गुरमुख उतरस पारे॥[6]

मैंने सतगुरु की खोज में घर त्यागा और परमात्मा के दर्शन के लिए उदासियों जैसा वेश धारण किया। मैं सच का सौदा ख़रीदने के लिए निकला हूँ। मैं और मेरे साथी सतगुरु की सहायता द्वारा पार होंगे।

योगी:

कवण मूल कवण मत वेला॥ तेरा कवण गुरू जिस का तू चेला॥
कवण कथा ले रहहो निराले॥ बोलै नानक सुणहो तुम बाले॥
एस कथा का दे बीचार॥ भवजल सबद लंघावणहार॥[7]

जीवन का मूल क्या है और कौन-से मत या कौन-से ज्ञान का युग है? वह गुरु कौन है जिसका तू शिष्य है? कौन-सी कथा या ज्ञान के सहारे तू अपने आप को निर्लेप रखता है? हे बालक! तू इन प्रश्नों के उत्तर दे और जो यह भी कहा है कि शब्द भवसागर से पार करता है, उस विषय में भी स्पष्ट समझा।

गुरु नानक :

पवन अरंभ सतगुर मत वेला॥ सबद गुरू सुरत धुन चेला॥
अकथ कथा ले रहउ निराला॥ नानक जुग जुग गुर गोपाला॥
एक सबद जित कथा वीचारी॥ गुरमुख हउमै अगन निवारी॥[8]

जीवन का मूल पवन है। यह युग सतगुरु के उपदेश पर चलने का है। शब्द गुरु है और सुरत चेला है अर्थात् गुरु की हस्ती का सार शब्द है और शिष्य की हस्ती का सार सुरत (आत्मा) है। गुरु शब्द-रूप है और शिष्य सुरत-रूप है, मैं शब्द, सच, नाम या परमेश्वररूपी अकथ कथा में जुड़कर जगत में निर्लेप रहता हूँ। गुरु गोपाल (परमात्मा) का रूप है, अमर और अविनाशी है। सच्चा ज्ञान या सच्ची कथा का ज्ञान शब्द द्वारा प्राप्त होता है और हौंमैं की अग्नि सतगुरु की दया से बुझ जाती है।

योगी:

मैण के दंत किउ खाईऐ सार॥ जित गरब जाए सो कवण आहार॥
हिवै का घर मंदर अगन पिराहन॥ कवन गुफा जित रहै अवाहन॥
इत उत किस कउ जाण समावै॥ कवन धिआन मन मनह समावै॥[9]

मोम के दाँतों से सार (लोहा) कैसे खाया जाए? वह कौन-सा भोजन है जो अहंकार को मार दे? हमारा घर बर्फ़ का बना हुआ है और हमारे वस्त्र आग के हैं। फिर कौन-सी गुफा में रहें कि मन अचल हो जाए। वह कौन है जो यहाँ और वहाँ हर स्थान पर व्यापक है और जिसमें समाना चाहिए? वह कौन है जिसका ध्यान धरने से मन, मन में समा सकता है अर्थात् वापस अपने निज-स्थान पहुँच सकता है।

गुरु नानक:

हउ हउ मै मै विचहो खोवै॥ दूजा मेटै एको होवै॥
जग करड़ा मनमुख गावार॥ सबद कमाईऐ खाईऐ सार॥
अतंर बाहर एको जाणै॥ नानक अगन मरै सतगुर कै भाणै॥[10]

अपने अंदर से हौंमैं और मैं-मेरी मिटाकर द्वैत में से एकता में आ जाओ। मनमुख मूर्ख है, इसलिए उसके लिए संसार लोहे की तरह कठोर है। परंतु शब्द की कमाई से यह लोहा भी खाया जा सकता है। अंदर, बाहर, यहाँ और वहाँ एक परमात्मा है। सतगुरु के भाणे में चलने से हौंमैं और मैं-मेरी की अग्नि बुझ जाती है।

योगी:

सो सबद का कहा वास कथीअले जित तरीऐ भवजल संसारो॥
त्रै सत अंगुल वाई कहीऐ तिस कहो कवन अधारो॥
बोलै खेलै असथिर होवै किउ कर अलख लखाए॥[11]

भवजल से पार करनेवाला शब्द कहाँ रहता है? प्राणों का आधार पवन है, शब्द का आधार क्या है? वह कौन है जो हमारे अंदर बोलता और खेलता है और वह कैसे स्थिर हो और अलख प्रभु को कैसे लखा जाए?

गुरु नानक:

सुण सुआमी सच नानक प्रणवै अपणे मन समझाए॥
गुरमुख सबदे सच लिव लागै कर नदरी मेल मिलाए॥
आपे दाना आपे बीना पूरै भाग समाए॥
सो सबद कउ निरंतर वास अलखं जह देखा तह सोई॥
पवन का वासा सुंन निवासा अकल कला धर सोई॥
नदर करे सबद घट मह वसै विचहो भरम गवाए॥
तन मन निरमल निरमल बाणी नामो मंन वसाए॥
सबद गुरू भव सागर तरीऐ इत उत एको जाणै॥
चिहन वरन नही छाइआ माइआ नानक सबद पछाणै॥
त्रै सत अंगुल वाई अउधू सुंन सच आहारो॥
गुरमुख बोलै तत बिरोलै चीनै अलख अपारो॥

त्रै गुण मेटै सबद वसाए ता मन चूकै अहंकारो॥
अतंर बाहर एको जाणै ता हर नाम लगै पिआरो॥
सुखमना इड़ा पिंगुला बूझै जा आपे अलख लखाए॥
नानक तिहु ते ऊपर साचा सतगुर सबद समाए॥[12]

हे स्वामी, तू सुन, मैं सच बताता हूँ कि मैंने अपने मन को कैसे समझाया? मैंने सतगुरु द्वारा दिए गए शब्द से लिव लगाई और उसकी कृपा से मेरा हरि से मिलाप हो गया। इस प्रकार मैं दाना-बीना बन गया अर्थात् सब कुछ देखने व समझने के योग्य हो गया। पूर्ण भाग्य से मैं प्रभु में समा गया। वह शब्द सर्वव्यापक है। यह उस परमात्मा की कलारहित कला का चमत्कार है कि जैसे पवन दिखाई नहीं देता परंतु हर जगह अनुभव किया जाता है, उसी तरह वह शब्द अलख है परंतु हर जगह व्याप्त है।

जब परमात्मा की दया होती है तो वह सर्वव्यापक शब्द अपने अंदर ही मिल जाता है, जिसके द्वारा सब भ्रमों का नाश हो जाता है। उस शब्द यानी नामरूपी वाणी के मन में बसने से तन व मन दोनों निर्मल हो जाते हैं। इस प्रकार शब्द-स्वरूपी गुरु के सहारे भवसागर को तरा जाता है, फिर मनुष्य-लोक और देवलोक में एक प्रभु दिखाई देने लगता है। उस निराकार परमेश्वर का न कोई रूपरंग है, न जाति-पाँति है, न आकार है, वह शब्द द्वारा पहचाना जाता है।

पवन और प्राणों का आधार वह परमात्मा है। गुरुमुख उस सच का असली ज्ञान देता है जिसको उसने अपने अंदर बिलोकर अर्थात् अभ्यास करके प्राप्त किया और जिससे उसने अपने अंदर उस अलख, अपार परमात्मा को पहचाना है। तीनों गुणों को मिटाकर शब्द को मन में बसानेवाला अहंकार का नाश कर लेता है। फिर उसको अंदर और बाहर एक ही प्रभु दिखाई देता है और उसका प्रभु के नाम से सच्चा प्यार हो जाता है। वह अलख को लख लेता है। वह इड़ा, पिंगला और सुषुम्ना तीनों का भेदी हो जाता है। वह प्रभु इन तीनों से परे है और हम पूरे सतगुरु के शब्द द्वारा ही उसमें समा सकते हैं।

योगी कुछ अन्य प्रश्न भी पूछते हैं: मन और प्राणों का वास कहाँ है और चंचल मन को स्थिर करनेवाला शब्द कहाँ बसता है? गुरु साहिब उत्तर देते हैं कि हौंमैं का नाश सतगुरु की दया से होता है, मन सतगुरु की दया से निज घर पहुँचकर निश्चल होता है और सतगुरु की प्राप्ति परमात्मा की दया-मेहर से होती है।

योगी पूछते हैं: स्वयं की और उस परमात्मा की पहचान कैसे हो? चाँद के घर सूर्य का प्रवेश कैसे हो अर्थात् ठंडे और अँधेरे मन में ज्ञान का तेज और प्रकाश कैसे आए?

गुरु साहिब कहते हैं कि सतगुरु की दया से हौंमैं का नाश होता है, सहज अवस्था की प्राप्ति होती है, मन निश्चल हो जाता है और मन तथा आत्मा शब्दरूपी सूर्य के तेज और प्रकाश से भर जाते हैं। प्राणों का निवास नाभि-कमल में है और शब्द का निवास अपने निज घर में है। शब्द के प्रकट होने से तीनों लोकों का बोध हो जाता है। जब हृदय प्रभुरूपी प्रीतम के प्रेम और विरह से भर जाता है तो इसमें संसार की तृष्णाओं के लिए कोई स्थान नहीं रहता। ऐसे विरले जीव हैं जिनको अनहद शब्द का ज्ञान है और जिस भी भाग्यशाली जीव को यह ज्ञान प्राप्त होता है, पूरे सतगुरु द्वारा होता है।

योगी कहते हैं: यदि हृदय और शरीर न होता तो मन कहाँ होता? यदि शरीर न होता तो शब्द कहाँ निवास करता? स्थूल शरीर न होता तो ब्रह्म का ज्ञान कैसे प्राप्त होता? और निराकार, अरूप व अलख प्रभु को कैसे लखा जा सकता? गुरु साहिब उत्तर देते हैं कि परमात्मा के नाम में लीन रहने से मन दुनिया से निर्लेप हो जाता है और हर जगह एक ही परमात्मा का नूर दिखाई देने लगता है। यदि शरीर और हृदय न होता तो मन निर्लेप होकर सुन्न में समा जाता। नाभि-कमल न होता तो प्राण परमेश्वर की लिव में लीन अपने घर समा जाते। यदि कोई रूप, कोई आकार न होता तो शब्द निराकार में लीन हो जाता। यदि धरती और आकाश न भी होते तो भी वह परमात्मा त्रिलोकी का नूर बना रहता और सब रंग, रूप आकार और भेष शब्द में लीन हो जाते। केवल वह परमात्मा ही पूर्ण है और वह अकथनीय है।

योगी पूछते हैं: सृष्टि अस्तित्व में कैसे आई और दुःखों का अंत कैसे हो सकता है? गुरु साहिब कहते हैं कि जीव के सृष्टि का अंग बने रहने का कारण हौंमैं है। शब्द से लिव का टूट जाना दुःख का मूल कारण है। सतगुरु के मत पर चलकर शब्द में जुड़ने से हौंमैं का नाश हो जाता है। शब्द के अभ्यास से तन और मन निर्मल हो जाते हैं और जीव परमात्मा से मिलने के योग्य बन जाता है। शब्द ही जीव को संसार से मोड़ सकता है और शब्द ही उसको परमेश्वर से जोड़ सकता है। शब्द ही सुरत को परमात्मा से जोड़नेवाला सच्चा योग है। परंतु शब्द का अभ्यास करनेवाले जीव विरले हैं। यह अभ्यास केवल सतगुरु द्वारा हो सकता है, क्योंकि केवल सतगुरु ही शब्द को प्रकट कर सकता है। सतगुरु की दया से मन परमात्मा के रंग में रँग जाता है और वापस निज घर पहुँच जाता है। सच्चे योग की युक्ति सच्चे सतगुरु से प्राप्त होती है। मनमुख कभी भी चौरासी से मुक्ति प्राप्त नहीं कर सकता, उसका कभी परमात्मा से मिलाप नहीं हो सकता। वह सदा हौंमैं का शिकार रहता है, जीवन की बाज़ी हार जाता है और सदा दुःखों की मार खाता है। इसके विपरीत, गुरुमुख हौंमैं को मारकर मन को जीत लेता है। उसके अंदर परमात्मा का वास हो जाता है। वह सारी सृष्टि का मालिक बन जाता है। काल या यमदूत उसको डरा नहीं सकते और वह पूरे मान-सम्मान के साथ परमात्मा की दरगाह में जाता है। गुरु साहिब सतगुरु की महिमा करते हैं और उसका यश गाते हैं, क्योंकि सतगुरु के बिना न किसी को शब्द (नाम) का भेद मिलता है, न ही दुःखों से छुटकारा होता है और न ही परमात्मा से मिलाप होता है।

योगी:

इह मन मैगल कहा बसीअले कहा बसै इह पवना॥
कहा बसै सो सबद अउधू ता कउ चूकै मन का भवना॥[13]

मनरूपी हाथी, प्राणरूपी पवन और शब्द का निवास कहाँ है?

गुरु नानक:

नदर करे ता सतगुर मेले ता निज घर वासा इह मन पाए॥
आपै आप खाए ता निरमल होवै धावत वरज रहाए॥[14]

परमात्मा की दया से सतगुरु मिलता है और सतगुरु के मिलाप से मन निज घर में वास पाता है। हौंमैं को दूर करने से मन निर्मल और निश्चल होकर अपने घर बैठता है।

योगी:

किउ मूल पछाणै आतम जाणै किउ ससि घर सूर समावै॥[15]

अपने मूल और आत्मा की पहचान कैसे हो? चंद्र के घर सूर्य कैसे समाए?*

गुरु नानक:

गुरमुख हउमै विचहो खोवै तउ नानक सहज समावै॥
इह मन निहचल हिरदै वसीअले गुरमुख मूल पछाण रहै॥
नाभि पवन घर आसण बैसै गुरमुख खोजत तत लहै॥
सो सबद निरंतर निज घर आछै त्रिभवण जोत सो सबद लहै॥
खावै दूख भूख साचे की साचे ही त्रिपतास रहै॥
अनहद बाणी गुरमुख जाणी बिरलो को अरथावै॥
नानक आखै सच सुभाखै सच रपै रंग कबहू न जावै॥[16]

जब सतगुरु द्वारा हौंमैं का नाश कर लिया जाता है तो सहज की प्राप्ति हो जाती है। इस तरह मन निश्चल हो जाता है और मूल अर्थात् परमात्मा की पहचान हो जाती है। जब प्राण अपने घर (नाभि) में समा

* चंद्र स्वयं ठंडा और प्रकाशहीन है, इसको सूर्य से ही तेज और प्रकाश की प्राप्ति होती है। इसी तरह मूल रूप से मन भी ठंडा और अंधकारपूर्ण है। जब यह शब्द के जलाल से भरपूर हो जाता है तो इसमें तेज और प्रकाश दोनों आ जाते हैं।

जाएँ अर्थात् एकाग्रता की प्राप्ति हो जाए तो सतगुरु की दया से सत्य का ज्ञान हो जाता है। अंदर ही सर्वव्यापक शब्द का अनुभव हो जाता है और तीनों लोकों की ज्योति (शब्द यानी परमात्मा) के दर्शन होने शुरू हो जाते हैं। सच्चे प्रभु की भूख, दुःखों को खा जाती है और सच्चे प्रभु के प्रेम से मन की तृप्ति हो जाती है। अनहद वाणी (शब्द) का सतगुरु से ही पता चलता है, परंतु विरले लोगों को ही इस भेद की प्राप्ति होती है। नानक कहते हैं कि यह सच है कि नाम का चढ़ा रंग कभी नहीं उतरता।

योगी:

जा इह हिरदा देह न होती तउ मन कैठै रहता॥
नाभि कमल असथंभ न होतो ता पवन कवन घर सहता॥
रूप न होतो रेख न काई ता सबद कहा लिव लाई॥
रकत बिंद की मड़ी न होती मित कीमत नही पाई॥
वरन भेख असरूप न जापी किउ कर जापस साचा॥[17]

हृदय और देह न होते तो मन किस जगह रहता? नाभि-कमल का कोई सहारा न होता तो श्वास या प्राण कहाँ ठहरते। कोई रूपरंग न होता तो शब्द कहाँ ठहरता? रक्त-बिंदु (माता के ख़ून और पिता के वीर्य) से बनी देह न होती तो परमात्मा के महत्त्व का पता कैसे चलता? यदि उसका रंग, रूप, भेष दिखाई न देता तो उसे कैसे जाना जा सकता था?

गुरु नानक:

नानक नाम रते बैरागी इब तब साचो साचा॥
हिरदा देह न होती अउधू तउ मन सुंन रहै बैरागी॥
नाभि कमल असथंभ न होतो ता निज घर बसतउ पवन अनरागी॥
रूप न रेखिआ जात न होती तउ अकुलीण रहतउ सबद सो सार॥
गउन गगन जब तबह न होतउ त्रिभवण जोत आपे निरंकार॥

वरन भेख असरूप सो एको एको सबद विडाणी॥
साच बिना सूचा को नाही नानक अकथ कहाणी॥[18]

जो नाम के रंग में रँगे गए, वे सच्चे वैरागी बन गए। उनको अब भी और फिर भी अर्थात् हमेशा ही वह सच्चा हर स्थान पर भरपूर दिखाई देता है। हे योगी! यदि शरीर और हृदय न होता तो मन सुन्न में समा जाता। यदि नाभि-कमल का आसरा न होता तो प्राण (वन) खिंच जाते और अपने निज घर में समा जाते।

जब रंग, रूप, रेख, जाति आदि नहीं थे तो शब्द उस हरि में ठहरा हुआ था और शब्द ही उस हरि का सार था जिसकी कोई जाति या कुल नहीं है। जब धरती और आकाश नहीं थे तब तीनों लोकों की ज्योति वह निराकार प्रभु स्वयं था। उस दशा में जब कोई रंग, रूप, रेख नहीं थे तो वह आश्चर्यमय शब्द ही भरपूर था। उस परमात्मा यानी शब्द के बिना कोई निर्मल नहीं हो सकता और परमात्मा (शब्द) वह अकथ कथा है, जिसका वर्णन नहीं हो सकता।

योगी:

कित कित बिध जग उपजै पुरखा कित कित दुख बिनस जाई॥[19]

संसार के जीवों का जन्म कैसे होता है और दुःखों का अंत कैसे होता है?

गुरु नानक:

हउमै विच जग उपजै पुरखा नाम विसरिऐ दुख पाई॥
गुरमुख होवै सो गिआन तत बीचारै हउमै सबद जलाए॥
तन मन निरमल निरमल बाणी साचै रहै समाए॥
नामे नाम रहै बैरागी साच रखिआ उर धारे॥
नानक बिन नावै जोग कदे न होवै देखहो रिदै बीचारे॥
गुरमुख साच सबद बीचारै कोए॥ गुरमुख सच बाणी परगट होए॥

गुरमुख मन भीजै विरला बूझै कोए॥ गुरमुख निज घर वासा होए॥
गुरमुख जोगी जुगत पछाणै॥ गुरमुख नानक एको जाणै॥
बिन सतगुर सेवे जोग न होई॥ बिन सतगुर भेटे मुकत न कोई॥
बिन सतगुर भेटे नाम पाइआ न जाए॥
बिन सतगुर भेटे महा दुख पाए॥
बिन सतगुर भेटे महा गरब गुबार॥ नानक बिन गुर मुआ जनम हार॥
गुरमुख मन जीता हउमै मार॥ गुरमुख साच रखिआ उर धार॥
गुरमुख जग जीता जमकाल मार बिदार॥ गुरमुख दरगह न आवै हार॥
गुरमुख मेल मिलाए सो जाणै॥ नानक गुरमुख सबद पछाणै॥
सबदै का निबेड़ा सुण तू अउधू बिन नावै जोग न होई॥
नामे राते अनदिन माते नामै ते सुख होई॥
नामै ही ते सभ परगट होवै नामे सोझी पाई॥
बिन नावै भेख करह बहुतेरे सचै आप खुआई॥
सतगुर ते नाम पाईऐ अउधू जोग जुगत ता होई॥
कर बीचार मन देखहो नानक बिन नावै मुकत न होई॥[20]

जीव हौंमैं को लेकर संसार में जन्म लेता है और नाम को भुलाकर दुःख पाता है। जो गुरु की मति पर चलता हुआ परमतत्त्व का ज्ञानी बनता है, वह शब्द द्वारा हौंमैं का नाश कर लेता है। शब्दरूपी निर्मल वाणी से जुड़कर उसका तन-मन निर्मल हो जाता है और सदा के लिए उस सच्चे परमात्मा में समा जाता है। वह नाम (शब्द) द्वारा नाम में समाकर संसार से निर्लेप हो जाता है और उस सच्चे परमात्मा को अपने अंतर में प्रकट कर लेता है। इस बात पर अच्छी तरह विचार करके देख लें कि नाम के बिना कभी भी सच्चा योग यानी परमात्मा से मिलाप और संसार से वैराग्य प्राप्त नहीं हो सकता।

कोई विरला जीव ही सतगुरु के द्वारा बख़्शे हुए शब्द की कमाई करता है और सतगुरु के द्वारा ही सच्ची वाणी (शब्द) को प्रकट करता है। ऐसे जीव बिरले हैं जिनका मन सतगुरु के द्वारा परमात्मा के प्यार के

रंग में रँग जाता है। सतगुरु के द्वारा ही अपने निज घर में निवास मिलता है, सतगुरु के द्वारा ही उस परमात्मा का बोध (ज्ञान) होता है जो एक है, सर्वव्यापक है और सबका मूल है।

सतगुरु की सेवा के बिना योग प्राप्त नहीं होता। गुरु के मिलाप के बिना मुक्ति नहीं मिलती। सतगुरु से मिले बिना नाम नहीं मिलता और नाम न मिलने के कारण भयानक दु:ख सहने पड़ते हैं।

सतगुरु के बिना अहंकार का अँधेरा छाया रहता है। सतगुरु के बिना मनुष्य जीवन की बाज़ी हार जाता है और जीव अंधकार में ही यहाँ से चला जाता है।

इसके विपरीत गुरु की मति पर चलनेवाला हौंमैं को मारकर मन को जीत लेता है। वह सच्चे प्रभु को अपने अंदर बसा लेता है। गुरु की मति पर चलनेवाला काल को मार लेता है और यम को जीत लेता है। गुरु की मति पर चलनेवाला प्रभु की दरगाह में सदैव स्वीकार होता है। जिसको सतगुरु परमात्मा से मिलाता है, केवल वही परमात्मा को जान सकता है। शब्द की पहचान केवल सतगुरु द्वारा ही हो सकती है।

हे योगी! तू शब्द के बारे में अंतिम निर्णय सुन और वह यह है कि शब्द (नाम) के बिना सच्चा योग असंभव है। जो नाम के रंग में रँगे जाते हैं उनको दिन-रात नाम का नशा चढ़ा रहता है और उनको नाम से परम आनंद की प्राप्ति होती है। उनको नाम से ही सच्चा ज्ञान मिलता है और नाम से ही यह पता चलता है कि जो कुछ है सब नाम से ही पैदा हुआ है। जो लोग नाम के बिना अन्य भेषों के भ्रम में पड़े हुए हैं, ऐसा समझें कि वे उस परमात्मा के भाणे अथवा मौज से ही परेशान हो रहे हैं। परंतु जब सच्चे सतगुरु से नाम का भेद मिल जाता है तो सच्चा योग मिल जाता है। हे योगियो! अच्छी तरह विचार करके देख लो, नाम के बिना मुक्ति नहीं मिल सकती।

पहरे

चार अवस्थाएँ

भारत में जीवन को चार भागों में बाँटने की परंपरा चली आ रही है। ये चार भाग हैं: बाल्यावस्था, युवावस्था, प्रौढ़ावस्था तथा वृद्धावस्था। गुरु साहिब ने जीवन की चार अवस्थाओं की रात के चार पहरों से तुलना की है और हर पहर के वर्णन में गूढ़ रूहानी रहस्य भर दिए हैं। गुरु साहिब जीव को उपदेश देते हैं कि संसार में वणज (व्यापार) करने के लिए आए मित्र! तू जीवनरूपी रात्रि के पहले पहर में प्रभु के हुक्म से माता के गर्भ में आया। तू वहाँ उलटा लटका हुआ तपस्या करता था और मालिक के आगे विनती करता था। तेरी लिव उस मालिक से लगी हुई थी और तेरा ध्यान उसमें जुड़ा हुआ था। तू मर्यादा से उलट, नंगा संसार में आया और अंतिम समय, नंगा ही यहाँ से जाएगा। तुझे यहाँ माथे पर लिखे लेख भोगने पड़ेंगे।

दूसरे पहर यानी संसार में जन्म लेते ही तू उस मालिक का ध्यान भूल गया। जिस प्रकार कृष्ण यशोदा के घर लाड़-प्यार से खेलाया गया और माता ने कहना शुरू कर दिया, "यह मेरा पुत्र है।" परंतु हे मूढ़ मन, तू सावधान हो जा, क्योंकि अंत समय तेरा कोई नहीं होगा।

तीसरे पहर यानी जवानी की अवस्था में धन कमाने और विषय-भोग में चित्त लग गया। माया, धन और जवानी की मदमस्ती में अपना मार्ग भटक गया। धर्मकर्म कुछ नहीं किया, बल्कि अमूल्य जन्म बरबाद करता रहा।

चौथे पहर यानी अंतिम अवस्था में जीवनरूपी फ़सल काटनेवाला यम खेत में आ गया। किसी को पता नहीं चला कि वह जीव को पकड़कर

किधर ले गया। आसपास इकट्ठे हुए लोग झूठा रोना रोते हैं। जीव पल भर में सबसे पराया हो जाता है।

इस प्रकार बचपन में वह दूध पीता है, खेलता है। माता-पिता इसे बहुत प्यार करते हैं और वह माया-मोह में फँस जाता है। फलस्वरूप जीव राम-नाम को भुलाकर दूसरों के अर्थात् संसार के प्रेम में डूब जाता है। जवानी में शराब और यौवन के नशे में चूर रहता है। वह दिन-रात काम में फँसा रहता है, उसके मन में प्रभु का नाम नहीं आता। फिर ऐसी अवस्था भी आ गई कि शरीररूपी सरोवर पर सफ़ेद बालरूपी हंस उतर आए। ऐसे में यौवन जा रहा है, बुढ़ापे की जीत हो रही है और प्रतिदिन आयु घटती जा रही है। जब बुद्धि और सूझबूझ चली जाती है, फिर अपने अवगुणों पर पछताता है। बुढ़ापे के कारण शरीर कमज़ोर पड़ जाता है। अब उसकी आँखें अंधी होने लगीं, जिह्वा का स्वाद भी जाता रहा और परिश्रम करने योग्य भी न रहा। जैसे फ़सल पकने पर तड़क जाती है और दाने बिखर जाते हैं, इसी प्रकार पका हुआ शरीर चटककर टूट जाता है, नष्ट हो जाता है। इस तरह से आने और चले जानेवाले शरीर पर क्या अभिमान किया जाए? इसलिए हे प्राणी! सतगुरु द्वारा शब्द की पहचान कर।

जब श्वासों का अंत आ जाता है और ज़ालिम बुढ़ापे का भार लद जाता है। सारी उमर रत्तीभर भी गुण इकट्ठे नहीं किए, बल्कि पाप किए जो अब साथ आएँगे। गुरु साहिब जीव को समझाते हैं, जो गुणों को समझता है और संयम से चलता है, वह जन्म-मरण की चोटें नहीं खाता। काल और यम उसके निकट नहीं पहुँच सकते। वह प्रेम-भक्ति के सहारे भवसागर से पार हो जाता है। वह यहाँ से मान और आदर के साथ जाता है, सहज में समा जाता है और उसके सब दुःख मिट जाते हैं। दरअसल जो कोई जीव इस काल और माया के जाल से यानी जन्म-मरण के दुःखों से छुटकारा पाता है, वह केवल सतगुरु की कृपा से पाता है।

मनुष्य-जीवन रात्रि के समान है। मनुष्य को चाहिए कि प्रातःकाल के प्रकाश में जागने का प्रयत्न करे ताकि उसके सभी दुःखों का अंत हो जाए। परंतु इस मंज़िल पर पहुँचने के लिए बहुत प्रयत्न करने की आवश्यकता है।

गुरु साहिब ज़ोरदार शब्दों में मनुष्य की दुःखमयी अवस्था का वर्णन करते हैं। इस अज्ञानी का बचपन तो खेलने-कूदने में बीत जाता है, जवानी विषय-विकारों, ऐशो इशरत में व्यतीत हो जाती है, प्रौढ़ावस्था संसार की धन-दौलत इकट्ठी करने में बरबाद हो जाती है और बुढ़ापा रोगों के नाम लग जाता है। इस प्रकार मनुष्य-जन्म का अमूल्य अवसर व्यर्थ के धंधों में नष्ट हो जाता है। माँ के गर्भ से तो यह दृढ़ निश्चय के साथ निकला था कि अपनी शक्ति व्यर्थ के कार्यों में नष्ट नहीं करेगा और पल-पल परमात्मा की भक्ति और उसके प्रेम में रहेगा, परंतु यहाँ आकर यह किए हुए सभी वायदे भूल गया।

इन पहरों का मुख्य विषय यही है कि जीव व्यर्थ के कर्मों में पड़कर संसार में आने का मूल उद्देश्य भुला देता है। इस जीवन का वास्तविक उद्देश्य परमात्मा की भक्ति द्वारा जन्म-मरण यानी आवागमन के बंधनों को तोड़कर परमात्मा से मिलाप करना है, परंतु जीव इस ओर ध्यान नहीं देता। यदि इस अज्ञानी का सतगुरु से मिलाप हो जाए तो इसे सच्ची भक्ति की युक्ति का ज्ञान हो जाए और इसका जीवन सुधर जाए। भक्ति की युक्ति केवल पूरे सतगुरु से ही मिल सकती है, क्योंकि वह स्वयं मंज़िल पर पहुँच चुका है और वही दूसरों की भी अमली सहायता कर सकने में समर्थ है:

पहिलै पहरै रैण कै वणजारिआ मित्रा हुकम पइआ गरभास॥
उरध तप अंतर करे वणजारिआ मित्रा खसम सेती अरदास॥
खसम सेती अरदास वखाणै उरध धिआन लिव लागा॥
ना मरजाद आइआ कल भीतर बाहुड़ जासी नागा॥
जैसी कलम वुड़ी है मसतक तैसी जीअड़े पास॥
कहो नानक प्राणी पहिलै पहरै हुकम पइआ गरभास॥
दूजै पहरै रैण कै वणजारिआ मित्रा विसर गइआ धिआन॥
हथो हथ नचाईऐ वणजारिआ मित्रा जिउ जसुदा घर कान॥
हथो हथ नचाईऐ प्राणी मात कहै सुत मेरा॥

चेत अचेत मूड़ मन मेरे अंत नही कछु तेरा॥
जिन रच रचिआ तिसह न जाणै मन भीतर धर गिआन॥
कहो नानक प्राणी दूजै पहरै विसर गइआ धिआन॥
तीजै पहरै रैण कै वणजारिआ मित्रा धन जोबन सिउ चित॥
हर का नाम न चेतही वणजारिआ मित्रा बधा छुटह जित॥
हर का नाम न चेतै प्राणी बिकल भइआ संग माइआ॥
धन सिउ रता जोबन मता अहिला जनम गवाइआ॥
धरम सेती वापार न कीतो करम न कीतो मित॥
कहो नानक तीजै पहरै प्राणी धन जोबन सिउ चित॥
चउथै पहरै रैण कै वणजारिआ मित्रा लावी आइआ खेत॥
जा जम पकड़ चलाइआ वणजारिआ मित्रा किसै न मिलिआ भेत॥
भेत चेत हर किसै न मिलिओ जा जम पकड़ चलाइआ॥
झूठा रुदन होआ दुोआलै खिन मह भइआ पराइआ॥
साई वसत परापत होई जिस सिउ लाइआ हेत॥
कहो नानक प्राणी चउथै पहरै लावी लुणिआ खेत॥[1]

पहिलै पहरै रैण कै वणजारिआ मित्रा बालक बुध अचेत॥
खीर पीऐ खेलाईऐ वणजारिआ मित्रा मात पिता सुत हेत॥
मात पिता सुत नेह घनेरा माइआ मोह सबाई॥
संजोगी आइआ किरत कमाइआ करणी कार कराई॥
राम नाम बिन मुकत न होई बूडी दूजै हेत॥
कहो नानक प्राणी पहिलै पहरै छूटहिगा हर चेत॥
दूजै पहरै रैण कै वणजारिआ मित्रा भर जोबन मै मत॥
अहिनिस काम विआपिआ वणजारिआ मित्रा अंधुले नाम न चित॥
राम नाम घट अंतर नाही होर जाणै रस कस मीठे॥
गिआन धिआन गुण संजम नाही जनम मरहुगे झूठे॥
तीरथ वरत सुच संजम नाही करम धरम नही पूजा॥
नानक भाए भगति निसतारा दुबिधा विआपै दूजा॥

तीजै पहरै रैण कै वणजारिआ मित्रा सर हंस उलथड़े आए॥
जोबन घटै जरूआ जिणै वणजारिआ मित्रा आव घटै दिन जाए॥
अंत काल पछुतासी अंधुले जा जम पकड़ चलाइआ॥
सभ किछ अपुना कर कर राखिआ खिन मह भइआ पराइआ॥
बुध विसरजी गई सिआणप कर अवगण पछुताए॥
कहो नानक प्राणी तीजै पहरै प्रभ चेतहो लिव लाए॥
चउथै पहरै रैण कै वणजारिआ मित्रा बिरध भइआ तन खीण॥
अखी अंध न दीसई वणजारिआ मित्रा कंनी सुणै न वैण॥
अखी अंध जीभ रस नाही रहे पराकउ ताणा॥
गुण अंतर नाही किउ सुख पावै मनमुख आवण जाणा॥
खड़ पकी कुड़ भजै बिनसै आए चलै किआ माण॥
कहो नानक प्राणी चउथै पहरै गुरमुख सबद पछाण॥
ओड़क आइआ तिन साहिआ वणजारिआ मित्रा जर जरवाणा कंन॥
इक रती गुण न समाणिआ वणजारिआ मित्रा अवगण खड़सन बंन॥
गुण संजम जावै चोट न खावै ना तिस जंमण मरणा॥
काल जाल जम जोह न साकै भाए भगति भै तरणा॥
पत सेती जावै सहज समावै सगले दूख मिटावै॥
कहो नानक प्राणी गुरमुख छूटै साचे ते पत पावै॥[2]

पटी

पटी, बावन अखरी या सीहरफ़ी ऐसा काव्य-रूप है जिसमें कवि वर्णमाला के हर वर्ण को आधार बनाकर अपने विचार प्रकट करता है। यह पटी पंजाबी वर्णमाला के पैंतीस वर्णों के अनुसार है। कहा जाता है कि गुरु साहिब ने यह पटी छोटी आयु में ही अपने स्कूल की तख़्ती पर लिखी थी।* पटी में गुरु साहिब के उपदेश के कई आवश्यक अंगों पर प्रकाश डाला गया है जिनमें परमात्मा का स्वरूप, सतगुरु की आवश्यकता, कर्म और आवागमन के सिद्धांत और जन्म-मरण से मुक्ति प्राप्त करने का साधन आदि प्रमुख हैं। नीचे दिए जा रहे कुछ चुने हुए अंशों से पटी के मूल भाव के विषय में अनुमान लगाया जा सकेगा:

ससै सोए स्रिसट जिन साजी सभना साहिब एक भइआ॥
सेवत रहे चित जिन्ह का लागा आइआ तिन्ह का सफल भइआ॥
मन काहे भूले मूड़ मना॥
जब लेखा देवह बीरा तउ पड़िआ॥ रहाउ॥ ...
ङंङै ङिआन बूझै जे कोई पड़िआ पंडित सोई॥ ...
सरब जीआ मह एको जाणै ता हउमै कहै न कोई॥ ...
घघै घाल सेवक जे घालै सबद गुरू कै लाग रहै॥
बुरा भला जे सम कर जाणै इन बिध साहिब रमत रहै॥ ...

* पटी के वर्णों का क्रम आजकल की तरह नहीं है।

छछै छाइआ वरती सभ अंतर तेरा कीआ भरम होआ॥
भरम उपाए भुलाईअन आपे तेरा करम होआ तिन्ह गुरू मिलिआ॥
झझै झूर मरहो किआ प्राणी जो किछ देणा सो दे रहिआ॥ ...
ञंञै नदर करे जा देखा दूजा कोई नाही॥
एको रव रहिआ सभ थाई एक वसिआ मन माही॥ ...
ढढै ढाह उसारै आपे जिउ तिस भावै तिवै करे॥
कर कर वेखै हुकम चलाए तिस निसतारे ता कउ नदर करे॥ ...
ददै दोस न देऊ किसै दोस करंमा आपणिआ॥
जो मै कीआ सो मै पाइआ दोस न दीजै अवर जना॥
धधै धार कला जिन छोडी हर चीजी जिन रंग कीआ॥
तिस दा दीआ सभनी लीआ करमी करमी हुकम पइआ॥ ...
फफै फाही सभ जग फासा जम कै संगल बंध लइआ॥
गुर परसादी से नर उबरे जे हर सरणागत भज पइआ॥[1]

बारह माहा

किसी समय भारत के कवियों में बारह माहा लिखने की आम प्रथा थी। वे प्रकृति के दृश्यों को आधार बनाकर मनुष्य के मन के उतार-चढ़ाव को पेश करते थे। वे प्रकृति के दृश्यों और प्रकृति के विभिन्न अंगों की सहायता से अपना उपदेश प्रस्तुत करते थे। गुरु साहिब की वाणी के बारह माहा में एक प्रमुख विशेषता यह है कि हर महीने को मनुष्य-जन्म से उपमा देकर यह समझाने का प्रयत्न किया है कि इस क़ीमती अवसर को व्यर्थ नहीं खोना चाहिए। इस प्रकार उन्होंने हर महीने के प्रकृति के दृश्यों और उस महीने की विशेष ऋतु को अपने रूहानी उपदेश का साधन बनाया है। गुरु नानक साहिब के बारह माहा की एक बड़ी विशेषता यह भी है कि इसमें एक ओर प्रियतम (परमात्मा) से बिछुड़ी विरहिणी (आत्मा) की पीड़ा का भावमय और चित्ताकर्षक वर्णन किया है तो दूसरी ओर वियोग के दर्द की दवा और प्रियतम के मिलाप से होनेवाले आनंद का संकेत भी दिया है। वियोग और संयोग के सुहावने मेल के साथ तुखारी राग में रचे गए इस बारह माहा को संसार के सर्वोत्तम साहित्य में शामिल किया जाता है।

इस बारह माहा में से चार अलग-अलग ऋतुओं से जुड़े चार महीने यहाँ वर्णित किए गए हैं:

चेत

चेत में बसंत का सुहाना मौसम होता है। गुरु साहिब कहते हैं कि प्रकृति की शान अपने पूरे यौवन पर है। हर ओर फूल खिले हुए हैं। फूलों के चारों

ओर घूमते भँवरों में नए यौवन और नई आशा की मस्ती और सुंदरता है। इस सुंदर और सुहावने मौसम में मेरा प्रियतम परदेस चला गया है और जब तक प्रियतम घर नहीं आता मुझे चैन कैसे आ सकता है? विरह की पीड़ा से मेरा तन छलनी होता जा रहा है। कोयल आमों पर मीठे और सुहावने गीत गाती है और भँवरें फूलों के चारों ओर नाच रहे हैं परंतु मुझसे बिछुड़ने का दर्द नहीं सहा जाता। सारी सृष्टि ख़ुशियाँ मना रही है परंतु यह सब मेरे लिए मौत का सामान है। यदि मेरा प्रियतम भी घर आ जाए तो मुझे भी सच्चा सुख मिल जाए। गुरु साहिब ने सांकेतिक ढंग से यह विचार प्रकट किया है कि जीवात्मा को संसार के सब सुख व आराम क्यों न मिल जाएँ, जब तक उसका पति-परमेश्वर से मिलाप नहीं होता और उसके वियोग की पीड़ा दूर नहीं होती, उसे कभी भी सच्चा सुख और सच्ची शांति नसीब नहीं हो सकती। सुख जब भी मिलेगा, हरिरूपी वर के घर आने से ही मिलेगा – नानक चेत सहज सुख पावै जे हर वर घर धन पाए॥

चेत बसंत भला भवर सुहावड़े
बन फूले मंझ बार मै पिर घर बाहुड़े॥
पिर घर नही आवै धन किउ सुख पावै
बिरह बिरोध तन छीजै॥
कोकिल अंब सुहावी बोलै किउ दुख अंक सहीजै॥
भवर भवंता फूली डाली किउ जीवा मर माए॥
नानक चेत सहज सुख पावै जे हर वर घर धन पाए॥[1]

आसाढ़

चेत की सुहावनी बहार के विपरीत आषाढ़ का महीना बहुत ही दुःखदायी होता है। गुरु साहिब वर्णन करते हैं कि बहुत ख़राब मौसम है। तेज़ गर्मी पड़ रही है। धरती भट्ठी की तरह तप रही है। भट्ठी की तरह तपते सूर्य ने धरती का सारा रस (पानी) सुखा दिया है। परंतु यह सूखी और मुरझाई धरती फिर भी अपने मालिक की ओर से सौंपा गया कार्य किए जा रही है – *भी सो किरत न हारे।*

सूर्य का रथ आकाश में घूमता है और जीवात्मारूपी स्त्री सुख के लिए छाँह अथवा प्रीतम का सहारा ढूँढ़ती फिरती है। जो स्त्री पापों की गाँठ बाँध लेगी, उसे आगे जाकर भी दु:खों की मार खानी पड़ेगी। आगे जाकर सुख उस स्त्री को ही मिलेगा जो यहाँ से सच का दहेज लेकर जाएगी।

परंतु सच्चे प्रेमी के लिए कोई चारा नहीं है। जिस प्रियतम को अपना मन दे दिया, जिस प्रियतम से प्रीति कर ली है, अब जन्म-मरण और सुख-दु:ख भी उसके भाणे में ही भोगने हैं। गुरु साहिब बहुत सुंदर संकेत करते हैं कि यद्यपि प्रियतम के बिना परम सुख नहीं मिल सकता तो दु:खों के समय भी उसके सहारे की आवश्यकता है। परंतु जब तक मिलाप का अनुपम सुख नहीं मिलता, भाणे में रहते हुए और पापों से बचते हुए अपनी ओर से मिलाप के लिए प्रयत्न करते रहना चाहिए:

आसाड़ भला सूरज गगन तपै॥
धरती दूख सहै सोखै अगन भखै॥
अगन रस सोखै मरीऐ धोखै भी सो किरत न हारे॥
रथ फिरै छाइआ धन ताकै टीड लवै मंझ बारे॥
अवगण बाध चली दुख आगै सुख तिस साच समाले॥
नानक जिस नो इह मन दीआ मरण जीवण प्रभ नाले॥[2]

सावन

सावन का महीना वर्षा ऋतु के आगमन के सुहावने संदेश लेकर आता है। गर्मी की तपती भट्ठियाँ बुझ जाती हैं। सूखी हुई धरती वर्षा के ठंडे जल से अपनी प्यास बुझाती है। जब जल से भरे बादल आते हैं तो हर ओर ख़ुशियाँ फैल जाती हैं। परंतु इस सुहावने मौसम में प्रियतम से बिछुड़ी हुई विरहिणी वियोग में तड़प रही है। बाहर की रंगीनियाँ और आमोद-प्रमोद उसके दर्द को और अधिक गहरा करते हैं। वह अकेली है। आसमान में चमकती हुई बिजलियाँ उसे डराती हैं। सूनी सेज उसे खाने को आती है। ऐसा जीना तो मौत से भी कहीं अधिक दु:खदायी है। उस प्यारे प्रियतम

के बिना न नींद आती है, न भूख लगती है और न ही सुंदर वस्त्र अच्छे लगते हैं। असली सुहागिन और पति को प्रिय वही है जो अपने प्रियतम के अंक में समा जाती है:

सावण सरस मना घण वरसह रुत आए॥
मै मन तन सहु भावै पिर परदेस सिधाए॥
पिर घर नही आवै मरीऐ हावै दामन चमक डराए॥
सेज इकेली खरी दुहेली मरण भइआ दुख माए॥
हर बिन नीद भूख कहो कैसी कापड़ तन न सुखावए॥
नानक सा सोहागण कंती पिर कै अंक समावए॥[3]

पौष

यह बर्फ़ीली ठंड का महीना है। जिस प्रकार सख़्त सर्दी के कारण वृक्ष और पौधे मुरझाकर सूख जाते हैं, उसी तरह प्रियतम के वियोग में विरहिणी आत्मा का भी शरीर और मन भी सूख जाता है। विरहिणी अपने प्रियतम के लिए तड़पती है क्योंकि उसके बिना उसे अपना जीवन ही व्यर्थ लगता है।

आगे गुरु साहिब का वर्णन रूहानी अर्थों से भरपूर है। आप कहते हैं कि संसार के जीवन का आधार परमात्मा, केवल सतगुरु की बताई विधि के अनुसार शब्द-अभ्यास द्वारा मिलता है। सृष्टि की चारों खानियों के सभी जीवों में उस एक ही प्रियतम का नूर है। उस जीवनदाता के मिलाप से ही सच्चा सुख मिल सकता है:

पोख तुखार पड़ै वण त्रिण रस सोखै॥
आवत की नाही मन तन वसह मुखे॥
मन तन रव रहिआ जगजीवन गुर सबदी रंग माणी॥
अंडज जेरज सेतज उतभुज घट घट जोत समाणी॥
दरसन देहो दइआपत दाते गत पावउ मत देहो॥
नानक रंग रवै रस रसीआ हर सिउ प्रीत सनेहो॥[4]

दखणी ओअंकार

रचना, परमात्मा, गुरु और मुक्ति

कहा जाता है कि गुरु साहिब ने दखणी ओअंकार नामक लंबी वाणी बनारस में फ़रमाई। इसके 54 बंद हैं और इसका प्रधान विषय रचना का स्वरूप और परमात्मा का यश है। इसमें से चार बंद भावार्थ सहित यहाँ दिए जा रहे हैं।

उस परमात्मा ने सहज में तीनों भुवनों की रचना की और वह स्वयं ही सारी त्रिलोकी का प्रकाश बन गया अर्थात् वह रचना रचकर इसके कण-कण में समा गया। सतगुरु की सहायता से रूहानी अभ्यास द्वारा ही यह भेद प्राप्त किया जा सकता है। जो अंतर में उस जगदीश से मिलाप कर लेता है, उसको भी यह ज्ञान प्राप्त हो जाता है कि परमात्मा के बिना सारा संसार माया का खेल है:

ससै सभ जग सहज उपाइआ तीन भवन इक जोती॥
गुरमुख वसत परापत होवै चुण लै माणक मोती॥
समझै सूझै पड़ पड़ बूझै अंत निरंतर साचा॥
गुरमुख देखै साच समाले बिन साचे जग काचा॥[1]

परमात्मा के प्रकाश से ही धरती और सागर में प्रकाश है। सतगुरु परमेश्वर का रूप है और परमेश्वर की तरह ही सारी त्रिलोकी में उसका सिक्का चलता है। परमात्मा सतगुरु का रूप धारण करके संसार में प्रकट

होता है और सतगुरु द्वारा ही जीव को निज घर वापस जाने की युक्ति का पता चलता है। गुरुमुख के अंदर निरंतर नाम यानी शब्दरूपी अमृत की वर्षा होती रहती है। वह सदा इसके रस में मग्न रहता है और कर्तापुरुष में समाकर उसका ही रूप हो जाता है:

ऊरम धूरम जोत उजाला॥ तीन भवण मह गुर गोपाला॥
ऊगविआ असरूप दिखावै॥ कर किरपा अपुनै घर आवै॥
ऊनव बरसै नीझर धारा॥ ऊतम सबद सवारणहारा॥
इस एके का जाणै भेउ॥ आपे करता आपे देउ॥[2]

जिसको अंतर में सच्चा ज्ञान प्राप्त हो जाता है, वह मन और इसके पाँच विकारों को जीत लेता है। उसका ध्यान नीचे इंद्रियों की ओर से हटकर शब्द की कमाई की ओर पलट जाता है। उसको हर स्थान पर परमात्मा का नूर दिखाई देता है। उसको तीनों लोकों और तीनों कालों में वह परमात्मा ही समाया हुआ दिखाई देता है।

परमात्मा ही दया करके जीव को मनुष्य का चोला बख़्शता है, जिसमें उस परमात्मा से मिलाप हो सकता है। मनुष्य का परम धर्म है कि उस कर्ता को मन से कभी न भुलाए। उसके नाम के रंग में रँगा हुआ जीव लोक और परलोक दोनों में सुख और शोभा पाता है:

उगवै सूर असुर संघारै॥ ऊचउ देख सबद बीचारै॥
ऊपर आद अंत तिहु लोए॥ आपे करै कथै सुणै सोए॥
ओह बिधाता मन तन दे॥ ओह बिधाता मन मुख सोए॥
प्रभ जगजीवन अवर न कोए॥ नानक नाम रते पत होए॥[3]

परमात्मा अकाल यानी कालरहित है। सब युगों में उसका ही प्रकाश है। वह न आता है, न जाता है। वह सदा निर्वैर है और किसी से द्वेष या घृणा नहीं करता। जो कुछ है उसके सहारे खड़ा है; वह मन और इंद्रियों

की पहुँच से परे है। केवल नाम (शब्द) के अभ्यास द्वारा ही पता चलता है कि परमात्मा ही सारी सृष्टि का आधार है। उसके सच्चे नाम के बिना कोई किसी हालत में भी मुक्ति प्राप्त नहीं कर सकता:

> जुग जुग थाप सदा निरवैर॥ जनम मरण नही धंधा धैर॥
> जो दीसै सो आपे आप॥ आप उपाए आपे घट थाप॥
> आप अगोचर धंधै लोई॥ जोग जुगत जगजीवन सोई॥
> कर आचार सच सुख होई॥ नाम विहूणा मुकत किव होई॥[4]

चुनी हुई वाणी

प्रमुख विषय

- परमात्मा
- सतगुरु
- शब्द
- कर्मकांड
- मन
- प्रेम

परमात्मा

भी तेरी कीमत ना पवै

कहा जाता है कि गुरु नानक साहिब ने श्रद्धा, कृतज्ञता और नम्रता के भाव में भीगा यह शब्द बेईं नदी के तट पर हुए परमात्मा से मिलाप के बाद की अवस्था में उच्चारण किया था। अनुमान लगाया जाता है कि जब आप समाधि की अवस्था में लगातार तीन दिन आनंदमग्न रहे तो आपने अनुभव किया कि परमात्मा और उसका नाम अथाह व अगाह है। आपने अनुभव किया कि चाहे मेरी करोड़ों वर्ष लंबी आयु हो जाए और मैं पल भर रुके बिना गुफा में बैठा निरंतर भक्ति करता रहूँ, तो भी उस प्रभु और उसके नाम की पूरी महिमा कर सकना और उसका अंत पा सकना असंभव है। वह निराकार है, उसका नाम अकथ है। केवल दूसरों के कहने और सुनने से ही उसकी बड़ाई का अनुमान लगा सकना असंभव है। वह कर्ता स्वयं ही दया करके अपना भेद दे, तभी उसका ज्ञान हो सकता है।

हम अनेक प्रकार के हठ कर्मों, तप, त्याग आदि से भी उस परमात्मा की और उसके नाम की थाह नहीं पा सकते। चाहे किसी को पक्षियों की तरह आसमान में उड़ने की और अन्न, पानी और हवा के बिना जीवित रहने की शक्ति क्यों न मिल जाए, फिर भी वह इन अद्‌भुत शक्तियों और अनेक प्रकार के दूसरे प्रयत्नों द्वारा, परमात्मा और उसके नाम का ज्ञान नहीं पा सकता।

गुरु साहिब कहते हैं कि चाहे मेरे पास लाखों मन काग़ज़ हों, इन काग़ज़ों पर लिखने के लिए स्याही से भरा समुद्र हो, मुझमें हवा की

रफ़्तार से लिखने की शक्ति हो और मुझे अनेक महान धर्मग्रंथों का पूरा ज्ञान प्राप्त हो जाए, तो भी मुझसे उस परमपिता परमात्मा और उसके नाम की महिमा नहीं लिखी जा सकेगी:

कोट कोटी मेरी आरजा पवण पीअण अपिआउ॥
चंद सूरज दुए गुफै न देखा सुपनै सउण न थाउ॥
भी तेरी कीमत ना पवै हउ केवड आखा नाउ॥
साचा निरंकार निज थाए॥
सुण सुण आखण आखणा जे भावै करे तमाए॥
कुसा कटीआ वार वार पीसण पीसा पाए॥
अगी सेती जालीआ भसम सेती रल जाउ॥
भी तेरी कीमत ना पवै हउ केवड आखा नाउ॥
पंखी होए कै जे भवा सै असमानी जाउ॥
नदरी किसै न आवऊ ना किछ पीआ न खाउ॥
भी तेरी कीमत ना पवै हउ केवड आखा नाउ॥
नानक कागद लख मणा पड़ पड़ कीचै भाउ॥
मसू तोट न आवई लेखण पउण चलाउ॥
भी तेरी कीमत ना पवै हउ केवड आखा नाउ॥[1]

तू दरीआउ दाना बीना

परमपिता परमात्मा अथाह समुद्र के समान है और जीव छोटी-छोटी मछलियों के समान हैं। एक तुच्छ मछली समुद्र की थाह कैसे पा सकती है? वह बेचारी समुद्र की लंबाई, चौड़ाई और गहराई कैसे जान सकती है?

परमात्मा सर्वव्यापक है। जिसको वह परमात्मा सर्वत्र दिखाई नहीं देता, वह उसी तरह घुटकर मर जाता है जिस प्रकार समुद्र में से निकली मछली तड़पकर मर जाती है। जीव अपनी मौत को मन से भुला देता है, परंतु जब यमदूत आकर उसका गला दबाते हैं तब वह परमात्मा को याद करता है। भला उस समय क्या हो सकता है?

जीव अज्ञानता के कारण परमात्मा को दूर समझता है। उसको यह पता नहीं कि वह मालिक अंदर बैठा मनुष्य की हर करतूत को देख रहा है। जीव अपने किए कर्मों से इनकार कैसे कर सकता है? गुरु साहिब नम्रतापूर्वक कहते हैं कि मैं उस साहिब से मिलने का अधिकारी नहीं हूँ, क्योंकि मैंने उसके नाम का ध्यान नहीं किया। परंतु मैं ख़ुशी-ख़ुशी उसका भाणा (रज़ा) मान लूँगा, क्योंकि मेरा उसके बिना कोई दूसरा सहारा नहीं है। आप कहते हैं कि मेरा तन, मन और धन उस सच्चे प्रियतम पर क़ुर्बान हैं जो हर स्थान पर रमा हुआ है और सब कुछ देखता व सुनता है। वह सारी सृष्टि का कर्ता है। जो कुछ हो रहा है, उसकी रज़ा, उसके हुक्म में हो रहा है:

तू दरीआउ दाना बीना मै मछुली कैसे अंत लहा॥
जह जह देखा तह तह तू है तुझ ते निकसी फूट मरा॥
न जाणा मेउ न जाणा जाली॥ जा दुख लागै ता तुझै समाली॥
तू भरपूर जानिआ मै दूर॥ जो कछु करी सो तेरै हदूर॥
तू देखह हउ मुकर पाउ॥ तेरै कंम न तेरै नाए॥
जेता देह तेता हउ खाउ॥ बिआ दर नाही कै दर जाउ॥
नानक एक कहै अरदास॥ जीउ पिंड सभ तेरै पास॥
आपे नेड़ै दूर आपे ही आपे मंझ मिआनो॥
आपे वेखै सुणे आपे ही कुदरत करे जहानो॥
जो तिस भावै नानका हुकम सोई परवानो॥[2]

प्रभु ही सच्चा राज़िक है

अज्ञानी मनुष्य सोचता है कि मैं अपनी जीविका या अपनी रोज़ी ख़ुद कमाता हूँ। बात तो यह है कि वह परमात्मा जिसको संसार में भेजता है, उसकी जीविका पहले ही संसार में भेज देता है। मनुष्य, पशु-पक्षी, जीव-जंतु सबको जीविका देनेवाला वह परमात्मा स्वयं है। पशु-पक्षी न तो ख़ज़ाने भरते हैं, न ही अनाज के भंडार। वह प्रतिपालक मालिक जंगलों, पेड़-पौधों में ही उनके लिए जीविका के भंडार जमा कर देता है।

जीविका लेनेवाले तो सभी नाशवान हैं, परंतु जीविका देनेवाला वह मालिक अमर और अनादि है:

न रिजक दसत आ कसे॥ हमा रा एक आस वसे॥
असत एक दिगर कुई॥ एक तुई एक तुई॥
परंदए न गिराह जर॥ दरखत आब आस कर॥
दिहंद सुई॥ एक तुई एक तुई॥[3]

अर्थात् रोज़ी किसी के अपने हाथ में नहीं है, सबको उस परमात्मा का भरोसा ही काफ़ी है। बस एक तू ही तो है, दूसरा कौन है? पक्षियों के पास में कोई धन या माल नहीं होता। वृक्ष पानी की आशा रखते हैं, उनको देनेवाला भी तू ही है। बस एक तू ही है।

सागर मह बूंद

इस शब्द में गुरु साहिब ने बड़े रूहानी भेद प्रकट किए हैं। जैसे बूँद समुद्र में होती है और समुद्र के सारे गुण बूँद में होते हैं, इसी प्रकार आत्मा परमात्मा में है और परमात्मा आत्मा में है। प्रत्येक जीव उस दिव्य ज्योति का ही प्रकाश है और प्रत्येक आत्मा में परमात्मा से अभेद होकर परमात्मा का रूप बनने का सामर्थ्य है। जीव अपने मूल रूप में परमात्मा ही है। परमात्मा सारे ब्रह्मांड की रचना करके इसके कण-कण में व्याप्त है। इस सत्य का जीता-जागता अनुभव पूरे सतगुरु द्वारा मिलता है। जिसको यह ज्ञान प्राप्त हो जाता है, वह शरीर के बंधनों से सदा के लिए मुक्त हो जाता है।

गुरु साहिब कई परस्पर विरोधी दिखाई देनेवाली बातों के द्वारा रूहानी तथ्यों को समझाने का प्रयत्न करते हैं। आप कहते हैं कि दोपहर के समय पूर्ण अंधकार और काली रात के घोर अँधेरे में सूर्य का प्रकाश हो सकता है। दरअसल यहाँ आप आंतरिक रूहानी मंडलों में सूर्य का प्रकाश देखने की ओर संकेत कर रहे हैं। उस सूर्य के अंदर दर्शन करनेवाले को उस समय भी हर ओर परमात्मा का प्रकाश दिखाई देता है, चाहे बाहर रात्रि का

अंधकार हो। परंतु जिसने इस सूर्य के दर्शन नहीं किए, वह बाहरी प्रकाश देखने के बावजूद रूहानी प्रकाश से हीन है। मौलाना रूम ने भी कहा है कि मैं तेरे साथ तब कलाम करूँगा जब तू आधी रात को सूर्य देखता हो।

इस युक्ति का ज्ञान सतगुरु से प्राप्त होता है। भले ही कोई दूसरा कितना ही विद्वान, गुणवान या ज्ञानी क्यों न हो, पर इस भेद का ज्ञाता और दाता नहीं बन सकता। आप समझाते हैं कि शब्द के अभ्यास से ऐसा ज्ञान प्राप्त हो जाता है और विवेक इतना निर्मल हो जाता है कि जीवन की सभी पहेलियाँ हल हो जाती हैं। सतगुरु के द्वारा बताए हुए शब्द से मन एकाग्र हो जाता है और सहज समाधि की वह ऊँची अवस्था प्राप्त हो जाती है, जिसमें हर बात का साक्षात ज्ञान हो जाता है। यही गुरु के बताए शब्द का चमत्कार है, उसकी अद्‌भुत साक्षी और अकथ कथा है। गुरु साहिब कहते हैं कि मैं उन सौभाग्यशाली जीवों पर बलिहारी जाता हूँ जो सदा गुरु के बताए हुए शब्द में समाए रहते हैं:

सागर मह बूंद बूंद मह सागर कवण बुझै बिध जाणै॥
उतभुज चलत आप कर चीनै आपे तत पछाणै॥
ऐसा गिआन बीचारै कोई॥ तिस ते मुकत परम गत होई॥
दिन मह रैण रैण मह दिनीअर उसन सीत बिध सोई॥
ता की गत मित अवर न जाणै गुर बिन समझ न होई॥
पुरख मह नार नार मह पुरखा बूझहो ब्रहम गिआनी॥
धुन मह धिआन धिआन मह जानिआ गुरमुख अकथ कहानी॥
मन मह जोत जोत मह मनूआ पंच मिले गुर भाई॥
नानक तिन कै सद बलिहारी जिन एक सबद लिव लाई॥[4]

अलख, अपार, अगंम, अगोचर

वह कुलमालिक परमात्मा मन और बुद्धि की पहुँच से परे है। वह अजर, अमर, अनंत और अगाह है। वह समय, स्थान, काल, कर्म और जाति-पाँति के बंधनों से मुक्त है। उसका प्रकाश अपने आप ही हुआ और वह अपना

आधार स्वयं है। वह अयोनि है, जन्म-मरण के बंधनों से आज़ाद है और रंगरूप, वर्ण-चिह्न से रहित है।

वह अलख, अगम और निराकार परमात्मा केवल शब्द द्वारा प्रकट होता है और उस शब्द का भेद सतगुरु देता है। पूरा गुरु, वज्र-कपाट खोलकर अंदर समाधि में लीन, उस परमपुरुष के दर्शन करा देता है।

परमात्मा ने सृष्टि की रचना करके इसको काल के अधीन कर दिया है। जो जीव सतगुरु की शरण में आ जाते हैं और सतगुरु के उपदेश के अनुसार अनहद शब्द की कमाई करते हैं, वे सदा के लिए काल के जाल से छूट जाते हैं। यदि शरीर और मन को निर्मल बना लिया जाए तो उस निर्मल प्रभु का अंदर ही वास हो जाए। परंतु संसार में ऐसे विरले ही जीव हैं जो अपनी आत्मा को पवित्र करके परमात्मा से मिलाप करने के योग्य बनते हैं:

अलख अपार अगंम अगोचर ना तिस काल न करमा॥
जात अजात अजोनी संभउ ना तिस भाउ न भरमा॥
साचे सचिआर विटहो कुरबाण॥
ना तिस रूप वरन नही रेखिआ साचै सबद नीसाण॥
ना तिस मात पिता सुत बंधप ना तिस काम न नारी॥
अकुल निरंजन अपर परंपर सगली जोत तुमारी॥
घट घट अंतर ब्रहम लुकाइआ घट घट जोत सबाई॥
बजर कपाट मुकते गुरमती निरभै ताड़ी लाई॥
जंत उपाए काल सिर जंता वसगत जुगत सबाई॥
सतगुर सेव पदारथ पावह छूटह सबद कमाई॥
सूचै भाडै साच समावै विरले सूचाचारी॥
तंतै कउ परम तंत मिलाइआ नानक सरण तुमारी॥[5]

अरबद नरबद धुंधूकारा

आदि काल में अनेक युगों तक अंधकार छाया रहा, सृष्टि का कोई नामो निशान न था। उस समय सुन्न समाधि में मग्न परमात्मा यानी उसके

सर्वव्यपाक हुक्म के सिवाय और कुछ भी न था। चंद्र-सूर्य, धरती और तारे नहीं थे, इसलिए दिन-रात भी नहीं थे। न तो पाँच तत्त्व बने थे और न ही उत्पादन और व्यय के कोई साधन थे। सागर, नदियाँ, खंड या पाताल आदि भी नहीं बने थे। ब्रह्मा, विष्णु और महेश, देवी-देवता भी नहीं थे, इसलिए जन्म-मरण, स्वर्ग-नरक, उदय-अस्त, नर-नारी, सुख-दुःख का द्वैत भी पैदा नहीं हुआ था। उस एक परमात्मा के अतिरिक्त कोई दूसरा नहीं था। न कोई जपी-तपी, सिद्ध-साधक, जोगी-जंगम थे और न ही किसी प्रकार के जप-तप और पूजा-पाठ थे। उस समय स्वयं प्रकट हुआ परमात्मा स्वयं ही अपने आनंद में मग्न था। अपनी महिमा का मूल्य भी स्वयं ही परख रहा था। उस समय किसी प्रकार की पवित्रता-अपवित्रता, तंत्र-मंत्र, कर्मधर्म, जाति-पाँति, मोहमाया आदि का जन्म नहीं हुआ था। गोपी-कृष्ण, गोरख-मछिंद्र, ज्ञान-ध्यान, ब्राह्मण-क्षत्रिय, गाय-गायत्री, होम-यज्ञ, तीर्थ-व्रत, मुल्ला-क़ाज़ी, शेख़-हाजी, राजा-प्रजा, वेद-कतेब, मंदिर-मसजिद, शिव-शक्ति, पूजा-भक्ति का भी नामो निशान नहीं था। जब जन्म-मरण ही नहीं था और नेकी-बदी का ख़याल ही नहीं पैदा हुआ था तो कर्म और फल का क्रम किस प्रकार शुरू हो सकता था? जब पूजा-भक्ति का ही पता न था तो धर्म और धर्मस्थानों के आपसी विरोध की गुंजाइश कैसे हो सकती थी?

उस समय पूर्ण अद्वैत था। वह परमात्मा स्वयं ही शाह था और स्वयं ही बंजारा था। वह स्वयं ही करण-कारण था। वह स्वयं ही कहनेवाला और सुननेवाला था। वह स्वयं ही साधक था और स्वयं ही इष्ट था।

जब उसका हुक्म या मौज हुई तो उसने संसार की रचना की और बिना सहारे टिका रहनेवाला आकाश बना दिया। उसने स्वयं ही ब्रह्मा, विष्णु और महेश तथा शक्ति या माया को पैदा किया, जिन्होंने आगे सारा मोह और माया का द्वैतमय प्रसार कर दिया।

उस परमात्मा ने इस मोह और माया को पैदा किया और इसमें से निकलने का सामान भी स्वयं तैयार कर दिया। जिन जीवों को उसने अपने हुक्म (भाणे) से सतगुरु द्वारा सच्चे शब्द का बोध करा दिया,

वे अलख प्रभु को लखने और अगम की गम्यता पाने के योग्य बन गए। संसार में कोई भी अपने आप परमात्मा का ज्ञान नहीं पा सकता। कुछ विरले सौभाग्यशाली जीव हैं, जिनको सतगुरु के शब्द द्वारा उस अलख, अगम और अगाह परमात्मा का भेद प्राप्त होता है। वे लोग सदा के लिए परमात्मा में समा जाते हैं। उस आनंद-रूप कर्ता में समाकर वे भी सहज आनंद को प्राप्त हो जाते हैं:

अरबद नरबद धुंधूकारा॥ धरण न गगना हुकम अपारा॥
ना दिन रैन न चंद न सूरज सुंन समाध लगाइदा॥
खाणी न बाणी पउण न पाणी॥ ओपत खपत न आवण जाणी॥
खंड पताल सपत नही सागर नदी न नीर वहाइदा॥
ना तद सुरग मछ पइआला॥ दोजक भिसत नही खै काला॥
नरक सुरग नही जंमण मरणा ना को आए न जाइदा॥
ब्रहमा बिसन महेस न कोई॥ अवर न दीसै एको सोई॥
नार पुरख नही जात न जनमा ना को दुख सुख पाइदा॥
ना तद जती सती बनवासी॥ ना तद सिध साधिक सुखवासी॥
जोगी जंगम भेख न कोई ना को नाथ कहाइदा॥
जप तप संजम ना ब्रत पूजा॥ ना को आख वखाणै दूजा॥
आपे आप उपाए विगसै आपे कीमत पाइदा॥
ना सुच संजम तुलसी माला॥ गोपी कान न गऊ गुोआला॥
तंत मंत पाखंड न कोई ना को वंस वजाइदा॥
करम धरम नही माइआ माखी॥ जात जनम नही दीसै आखी॥
ममता जाल काल नही माथै ना को किसै धिआइदा॥
निंद बिंद नही जीउ न जिंदो॥ ना तद गोरख ना माछिंदो॥
ना तद गिआन धिआन कुल ओपत ना को गणत गणाइदा॥
वरन भेख नही ब्रहमण खत्री॥ देउ न देहुरा गऊ गाइत्री॥
होम जग नही तीरथ नावण ना को पूजा लाइदा॥
ना को मुला ना को काजी॥ ना को सेख मसाइक हाजी॥

रईअत राउ न हउमै दुनीआ ना को कहण कहाइदा॥
भाउ न भगती ना सिव सकती॥ साजन मीत बिंद नही रकती॥
आपे साहु आपे वणजारा साचे एहो भाइदा॥
बेद कतेब न सिंम्रित सासत॥ पाठ पुराण उदै नही आसत॥
कहता बकता आप अगोचर आपे अलख लखाइदा॥
जा तिस भाणा ता जगत उपाइआ॥ बाझ कला आडाण रहाइआ॥
ब्रहमा बिसन महेस उपाए माइआ मोह वधाइदा॥
विरले कउ गुर सबद सुणाइआ॥ कर कर देखै हुकम सबाइआ॥
खंड ब्रहमंड पाताल अरंभे गुपतहो परगटी आइदा॥
ता का अंत न जाणै कोई॥ पूरे गुर ते सोझी होई॥
नानक साच रते बिसमादी बिसम भए गुण गाइदा॥[6]

आपे आप उपाए निराला

इस शब्द में गुरु नानक साहिब बहुत सुंदर ढंग से बताते हैं कि सर्वशक्तिमान परमात्मा सबका कर्ता है और सबमें समाया हुआ भी है। परमात्मा सारी रचना का कर्ता भी है और अपनी पैदा की हुई सब वस्तुओं और पदार्थों में मौजूद भी है। सारा शब्द इस विचार के सूत में पिरोया हुआ है कि जो कुछ है परमेश्वर का अपना रूप है। वह परमात्मा संपूर्ण रचना का गुप्त आधार है। वह स्वयं ही वस्तुओं का रचयिता है और स्वयं ही उनका ग्राहक, व्यापारी या मूल्य पानेवाला है।

गुरु साहिब ने एक ओर यह बताया है कि उस परमात्मा का नूर उसकी सृष्टि के कण-कण में है, तो दूसरी ओर इस बात पर ज़ोर दिया है कि परमात्मा मनुष्य के शरीर के अंदर भी है। मनुष्य-शरीर की बड़ी महिमा यह है कि वह सर्वव्यापक परमात्मा जब भी मिलता है, इस शरीर में ही मिलता है।

उस कर्तापुरुष परमात्मा ने इस शरीर की बनावट में एक कमाल की कारीगरी यह दिखाई है कि शरीर के नौ द्वार सांसारिक कारोबार के लिए रखे हैं और दसवें घर में वह स्वयं आसन लगाकर बैठ गया है। यह शरीर

एक क़िले की तरह है। इस क़िले में मन राजा है। कर्मेंद्रियाँ नायब या सेवक हैं, ज्ञानेंद्रियाँ विशेष सेवक हैं। शरीर में ही एक सुंदर दरवाज़ा (दसवाँ द्वार) भी है, जिसमें हरिरूपी अमोलक रत्न छिपा हुआ है। जब उस कर्तापुरुष की दया से जीव को किसी पूरे सतगुरु की संगति प्राप्त हो जाती है तो उस सर्वकला संपूर्ण परमात्मा से मिलने की युक्ति अपने शरीर के अंदर ही मिल जाती है। पूरे सतगुरु के बिना परमात्मा का मिलना कठिन ही नहीं बल्कि असंभव है, क्योंकि ऐसा सतगुरु आंतरिक रूहानी मार्ग का भेदी होता है और परमात्मा के हुक्म का ज्ञाता भी। केवल उसको ही काया की क़ैद में बंद जीवों को सच्चे शाहंशाह के घर में ले जाने की आज्ञा है। सतगुरु की सहायता से जीव, शब्द से जुड़कर उस हुक्मी के हुक्म को जान लेता है। उसको उस जगजीवन से मिलकर सहज अवस्था प्राप्त करने की बड़ाई मिल जाती है:

आपे आप उपाए निराला॥ साचा थान कीओ दइआला॥
पउण पाणी अगनी का बंधन काइआ कोट रचाइदा॥
नउ घर थापे थापणहारै॥ दसवै वासा अलख अपारै॥
साइर सपत भरे जल निरमल गुरमुख मैल न लाइदा॥
रवि ससि दीपक जोत सबाई॥ आपे कर वेखै वडिआई॥
जोत सरूप सदा सुखदाता सचे सोभा पाइदा॥
गड़ मह हाट पटण वापारा॥ पूरै तोल तोलै वणजारा॥
आपे रतन विसाहे लेवै आपे कीमत पाइदा॥
कीमत पाई पावणहारै॥ वेपरवाह पूरे भंडारै॥
सरब कला ले आपे रहिआ गुरमुख किसै बुझाइदा॥
नदर करे पूरा गुर भेटै॥ जम जंदार न मारै फेटै॥
जिउ जल अंतर कमल बिगासी आपे बिगस धिआइदा॥
आपे वरखै अंम्रित धारा॥ रतन जवेहर लाल अपारा॥
सतगुर मिलै त पूरा पाईऐ प्रेम पदारथ पाइदा॥
प्रेम पदारथ लहै अमोलो॥ कब ही न घाटस पूरा तोलो॥

सचे का वापारी होवै सचो सउदा पाइदा॥
सचा सउदा विरला को पाए॥ पूरा सतगुर मिलै मिलाए॥
गुरमुख होए सो हुकम पछाणै मानै हुकम समाइदा॥
हुकमे आइआ हुकम समाइआ॥ हुकमे दीसै जगत उपाइआ॥
हुकमे सुरग मछ पइआला हुकमे कला रहाइदा॥
हुकमे धरती धउल सिर भारं॥ हुकमे पउण पाणी गैणारं॥
हुकमे सिव सकती घर वासा हुकमे खेल खेलाइदा॥
हुकमे आडाणे आगासी॥ हुकमे जल थल त्रिभवण वासी॥
हुकमे सास गिरास सदा फुन हुकमे देख दिखाइदा॥
हुकम उपाए दस अउतारा॥ देव दानव अगणत अपारा॥
मानै हुकम सो दरगह पैझै साच मिलाए समाइदा॥
हुकमे जुग छतीह गुदारे॥ हुकमे सिध साधिक वीचारे॥
आप नाथ नथीं सभ जा की बखसे मुकत कराइदा॥
काइआ कोट गड़ै मह राजा॥ नेब खवास भला दरवाजा॥
मिथिआ लोभ नाही घर वासा लब पाप पछुताइदा॥
सत संतोख नगर मह कारी॥ जत सत संजम सरण मुरारी॥
नानक सहज मिलै जगजीवन गुर सबदी पत पाइदा॥[7]

जह देखा तह दीन दइआला

परमेश्वर सर्वव्यापक है। वह परम दयालु है। वह जन्म-मरण और आवागमन से परे है। वह सबके अंदर समाया होने के बावजूद सबसे निर्लेप है। वह प्रभु जगत पैदा करके, आप इससे निर्लिप्त होकर चौथे पद में बैठ गया है। वह काल, महाकाल और मन-माया के अधीन नहीं है। ये सब उसका एक ग्रास हैं अर्थात् जब वह चाहे उनका अंत कर सकता है। वह परमात्मा सत्य का रूप है। वह शब्द-रूप है। शब्द से जुड़ने पर ही उससे लिव लगती है, तभी शांति और सहज अवस्था प्राप्त होती है। जब सतगुरु जीव की लिव को अनहद शब्द से जोड़ देता है तो उस परमेश्वररूपी निर्मल ज्योति के अंदर ही दर्शन हो जाते हैं, जो सारे संसार का जीवन है। दरअसल अंतर

में परमात्मा में समा चुके भक्त ही सच्चे संत होते हैं। वे हरि के प्यारे होते हैं। वे सदा उसके नाम के रंग में रँगे रहते हैं। वे स्वयं भवसागर से पार हो चुके हैं और दूसरों को भी इससे पार कर सकने में समर्थ हैं।

यह शरीर पाँच तत्त्व का पुतला है, परंतु इसमें एक चेतन शक्ति 'आतम-राम' अर्थात् परमात्मा भी है। जब अंतर में जीव का इस शक्ति से संपर्क हो जाता है और वह सदा पारमार्थिक कर्म करता है, तब तन, मन और सुरत को सच्चा आनंद प्राप्त हो जाता है। उसको ऐसा स्थायी संतोष मिल जाता है कि फिर किसी भी वस्तु की तृष्णा नहीं रहती।

शरीररूपी क़िले के अंदर चौदह भुवन, चंद्र और सूर्य भी हैं और सच्चे परमात्मा का सच्चा तख़्त भी। जो अंदर इस निज घर में पहुँच जाता है, उसको सदा अपने अंतर में शब्द की मीठी बीन बजती हुई सुनाई देती रहती है। उस गुरुमुख को तीनों लोकों का ज्ञान हो जाता है। वह त्रिकालदर्शी हो जाता है। उसके हर प्रकार के संशय और भ्रम दूर हो जाते हैं। उसको निश्चल अवस्था प्राप्त हो जाती है। वह गुरुमत पर चलता हुआ सहज ही भवसागर से पार हो जाता है। ऐसे गुरुमुख को हर जगह उस एक परमेश्वर का ही नूर दिखाई देता है और वह सदा नामरूपी अमृत की मस्ती में डूबा रहता है। उसके अंदर से प्रेम, मिठास और दया फूट-फूटकर निकलती है। परंतु शरीररूपी घर के अंदर परमात्मा के घर में पहुँचने की बड़ाई केवल उन सौभाग्यशाली जीवों को ही मिलती है, जो पूरे सतगुरु की शरण में आ जाते हैं:

जह देखा तह दीन दइआला॥ आए न जाई प्रभ किरपाला॥
जीआ अंदर जुगत समाई रहिओ निरालम राइआ॥
जग तिस की छाइआ जिस बाप न माइआ॥
ना तिस भैण न भराउ कमाइआ॥
ना तिस ओपत खपत कुल जाती ओह अजरावर मन भाइआ॥
तू अकाल पुरख नाही सिर काला॥ तू पुरख अलेख अगंम निराला॥
सत संतोख सबद अत सीतल सहज भाए लिव लाइआ॥
त्रै वरताए चउथै घर वासा॥ काल बिकाल कीए इक ग्रासा॥

निरमल जोत सरब जगजीवन गुर अनहद सबद दिखाइआ॥
ऊतम जन संत भले हर पिआरे॥ हर रस माते पार उतारे॥
नानक रेण संत जन संगत हर गुर परसादी पाइआ॥
तू अंतरजामी जीअ सभ तेरे॥ तू दाता हम सेवक तेरे॥
अंम्रित नाम क्रिपा कर दीजै गुर गिआन रतन दीपाइआ॥
पंच तत मिल इह तन कीआ॥ आतम राम पाए सुख थीआ॥
करम करतूत अंम्रित फल लागा हर नाम रतन मन पाइआ॥
ना तिस भूख पिआस मन मानिआ॥ सरब निरंजन घट घट जानिआ॥
अंम्रित रस राता केवल बैरागी गुरमत भाए सुभाइआ॥
अधिआतम करम करे दिन राती॥ निरमल जोत निरंतर जाती॥
सबद रसाल रसन रस रसना बेण रसाल वजाइआ॥
बेण रसाल वजावै सोई॥ जा की त्रिभवण सोझी होई॥
नानक बूझहो इह बिध गुरमत हर राम नाम लिव लाइआ॥
ऐसे जन विरले संसारे॥ गुर सबद वीचारह रहहे निरारे॥
आप तरह संगत कुल तारह तिन सफल जनम जग आइआ॥
घर दर मंदर जाणै सोई॥ जिस पूरे गुर ते सोझी होई॥
काइआ गड़ महल महली प्रभ साचा सच साचा तखत रचाइआ॥
चतुर दस हाट दीवे दुए साखी॥ सेवक पंच नाही बिख चाखी॥
अतंर वसत अनूप निरमोलक गुर मिलिऐ हर धन पाइआ॥
तखत बहै तखतै की लाइक॥ पंच समाए गुरमत पाइक॥
आद जुगादी है भी होसी सहसा भरम चुकाइआ॥
तखत सलाम होवै दिन राती॥ इह साच वडाई गुरमत लिव जाती॥
नानक राम जपहो तर तारी हर अंत सखाई पाइआ॥[8]

कुदरत करनैहार अपारा

परमात्मा सर्वशक्तिमान और सर्वव्यापक है। वह अनंत और अडोल है। वह सबमें समाया हुआ है। वही सबका राज़िक और प्रतिपालक है। सब जगह उस एक कर्तापुरुष का हुक्म चल रहा है।

वह स्वामी अपनी रज़ा, अपने भाणे का मालिक है। जब वह किसी जीव को अपने साथ मिलाना चाहता है तो उसका पूरे सतगुरु से मिलाप करा देता है। सतगुरु उसके सभी भ्रम दूर करके उसको अंतर में सहज आनंद के अमर स्रोत से जोड़ देता है। वहाँ दशम द्वार यानी अमृत के सरोवर में स्नान करने से मन की सब मलिनताएँ दूर हो जाती हैं। पूरे सतगुरु के बिना सहज आनंद की अवस्था तक पहुँच सकना असंभव है।

यह काम सतगुरु शिष्य की सुरत को शब्द से जोड़कर करता है। वास्तव में सतगुरु और परमात्मा एक हैं: हर गुर मूरत ऐका वरतै...॥[9] जो हरि का भाणा है, वही सतगुरु का भाणा है। संत-सतगुरु हरि का प्यारा है और हरि संत-सतगुरु का प्यारा। इसलिए गुरु साहिब बार-बार आग्रह करते हैं कि जैसे भी हो सके सतगुरु की शरण, संगति और सेवा अपनाओ:

1. नानक गुर के चरन सरेवहो॥[10]
2. सेवहो सतगुर समुंद अथाहा॥[11]
3. सतगुर सेवहो संक न कीजै॥[12]

सतगुरु की शरण, संगति और सेवा क्यों आवश्यक है? गुरु साहिब उपदेश करते हैं कि गुरु के बिना किसी को सुख नहीं मिला: बिन हर गुर किन सुख पाइआ॥[13] गुरु के बिना किसी को भी सत्य का ज्ञान नहीं हुआ: बिन सतगुर तत ना पाइआ॥[14] और न ही गुरु के बिना किसी ने अलख को लखा है: बिन सतगुर अलख न पाइआ॥[15] जिसने भी ब्रह्म को पहचाना है, गुरु के शब्द के द्वारा ही पहचाना है: गुर सबदी सभ ब्रहम पछानिआ॥[16] और जिसने भी अलख को लखा है सतगुर के द्वारा ही लखा है: गुर सतगुर अलख लखाइआ॥[17] इसलिए तीर्थयात्रा, प्राणायाम, नौलि कर्म और अन्य प्रकार के कर्मकांड में समय नष्ट करने का कोई लाभ नहीं। मन जब भी बस में आता है और जब भी सर्वव्यापक प्रभु

से मिलाप होता है, केवल सतगुरु के उपदेशानुसार शब्द की कमाई से ही होता है:

कुदरत करनैहार अपारा॥ कीते का नाही किहु चारा॥
जीअ उपाए रिजक दे आपे सिर सिर हुकम चलाइआ॥
हुकम चलाए रहिआ भरपूरे॥ किस नेड़ै किस आखां दूरे॥
गुपत प्रगट हर घट घट देखहो वरतै ताक सबाइआ॥
जिस कउ मेले सुरत समाए॥ गुर सबदी हर नाम धिआए॥
आनद रूप अनूप अगोचर गुर मिलिऐ भरम जाइआ॥
मन तन धन ते नाम पिआरा॥ अंत सखाई चलणवारा॥
मोह पसार नही संग बेली बिन हर गुर किन सुख पाइआ॥
जिस कउ नदर करे गुर पूरा॥ सबद मिलाए गुरमत सूरा॥
नानक गुर के चरन सरेवहो जिन भूला मारग पाइआ॥
संत जनां हर धन जस पिआरा॥ गुरमत पाइआ नाम तुमारा॥
जाचिक सेव करे दर हर कै हर दरगह जस गाइआ॥
सतगुर मिलै त महल बुलाए॥ साची दरगह गत पत पाए॥
साकत ठउर नाही हर मंदर जनम मरै दुख पाइआ॥
सेवहो सतगुर समुंद अथाहा॥ पावहो नाम रतन धन लाहा॥
बिखिआ मल जाए अंम्रित सर नावहो गुर सर संतोख पाइआ॥
सतगुर सेवहो संक न कीजै॥ आसा माहे निरास रहीजै॥
संसा दूख बिनासन सेवहो फिर बाहुड़ रोग न लाइआ॥
साचे भावै तिस वडीआए॥ कउन सो दूजा तिस समझाए॥
हर गुर मूरत एका वरतै नानक हर गुर भाइआ॥
वाचह पुसतक वेद पुरानां॥ इक बह सुनह सुनावह कानां॥
अजगर कपट कहहो किउ खुल्है बिन सतगुर तत न पाइआ॥
करह बिभूत लगावह भसमै॥ अंतर क्रोध चंडाल सो हउमै॥
पाखंड कीने जोग न पाईऐ बिन सतगुर अलख न पाइआ॥
तीरथ वरत नेम करह उदिआना॥ जत सत संजम कथह गिआना॥

राम नाम बिन किउ सुख पाईऐ बिन सतगुर भरम न जाइआ॥
*निउली करम भुइअंगम भाठी॥ रेचक कुंभक पूरक मन हाठी॥**
पाखंड धरम प्रीत नही हर सउ गुर सबद महा रस पाइआ॥
कुदरत देख रहे मन मानिआ॥ गुर सबदी सभ ब्रहम पछानिआ॥
नानक आतम राम सबाइआ गुर सतगुर अलख लखाइआ॥[18]

हउ मै करी तां तू नाही

जब तक अहं, ख़ुदी या हौंमैं का नाश नहीं होता, परमात्मा से मिलाप नहीं हो सकता। जहाँ हौंमैं है वहाँ हरि नहीं और जहाँ हरि है वहाँ हौंमैं नहीं। हौंमैं को मारने और हरि में समाने की युक्ति पूरे गुरु से ही मिलती है। जब हौंमैं का नाश होता है तो सब संशय और भ्रम मिट जाते हैं तथा आवागमन के दु:खों की समाप्ति हो जाती है।

सच्चा ज्ञान और पूर्ण विवेक पूरे गुरु से मिलता है। सतगुरु ही हमें उस मुक्तिदाता परमात्मा से मिला सकता है। कोई दूसरा यह काम नहीं कर सकता।

गुरु साहिब कहते हैं कि वह सिमरन कर, जिससे 'वह' 'मैं' हो जाए और 'मैं' 'वह' अर्थात् जीव और प्रभु एकरूप हो जाएँ। त्रिलोकी के जीव उसी में समाए हुए हैं:

हउ मै करी तां तू नाही तू होवह हउ नाहे॥
बूझहो गिआनी बूझणा एह अकथ कथा मन माहे॥
बिन गुर तत न पाईऐ अलख वसै सभ माहे॥
सतगुर मिलै त जाणीऐ जां सबद वसै मन माहे॥
आप गइआ भ्रम भउ गइआ जनम मरन दुख जाहे॥
गुरमत अलख लखाईऐ ऊतम मत ताहे॥
नानक सोहं हंसा जप जापहो त्रिभवण तिसै समाहे॥[19]

* नौलि कर्म, कुंडलिनी को जगाना और हठयोग की दूसरी क्रियाएँ करना; रेचक, कुंभक, पूरक, प्राणायाम की क्रियाएँ हैं, जिनमें प्राणों को अंदर या बाहर रोकने का अभ्यास किया जाता है।

आतम मह राम

आत्मा में परमात्मा समाया हुआ है और परमात्मा में आत्मा। इसका ज्ञान सतगुरु की दया और गुरु की बताई विधि से शब्द की कमाई करने से होता है।

हमारी हौंमैं ही परमात्मा से मिलाप के मार्ग में सबसे बड़ी रुकावट है। हौंमैं का रोग सर्वव्यापक है। सारा संसार इस रोग में बुरी तरह जकड़ा हुआ है। साधारण नर-नारी तो क्या, देवी-देवता भी इससे मुक्त नहीं हैं।

गुरु साहिब ने हौंमैं को दूजा भाउ भी कहा है। जीव उस एक परमात्मा को छोड़कर संसार की दूसरी अनेक वस्तुओं से प्यार करता है। वह स्वयं को परमात्मा से भिन्न समझकर नाशवान जगत और इसके पदार्थों को अपना बनाने का प्रयत्न करता है। यही हौंमैं या दूजा भाउ उसके विनाश का कारण बनता है।

गुरु साहिब बताते हैं कि संसार की कोई वस्तु स्थिर नहीं है। यहाँ की हर वस्तु नाशवान है: पाँच तत्त्व, और ब्रह्मा, विष्णु, महेश तीनों देवता भी रोगी हैं। वेद-कतेब, दर्शन, शास्त्र, नदियाँ, समुद्र और खंड-पाताल भी नाशवान हैं। माता-पिता और कुटुंब के सब जीव, जिनका हमारे साथ लेन-देन का संबंध है और जो कर्मों के संयोग के कारण इकट्ठे हुए हैं, वे भी हौंमैं और मौत का शिकार हैं। जैसे-जैसे कर्मों का हिसाब ख़त्म होता जाता है, रिश्तेदार और संबंधी अपने-अपने रास्ते पर चल देते हैं। और तो और यह शरीर भी साथ नहीं निभाता। अंत समय यह भी मिट्टी या अग्नि के सुपुर्द होकर यहीं रह जाता है। मायामय जगत के पदार्थ और इंद्रियों के सुख स्थिर और स्थायी नहीं हैं, सब कुछ अस्थिर और अस्थायी है।

हौंमैं और मौत के रोग से कैसे छुटकारा हो? इस रोग का एकमात्र स्थायी इलाज सुरत-शब्द का अभ्यास है। ग्रंथ-शास्त्रों का ज्ञान, तीर्थयात्रा, हठयोग आदि के अनेक आसन या साधन और त्याग आदि भी हौंमैं, मौत और आवागमन से मुक्ति का साधन नहीं बनते। उस परमपिता परमात्मा की दया-मेहर के बिना कोई कभी इस बीमारी से छुटकारा नहीं पा सकता।

परमात्मा की दया गुरु का रूप धारण करके प्रकट होती है। सतगुरु ही जीव को शब्द से जोड़कर हौंमैं के रोग से मुक्त करता है:

आतम मह राम राम मह आतम चीनस गुर बीचारा॥
अंम्रित बाणी सबद पछाणी दुख काटै हउ मारा॥*
नानक हउमै रोग बुरे॥
जह देखां तह एका बेदन आपे बखसै सबद धुरे॥
आपे परखे परखणहारै बहुर सूलाक न होई॥†
जिन कउ नदर भई गुर मेले प्रभ भाणा सच सोई॥
पउण पाणी बैसंतर रोगी रोगी धरत सभोगी॥
मात पिता माइआ देह सो रोगी रोगी कुटंब संजोगी॥
रोगी ब्रहमा बिसन सरुद्रा रोगी सगल संसारा॥
हर पद चीन भए से मुकते गुर का सबद वीचारा॥
रोगी सात समुंद सनदीआ खंड पताल से रोग भरे॥
हर के लोक से साच सुहेले सरबी थाई नदर करे॥
रोगी खट दरसन भेखधारी नाना हठी अनेका॥
बेद कतेब करह कह बपुरे नह बूझह इक एका॥
मिठ रस खाए सो रोग भरीजै कंद मूल सुख नाही॥
नाम विसार चलह अन मारग अंत काल पछुताही॥
तीरथ भरमै रोग न छूटस पड़िआ बाद बिबाद भइआ॥
दुबिधा रोग सो अधिक वडेरा माइआ का मुहताज भइआ॥
गुरमुख साचा सबद सलाहै मन साचा तिस रोग गइआ॥
नानक हर जन अनदिन निरमल जिन कउ करम नीसाण पइआ॥[20]

* श्री आदि ग्रन्थ में शब्द, वाणी, नाम, अमृत आदि कई पदों का एक ही अर्थ में प्रयोग किया गया है।

† **आपे...होई**=प्राचीनकाल में ख़ज़ांची खोटे सिक्के पर टक लगा देते थे जिसको 'सुलाक' कहा जाता था। गुरु साहिब संकेत करते हैं कि वह परमात्मा स्वयं ही सब जीवों की परख करता है।

परमात्मा की दरगाह

जब गुरु नानक साहिब मक्का गए तो आपकी रुकन दीन नामक एक क़ाज़ी से मुलाक़ात हुई। दोनों में रूहानी विषयों पर गोष्ठी हुई, जिसमें से कुछ चुने हुए अंश यहाँ दिए जा रहे हैं।

क़ाज़ी रुकन दीन ने गुरु साहिब से पूछा कि जहाँ परमात्मा का निवास है, वह स्थान कैसा है? गुरु साहिब ने क़ाज़ी को बताया कि परमात्मा मनुष्य-शरीर के अंदर रहता है, किसी मंदिर, मसजिद, गिरजे आदि में नहीं। यह सच्चाई समझाने के लिए उन्होंने परमात्मा की सच्ची दरगाह का विस्तारपूर्वक नक़्शा खींचा है।

गुरु साहिब ने परमात्मा के निज घर की एक बड़े महल से तुलना की है, जिसकी अपनी विशेष बनावट है। इस महल या क़िले के बारह बुर्ज (हाथों और पैरों के जोड़), नौ दरवाज़े (दो आँखें, दो कान, दो नासिका रंध्र, मुँह और दो इंद्रियों के सूराख़), बावन कंगूरे (बत्तीस दाँत और बीस नाख़ून) और इसके पाँच चौकीदार (ज्ञानेंद्रियाँ) और पच्चीस कारिंदे (प्रकृतियाँ) हैं। यह इतना सुंदर महल है कि देवी-देवता भी इसमें रहने के लिए तरसते हैं। कबीर साहिब ने कहा है:

इस देही कउ सिमरह देव॥
सो देही भज हर की सेव॥[21]

शरीर के अंदर अनगिनत ख़ज़ाने और शक्तियाँ भरी हुई हैं, परंतु ये सब गुप्त हैं। इनको जाग्रत करके ही इनसे लाभ उठाया जा सकता है।

इन गुप्त शक्तियों को अपने अंदर जगाने और शब्द के दिव्य राग को सुनने का एक ही तरीक़ा है कि किसी कामिल मुर्शिद की खोज की जाए और उसके उपदेश पर अमल किया जाए। सतगुरु बंकनालरूपी सूक्ष्म मार्ग में से निकलकर परमात्मा के महल में पहुँचने की युक्ति समझाता है। उस महल का रंगरूप अद्भुत है, उसमें लाखों चंद्र-सूर्य मशालों के समान जल रहे हैं। उस महल में पहुँचने और परमात्मा से मिलाप कराने में सतगुरु जीव की सहायता भी करता है:

क़ाज़ी रुकन दीन:

रुकनल आखे नानका दरगाह दी खबर सुणाइ।
केहा रंग महल दा जिथे रहे खुदाइ।
केहे बुरज महल दे छजे ते चौकाठ।
कहीआं डिठियां बैठकां किस नाल कीत रास।
केहा गारा चूनड़ा कौन बनावन हार।
सूरत कौन महल दी क्या फेर होइ दीदार।
दर ते लिखिआ के कुझ एह भी देह बताइ।
केहड़ा यार खुदाइ दा जिसनो ठाक न पाइ।
पहुंचे केहड़ी बंदगी करके कौन नमाज़।
सचो सच बताइ तूं सचा केहड़ा साज।
केहड़ी सुन्नत पाईऐ जाइ दीदार खुदाई।
कौन रसूल पहुंचांवदा दरगाह सकी जाइ।
सभ निशानियां देह खान अव्वल फकीर।
पीरां अंदर पीर तूं मीरां अंदर मीर।

गुरु नानक:

नानक आखे रुकनदीन दरगाह दी सुध लेइ।
रंग अजाइब महल दा हीरे लाल जड़ेइ।
मोती त याकूतीआं मणी जमुरदां नाल।
लख आफ़ताब महताब लख रोशन बलन मशाल।
रंग महल है कुदरती जिस तखत सुबहान।
बैठा सचा पातशाह सुलताना सुलतान।
बारां बुरज महल दे नौं दरवाजे नाल।
पज खवास हैं पाहरू चौकी देन संभाल।
बुरज सवारे जरी के मीना कारी रास।

बने चौकाठां छजरे चौकी देन संभाल।
बुरज सवारे जरी के मीना कारी रास।
बने चौकाठां छजरे बाधन चंदन काठ।
पत्थर पारस लाईऐ पारस जात संग बार।
कामधेन लख लछमीयां होई गोली करन अरदास।
लेपन मेद कसतूरीआं चोए बहु प्रकार।
रंग अजाइब बैठकां गोर मुशक अपार।
नौ दरवाजे कोट दे दसवां नूर महल।
हौज हयाती पर भरे तिस कौल अचल।
गिरद महल दे कोट है बावन किंगरे तिस।
किंगरे किंगरे तोपची फड़न न देंदे किस।
सत समुन्द्र खाईयां नदियां अंत न पार।
कई रखवाले सूरमे पिआदे ते अवतार।
इक महल दुई बारियां शिव शक्ति सलतान।
खिरकी खोल दीदार देन बहुत वधाइन मान।[22]

सतगुरु

धात मिलै फुन धात कउ

जिस प्रकार एक ही धातु के टुकड़े पिघलकर आपस में एक हो जाते हैं, उसी प्रकार सतगुरु की भक्ति द्वारा शिष्य सतगुरु में समा जाता है, उस पर सच्चे नाम का गहरा रंग चढ़ जाता है। जो व्यक्ति सतगुरु के उपदेश के अनुसार एक मन और एक चित्त होकर परमात्मा का ध्यान करता है, वह उसमें समाकर उसका रूप हो जाता है।

गुरु नानक साहिब साधक को उपदेश देते हैं कि यदि मन में मुक्ति की इच्छा है तो सतगुरु की चरणधूलि बन जाओ। पिछले जन्मों के पुण्य-कर्मों के फलस्वरूप मनुष्य-जन्म की अमूल्य दात मिलती है। यदि इस अवसर से लाभ उठाकर हम किसी पूर्ण संत की संगति में रहें तो ऐसी सच्ची करनी की युक्ति प्राप्त हो जाती है, जिसके द्वारा परमात्मा के ऊँचे और सुंदर महल में वास मिल जाता है।

जीव सदा तीन प्रकार के कर्मों के जाल में फँसा रहता है। उसे त्रिविध कर्मों और तीन गुणों के दायरे से छुटकारा कैसे मिले? सतगुरु की शरण के बिना न तो तीन गुणों का दायरा छूटता है और न ही सहज की प्राप्ति होती है। परंतु सतगुरु के बताए हुए मार्ग पर चलने से प्रभु के महल में पहुँचकर सहज सुख की पूँजी मिल जाती है।

परमात्मा और उसका सच्चा महल तो जीव के अपने अंदर ही है, परंतु जब तक वह सतगुरु की बताई हुई युक्ति पर अमल नहीं करता तब तक विकारों और पापों की मलिनता नहीं उतरती, मन वश में नहीं आता

और अपने आप की पहचान नहीं होती। जब परमात्मा की दया से पूरा गुरु मिल जाता है तो सब कुछ घर के अंदर से ही मिल जाता है।

गुरु साहिब समझाते हैं कि परमार्थ के यात्री को हर प्रकार की अन्य आशाएँ त्यागकर, सतगुरु के उपदेशानुसार शब्द को मन में बसा लेना चाहिए। आप फ़रमाते हैं: मैं ऐसे सतगुरु पर बलिहारी जाता हूँ, जिसने स्वयं परमात्मा के दर्शन कर लिए हैं और दूसरों को भी उसके दर्शन करवाता है:

धात मिलै फुन धात कउ सिफती सिफत समाए॥
लाल गुलाल गहबरा सचा रंग चड़ाउ॥
सच मिलै संतोखीआ हर जप एकै भाए॥
भाई रे संत जना की रेण॥
संत सभा गुर पाईऐ मुकत पदारथ धेण॥
ऊचउ थान सुहावणा ऊपर महल मुरार॥
सच करणी दे पाईऐ दर घर महल पिआर॥
गुरमुख मन समझाईऐ आतम राम बीचार॥
त्रिबिध करम कमाईअह आस अंदेसा होए॥
किउ गुर बिन त्रिकुटी छुटसी सहज मिलिऐ सुख होए॥
निज घर महल पछाणीऐ नदर करे मल धोए॥
बिन गुर मैल न उतरै बिन हर किउ घर वास॥
एको सबद वीचारीऐ अवर तिआगै आस॥
नानक देख दिखाईऐ हउ सद बलिहारै जास॥[1]

गुर की चरणी लाग

इस शब्द में गुरु साहिब अज्ञानी, मूर्ख और अचेत मन को सतगुरु की शरण दृढ़ करने और गुरु की बताई युक्ति के अनुसार शब्द की कमाई करने का उपदेश दे रहे हैं। इसके द्वारा सहज ही मौत और दुःख पर विजय प्राप्त की जा सकती है।

जैसे दुहागिन और परित्यक्ता कभी सुखी नहीं हो सकती, इसी प्रकार परमात्मारूपी प्रियतम से बिछुड़ी आत्मा को परमात्मा से मिलाप के बिना कभी सच्चा सुख नहीं मिल सकता।

नाम के बिना मनोरथ पूरा नहीं हो सकता। जैसे सूने घर में आए कौए को कुछ नहीं मिलता, इसी प्रकार नाम के बिना संसार में आने का कोई लाभ नहीं। नाम के बिना शरीर दुःख सहता है और वह कल्लर या रेत की दीवार की भाँति ढह जाता है। गुरु साहिब अपने सतगुरु का आभार मानते हैं, क्योंकि उन्होंने नाम का भेद दे दिया। वे कहते हैं कि अब नाम ही मेरा सच्चा धन, सच्चा ख़ज़ाना और सच्चा सहारा बन चुका है। आप बताते हैं कि अब नाम मुझे पग-पग पर सच्चा मार्ग दिखलाता है। सतगुरु की दया से मुझे परमेश्वर की दरगाह में पहुँचने का मान और अपने प्रियतम से सदा के लिए मिलाप का सौभाग्य प्राप्त हो गया है। वह कहते हैं कि संतों की संगति से सतगुरु मिलता है और सतगुरु से मुक्तिरूपी कामधेनु मिलती है।

गुरु साहिब जीव को झूठे, कच्चे या अधूरे गुरुओं से सावधान करते हैं। दरअसल जो स्वयं अंधे हैं वे दूसरों को मार्ग कैसे दिखा सकते हैं? इसलिए सतगुरु के चुनाव में पूरी सावधानी और सूझबूझ बरतनी चाहिए। अधूरे गुरु की संगति से बचना चाहिए और केवल पूरे गुरु का ही पल्ला पकड़ना चाहिए। पूरे सतगुरु की निशानी यह है कि वह स्वयं शब्द की कमाई करता है और अपने शिष्यों व सेवकों को भी सच्चे शब्द की कमाई की युक्ति बताता है। वह हौंमैं को मारकर सहज अवस्था प्राप्त कर चुका होता है और यही मार्ग वह अपने शिष्यों को भी दिखाता है।

सतगुरु शिष्य की आत्मा को शब्द में लीन होने के योग्य बनाता है, क्योंकि जो भी शब्द में मर जाता है यानी लीन हो जाता है उसको फिर से चौरासी के चक्र में नहीं आना पड़ता। इसके विपरीत, शब्द (नाम) से बिछुड़े हुए व्यक्ति अनंत काल तक जन्म-मरण की क़ैद में फँसे रहते हैं:

सुण मन भूले बावरे गुर की चरणी लाग॥
हर जप नाम धिआए तू जम डरपै दुख भाग॥

दूख घणो दोहागणी किउ थिर रहै सुहाग॥
भाई रे अवर नाही मै थाउ॥
मै धन नाम निधान है गुर दीआ बल जाउ॥
गुरमत पत साबास तिस तिस कै संग मिलाउ॥
तिस बिन घड़ी न जीवऊ बिन नावै मर जाउ॥
मै अंधुले नाम न वीसरै टेक टिकी घर जाउ॥
गुरू जिना का अंधुला चेले नाही ठाउ॥
बिन सतगुर नाउ न पाईऐ बिन नावै किआ सुआउ॥
आए गइआ पछुतावणा जिउ सुंञै घर काउ॥
बिन नावै दुख देहुरी जिउ कलर की भीत॥
तब लग महल न पाईऐ जब लग साच न चीत॥
सबद रपै घर पाईऐ निरबाणी पद नीत॥
हउ गुर पूछउ आपणे गुर पुछ कार कमाउ॥
सबद सलाही मन वसै हउमै दुख जल जाउ॥
सहजे होए मिलावड़ा साचे साच मिलाउ॥
सबद रते से निरमले तज काम क्रोध अहंकार॥
नाम सलाहन सद सदा हर राखह उर धार॥
सो किउ मनहो विसारीऐ सभ जीआ का आधार॥
सबद मरै सो मर रहै फिर मरै न दूजी वार॥
सबदै ही ते पाईऐ हर नामे लगै पिआर॥
बिन सबदै जग भूला फिरै मर जनमै वारो वार॥
सभ सालाहै आप कउ वडहो वडेरी होए॥
गुर बिन आप न चीनीऐ कहे सुणे किआ होए॥
नानक सबद पछाणीऐ हउमै करै न कोए॥[2]

बिन गुर प्रेम न पाईऐ

जिस स्त्री का पति से मिलाप नहीं होता, उसका हार-शृंगार व्यर्थ है। वह चाहे जितने गहने-कपड़े पहन ले, उसके मन को शांति नहीं मिल सकती।

पति के बिना उसकी उदासी दूर नहीं हो सकती और उस दुहागिन को बहुत दुःख सहना पड़ता है।

जीवात्मारूपी स्त्री प्रेम और भक्ति द्वारा ही अपने प्रभुरूपी प्रियतम से मिल सकती है, परंतु सतगुरु के बिना भक्ति की सच्ची युक्ति का पता नहीं लगता। सतगुरु के बिना हृदय में परमात्मा का प्यार नहीं जागता। सतगुरु की संगति और सेवा द्वारा ही मन को सच्ची ख़ुशी और शांति नसीब होती है।

जिस स्त्री (जीवात्मा) के हृदय में सच्चा प्रेम, विरह और तड़प है, उसके प्रेम को ज़रूर फल लगता है। उसका हृदय खिला रहता है और वह सदा आनंद में मग्न रहती है। परंतु प्रियतम को रिझाने के लिए मन और हौंमैं को मारना पड़ता है। फिर आत्मा और परमात्मा मोतियों की तरह एक ही लड़ी में पिरोए जाते हैं। ऐसी गुरुमुख आत्मा का मन निश्चल हो जाता है, क्योंकि उसको नाम का स्थिर आधार मिल जाता है।

जो मनमुख होता है उसका मन सदा चंचल रहता है। वह संसार में दुःखी रहता है और रोता हुआ ही यहाँ से उठ जाता है। उसका जीवन निरर्थक है। उसके जीवन का मनोरथ कभी पूरा नहीं होता। परंतु जिसने शब्द को पहचान लिया है और अपने आप को पूरी तरह शब्द में लीन कर दिया है, उस पर संसार के उतार-चढ़ाव और सुख-दुःख का प्रभाव नहीं होता। उसको काल और माया नहीं सता सकते क्योंकि वह मन, माया, समय और स्थान के बंधनों से ऊपर उठ जाता है।

संसार में नामरूपी सच का व्यापार करनेवाले यहाँ से धनवान होकर जाते हैं। उनका सतगुरु ही उनकी असली राशि या सच्ची पूँजी होता है। सतगुरु पूर्ण होता है और हर प्रकार से निर्मल होता है। जिसको ऐसा पूरा गुरु मिल जाए जिसमें तिल भर भी लालच न हो, उस जीव को नाम यानी परमात्मारूपी सच्ची पूँजी मिल जाती है। इसलिए उसकी संगति में आनेवाले भी आशा-तृष्णा और लोभ-मोह की मलिनता से छुटकारा पा लेते हैं। यह कार्य ग्रंथ-शास्त्रों की कथा-वार्ता या दूसरे कर्मकांड से पूरा नहीं होता। परमात्मा तो प्रेम और भक्ति से मिलता है

केवल सतगुरु की बताई युक्ति के अनुसार शब्द (नाम) की कमाई से ही मुक्ति प्राप्त की जा सकती है:

बिन पिर धन सीगारीऐ जोबन बाद खुआर॥
ना माणे सुख सेजड़ी बिन पिर बाद सीगार॥
दूख घणो दोहागणी ना घर सेज भतार॥
मन रे राम जपहो सुख होए॥
बिन गुर प्रेम न पाईऐ सबद मिलै रंग होए॥
गुर सेवा सुख पाईऐ हर वर सहज सीगार॥
सच माणे पिर सेजड़ी गूड़ा हेत पिआर॥
गुरमुख जाण सिञाणीऐ गुर मेली गुण चार॥
सच मिलहो वर कामणी पिर मोही रंग लाए॥
मन तन साच विगसिआ कीमत कहण न जाए॥
हर वर घर सोहागणी निरमल साचै नाए॥
मन मह मनूआ जे मरै ता पिर रावै नार॥*
इकत तागै रल मिलै गल मोतीअन का हार॥
संत सभा सुख ऊपजै गुरमुख नाम अधार॥
खिन मह उपजै खिन खपै खिन आवै खिन जाए॥
सबद पछाणै रव रहै ना तिस काल संताए॥
साहिब अतुल न तोलीऐ कथन न पाइआ जाए॥
वापारी वणजारिआ आए वजहो लिखाए॥
कार कमावहे सच की लाहा मिलै रजाए॥
पूंजी साची गुर मिलै ना तिस तिल न तमाए॥
गुरमुख तोल तुलाइसी सच तराजी तोल॥†
आसा मनसा मोहणी गुर ठाकी सच बोल॥

---

* **मन...मरै**=मन, मन में मर जाए अर्थात् मन अंदर अपने स्रोत (त्रिलोकी) में लीन हो जाए।

† **गुरमुख...तोल**=गुरुमुखों के द्वारा ही प्रभुरूपी सच को तराज़ू में तोलने की युक्ति आती है।

आप तुलाए तोलसी पूरे पूरा तोल॥
कथनै कहण न छुटीऐ ना पड़ पुसतक भार॥
काइआ सोच न पाईऐ बिन हर भगति पिआर॥
नानक नाम न वीसरै मेले गुर करतार॥[3]

सतगुर पूरा जे मिलै

यह शब्द पूरे सतगुरु की महिमा में लिखा गया है, जिसकी शरण मिलने के अनगिनत फल हैं। गुरु साहिब समझाते हैं कि पूरा सतगुरु मिल जाए तो परमात्मा के सच्चे ज्ञान का अमूल्य धन मिल जाता है। मन को सतगुरु की मति के अनुसार ढाल लें तो परमात्मा के सच्चे प्रेम की प्राप्ति हो जाती है। गुरु की दया से मुक्ति का अमूल्य पदार्थ मिल जाता है, फलस्वरूप सब पाप और अवगुण मिट जाते हैं।

सतगुरु मुक्ति प्राप्त करने का अनादि साधन है। ब्रह्मा, नारद और वेदव्यास भी साक्षी देते हैं कि सतगुरु के बिना मुक्ति की दात नहीं मिलती। शब्द की दिव्य-ध्वनि के बिना सच्चा ज्ञान नहीं मिल सकता और सतगुरु के बिना सच्चे शब्द से मिलाप नहीं होता। वास्तव में सतगुरु के बताए शब्द-अभ्यास द्वारा ही परमात्मा का सच्चा ज्ञान और सच्चा ध्यान प्राप्त होता है अथवा यों कहें कि अंदर शब्द-धुन से जुड़ना ही सच्चा अकथ-ज्ञान और ध्यान है। सतगुरु के पास नाम और प्रेम का निर्मल धन है, जिसके द्वारा वह पाँच असुरों यानी विकारों का नाश करके दुःखों को समाप्त कर देता है और सच्चे सुख की दात बख़्श देता है। यह दात उनको मिलती है जिनके भाग्य में परमात्मा ने स्वयं लिखा है।

संसाररूपी सागर बहुत विकराल है। इसके न इधर के किनारे का पता चलता है न उधर के। हमारे पास न नौका है, न पतवार और न ही कोई मल्लाह। केवल सतगुरुरूपी खेवट ही हमें इस भवसागर से पार उतार सकता है।

परमात्मा को भुलाना दुःखों को बुलावा देना है। परमात्मा को भूलने से सुख भाग जाते हैं और दुःख घेरा डाल लेते हैं। शरीर का कच्चा बर्तन

तड़क जाता है और मौत आकर झपट्टा मारती है। अंत समय में पछताने से कोई लाभ नहीं होगा। संसार की जिन वस्तुओं को हम सारी उमर मेरी-मेरी कहते रहते हैं, अंत समय उनमें से कोई भी हमारे साथ नहीं जाती। उस समय अपनी देह भी साथ नहीं देती, धन-दौलत, हाट-हवेली, पत्नी और संबंधी तो क्या साथ दे सकेंगे। शरीररूपी घड़ा टूटने पर बहुत दुःख होता है, उसे यमदूत पकड़कर ले जाते हैं और फिर जीव को पछताना पड़ता है। नाम के बिना हर प्रकार का धन नाशवान है।

मृत्यु के समय तो केवल नाम का धन ही साथ जाता है। पूरा सतगुरु ही एकमात्र साथी है जो अंत समय भी साथ जाता है। नाम और सतगुरु के बिना जीव माया के अँधेरे में ही भटकता रहता है।

जन्म-मरण, सुख-दुःख और हमारे प्रारब्ध का पहले ही निश्चय हो चुका है। प्रारब्ध का एक अक्षर भी मिटाया नहीं जा सकता। इसलिए इसको सब्र और संतोष से ख़ुशी-ख़ुशी भोग लेना चाहिए। परंतु इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि आगे बुरे कर्मों के बीज न बोएँ ताकि फिर उनकी फ़सल न काटनी पड़े। सतगुरु की बताई युक्ति के अनुसार शब्द की कमाई से हम कर्मों का जाल तोड़ सकते हैं और वापस जाकर परमात्मा में समा सकते हैं:

सतगुर पूरा जे मिलै पाईऐ रतन बीचार॥
मन दीजै गुर आपणे पाईऐ सरब पिआर॥
मुकत पदारथ पाईऐ अवगण मेटणहार॥
भाई रे गुर बिन गिआन न होए॥
पूछहो ब्रहमे नारदै बेद बिआसै कोए॥
गिआन धिआन धुन जाणीऐ अकथ कहावै सोए॥
सफलिओ बिरख हरीआवला छाव घणेरी होए॥
लाल जवेहर माणकी गुर भंडारै सोए॥
गुर भंडारै पाईऐ निरमल नाम पिआर॥
साचो वखर संचीऐ पूरै करम अपार॥

सुखदाता दुख मेटणो सतगुर असुर संघार॥
भवजल बिखम डरावणो ना कंधी ना पार॥
ना बेड़ी ना तुलहड़ा ना तिस वंझ मलार॥
सतगुर भै का बोहिथा नदरी पार उतार॥
इक तिल पिआरा विसरै दुख लागै सुख जाए॥
जिहवा जलउ जलावणी नाम न जपै रसाए॥
घट बिनसै दुख अगलो जम पकड़ै पछुताए॥
मेरी मेरी कर गए तन धन कलत न साथ॥
बिन नावै धन बाद है भूलो मारग आथ॥
साचउ साहिब सेवीऐ गुरमुख अकथो काथ॥
आवै जाए भवाईऐ पइऐ किरत कमाए॥
पूरब लिखिआ किउ मेटीऐ लिखिआ लेख रजाए॥
बिन हर नाम न छुटीऐ गुरमत मिलै मिलाए॥
तिस बिन मेरा को नही जिस का जीउ परान॥
हउमै ममता जल बलउ लोभ जलउ अभिमान॥
नानक सबद वीचारीऐ पाईऐ गुणी निधान॥[4]

ऐसी हर सिउ प्रीत कर

इस शब्द में गुरु साहिब ने कई उपमाओं द्वारा वक़्त के सतगुरु और शिष्य तथा जीव और परमेश्वर के सच्चे प्यार का भाव प्रकट करने का प्रयत्न किया है।

गुरु साहिब साधक को उपदेश देते हैं कि अपने प्रभु या सतगुरु को इस प्रकार प्यार करो, जिस प्रकार कमल का पानी से प्यार होता है। पानी की लहरें कमल को चाहे कितना ही झकझोरें, परंतु वह फिर भी अपने प्रियतम के प्यार में खिला रहता है। शिष्य का सतगुरु के प्रति ऐसा प्रेम होना चाहिए जैसा मछली का जल से है। जल जितना अधिक होता है, मछली उतनी अधिक प्रसन्न होती है। परंतु जब जल से बाहर निकालें तो वह तड़पकर मर जाती है। पानी के बिना मछली के हृदय की पीड़ा को

बस परमात्मा ही जानता है। जब तक हृदय में ऐसा तीव्र प्रेम उत्पन्न नहीं होता, तब तक मन व माया के बंधन नहीं टूट सकते और जन्म-मरण से छुटकारा नहीं हो सकता।

पपीहे का भी स्वाति बूँद से ऐसा ही प्रेम होता है। चाहे पानी का समुद्र भरा हो और पपीहा प्यास से मर रहा हो, पर वह उस पानी की एक बूँद भी स्वीकार नहीं करता। उसे तो केवल स्वाति बूँद ही चाहिए।

पानी का दूध से सच्चा प्रेम है। जब तक पानी है वह दूध को ताप नहीं लगने देता। वह दूध के लिए स्वयं अग्नि की तपन सहकर दूध को जलने से बचाता है। इसी प्रकार सच्चा प्रेमी भी अपने प्रियतम पर अपने आप को न्योछावर करने के लिए तैयार रहता है।

चकवी अपने चकवे के प्रेम में व्याकुल होकर सारी रात तड़पती रहती है। उसको पल भर भी चैन नहीं आता। वह सारी रात सूर्य की प्रतीक्षा में जागती है कि कब सूर्य का प्रकाश हो और उसका चकवे से मिलाप हो। वह चकवे को दूर समझकर बार-बार उसकी ओर उड़कर जाती है, जबकि चकवा उड़कर उसके पास आ रहा होता है। इसी प्रकार मनमुख समझते हैं कि परमात्मा बहुत दूर है, परंतु गुरुमुख जानते हैं कि वह निकट से निकट है। मनमुख लोग अनेक हिसाब-किताब में पड़े रहते हैं कि हम ऐसा करेंगे या वैसा करेंगे, परंतु होता वही है जो परमात्मा की रज़ा है।

कोई भी परमात्मा का मूल्य नहीं आँक सकता। उसको जान सकना मनुष्य के वश की बात नहीं है। सतगुरु के उपदेश पर अमल करने से ही उस अथाह परमात्मा की थाह पाई जा सकती है। जब सौभाग्य से पूरा गुरु मिल जाता है तो हृदय में प्रभु का सच्चा प्यार जाग उठता है। सतगुरु से सच्चा ज्ञान प्राप्त होता है और त्रिलोकी के सारे भेद खुली किताब के समान हो जाते हैं।

सब गुणों और अच्छाइयों का स्रोत नाम है। यदि कोई गुणों का ग्राहक है और सच्चे अर्थों में नेक बनना चाहता है तो उसे कभी भी नाम को नहीं भुलाना चाहिए। नाम ही मुक्ति का दाता है और नाम ही अमर जीवन की दात प्रदान करता है।

गुरु साहिब समझाते हैं कि संसार के जीव पक्षियों की भाँति जीवनरूपी सरोवर के किनारे क्रीड़ा करके यहाँ से चले जाते हैं। उनको जो थोड़ा-सा समय यहाँ रहने के लिए मिलता है, वे उसका सही उपयोग नहीं करते। वे जीवन की बाज़ी हार जाते हैं। परंतु जो जीव परमात्मा की दया-मेहर द्वारा उस सच्चे प्रियतम से मिलाप कर लेते हैं, उनका जीवन सफल हो जाता है।

जीवन को सफल बनाने का यह कार्य सतगुरु की सहायता से ही पूरा होता है, क्योंकि सतगुरु के बिना न तो हृदय में परमात्मा की सच्ची प्रीति पैदा होती है, न हौंमैं की मैल दूर होती है और न ही शब्द का भेद मिलता है। जब आत्मा को अपने आप की और अपने असल (मूल) की पहचान हो जाती है तो वह शब्द में समाकर निश्चल हो जाती है। स्वयं की पहचान करने का यह सौभाग्य सतगुरु द्वारा मिलता है, दूसरा कोई यह भेद नहीं जानता। मनमुखों को इस भेद की समझ नहीं होती, इसलिए वे सच्चे परमात्मा से बिछुड़े रहते हैं। वे सदा जन्म-मरण और सुख-दुःख की चोटें खाते रहते हैं। परंतु जिनके अंदर शब्द बस गया है और जिनका सच्चे प्रियतम से मिलाप हो गया है, उनकी महिमा बखान से परे है।

गुरु साहिब कहते हैं कि परमात्मा के घर पहुँचने का एकमात्र मार्ग दसवाँ द्वार है। गुरुमुख इस मार्ग द्वारा अपने घर पहुँच जाते हैं, परंतु मनमुख बाहर ही भटकते रहते हैं:

रे मन ऐसी हर सिउ प्रीत कर जैसी जल कमलेह॥
लहरी नाल पछाड़ीऐ भी विगसै असनेह॥
जल मह जीअ उपाए कै बिन जल मरण तिनेह॥
मन रे किउ छूटह बिन पिआर॥
गुरमुख अंतर रव रहिआ बखसे भगति भंडार॥
रे मन ऐसी हर सिउ प्रीत कर जैसी मछुली नीर॥
जिउ अधिकउ तिउ सुख घणो मन तन सांत सरीर॥
बिन जल घड़ी न जीवई प्रभ जाणै अभ पीर॥
रे मन ऐसी हर सिउ प्रीत कर जैसी चात्रिक मेह॥

सर भर थल हरीआवले इक बूंद न पवई केह॥
करम मिलै सो पाईऐ किरत पइआ सिर देह॥
रे मन ऐसी हर सिउ प्रीत कर जैसी जल दुध होए॥
आवटण आपे खवै दुध कउ खपण न दे॥
आपे मेल विछुंनिआ सच वडिआई दे॥
रे मन ऐसी हर सिउ प्रीत कर जैसी चकवी सूर॥
खिन पल नीद न सोवई जाणै दूर हजूर॥
मनमुख सोझी ना पवै गुरमुख सदा हजूर॥
मनमुख गणत गणावणी करता करे सो होए॥
ता की कीमत ना पवै जे लोचै सभ कोए॥
गुरमत होए त पाईऐ सच मिलै सुख होए॥
सचा नेह न तुटई जे सतगुर भेटै सोए॥
गिआन पदारथ पाईऐ त्रिभवण सोझी होए॥
निरमल नाम न वीसरै जे गुण का गाहक होए॥
खेल गए से पंखणूं जो चुगदे सर तल॥
घड़ी कि मुहत कि चलणा खेलण अज कि कल॥
जिस तूं मेलह सो मिलै जाए सचा पिड़ मल॥
बिन गुर प्रीत न ऊपजै हउमै मैल न जाए॥
सोहं आप पछाणीऐ सबद भेद पतीआए॥
गुरमुख आप पछाणीऐ अवर कि करे कराए॥
मिलिआ का किआ मेलीऐ सबद मिले पतीआए॥
मनमुख सोझी ना पवै वीछुड़ चोटा खाए॥
नानक दर घर एक है अवर न दूजी जाए॥[5]

गुरुमुख

गुरुमुख सदा सच और ज्ञान के वचन बोलता है। उसने अपनी रज़ा को कुलमालिक की रज़ा में लीन कर दिया है। उसने परमात्मा की शरण दृढ़ कर ली है, जिससे वह सब सांसारिक इच्छाओं और तृष्णाओं से मुक्त हो

चुका है। वह सचखंड पहुँच चुका है, इसलिए काल उसके निकट नहीं पहुँच सकता। मनमुख माया के मोह का शिकार होता है। वह सदा आशा और निराशा के थपेड़े खाता है और चौरासी के चक्र में फँसा रहता है।

गुरु नानक साहिब उपदेश करते हैं कि अभ्यासी को चाहिए कि शब्द के अमृत को पीकर अमर हो जाए। इस प्रकार उसे सहज आनंद की प्राप्ति हो जाएगी।

इस अवस्था को प्राप्त करने के लिए सतगुरु की शरण लेनी आवश्यक है। गुरु साहिब कहते हैं कि सतगुरु से नाम का भेद अर्थात् नामदान लेकर, सुरत को अंदर एकाग्र करके उसे नाम के साथ जोड़ना चाहिए। सब कुछ गुरु को सौंपकर उसकी मति पर चलना चाहिए। इस प्रकार अपने आप की पहचान हो जाती है, परमात्मा का भेद मिल जाता है और रचना की हर वस्तु और हर व्यक्ति में एक ही परमात्मा की ज्योति दिखाई देने लगती है। जब जीव शब्द से अभेद हो जाता है तो उसको पता चलता है कि मेरा और हरि का मूल रूप एक है। आप कहते हैं कि मुक्ति का यही एक अचूक मार्ग है, जिसमें किसी को कभी असफलता नहीं मिली। सतगुरु की अपार कृपा है कि उसने सब बंधन काट दिए और अलख को लखा दिया:

बोलह साच मिथिआ नही राई॥
चालह गुरमुख हुकम रजाई॥
रहहे अतीत सचे सरणाई॥
सच घर बैसै काल न जोहै॥
मनमुख कउ आवत जावत दुख मोहै॥
अपिउ पीअउ अकथ कथ रहीऐ॥
निज घर बैस सहज घर लहीऐ॥
हर रस माते इह सुख कहीऐ॥
गुरमत चाल निहचल नही डोलै॥
गुरमत साच सहज हर बोलै॥
पीवै अंम्रित तत विरोलै॥

सतगुर देखिआ दीखिआ लीनी॥
मन तन अरपिओ अंतरगत कीनी॥
गत मित पाई आतम चीनी॥
भोजन नाम निरंजन सार॥
परम हंस सच जोत अपार॥
जह देखउ तह एकंकार॥
रहै निरालम एका सच करणी॥
परम पद पाइआ सेवा गुर चरणी॥
मन ते मन मानिआ चूकी अहं भ्रमणी॥
इन बिध कउण कउण नही तारिआ॥
हर जस संत भगत निसतारिआ॥
प्रभ पाए हम अवर न भारिआ॥
साच महल गुर अलख लखाइआ॥
निहचल महल नही छाइआ माइआ॥
साच संतोखे भरम चुकाइआ॥
जिन कै मन वसिआ सच सोई॥
तिन की संगत गुरमुख होई॥
नानक साच नाम मल खोई॥[6]

हंस और बगुला

इस शब्द में कई प्रतीकों का प्रयोग किया गया है। सतगुरु समुद्र है जो हीरे और मोतियों से भरपूर है। परमात्मा का भक्त यानी गुरुमुख हंस है। समुद्र में हंस हैं और हंसों में समुद्र है अर्थात् संतजन प्रभुरूपी समुद्र में से आते हैं और जब वे मनुष्य-लोक में साधारण लोगों की भाँति दिखाई देते हैं तो भी वह प्रभुरूपी समुद्र उनमें समाया हुआ होता है। मनमुख बगुले के समान हैं, जो समुद्र से दूर मायारूपी कीचड़ से भरे तालाब (संसार) के किनारे रहते हैं।

मालिक के सच्चे भक्त (गुरुमुख) गुरुरूपी समुद्र में से मोती चुगते हैं। मनमुख बगुलों की तरह विषय-विकारों के कीचड़ में सने रहते हैं।

गुरुमुख अंदर सच की पहचान करना चाहते हैं, परंतु मनमुखों का ध्यान सदा इंद्रियों के भोगों की ओर होता है। गुरुमुख आवागमन के बंधन तोड़ लेते हैं, परंतु मनमुख सदा चौरासी में भटकते रहते हैं। प्रेम के रंग में रँगे प्रेमी सेवक, सतगुरु में समाकर उसी का रूप हो जाते हैं। जीवात्मारूपी बूँद सदा के लिए सतगुरुरूपी समुद्र में लीन हो जाती है। बूँद सागर में समा जाती है और सागर बूँद में। दोनों में कोई भेद नहीं रहता।

गुरु साहिब परमात्मा को सच्चा योगी कहते हैं, जो सृष्टि के कण-कण में समाया होने के बावजूद इससे निर्लिप्त है। सारी त्रिलोकी उसके हुक्म में चलती है। वह सच्चे आनंद का अखूट स्रोत है। नर-नारी तो क्या, देवी-देवता भी उस एक के सहारे हैं। जब हम हौंमैं के रोग को नष्ट कर लेते हैं तो अंतर में उस अलख पुरुष के दर्शन हो जाते हैं।

मृत्यु अटल है। कोई प्रयत्न या उपाय कभी किसी को मौत के पंजे से नहीं छुड़ा सकता। इसलिए मनुष्य-जन्म के अमूल्य अवसर को व्यर्थ बरबाद नहीं करना चाहिए। अपना पूरा प्रयत्न सतगुरु के उपदेश के अनुसार शब्द की कमाई में लगाना चाहिए ताकि संसार में आने और मनुष्य-चोला धारण करने का असली उद्देश्य पूरा हो सके:

गुर सागर रतनी भरपूरे॥ अंम्रित संत चुगह नही दूरे॥
हर रस चोग चुगह प्रभ भावै॥ सरवर मह हंस प्रानपत पावै॥
किआ बग बपुड़ा छपड़ी नाए॥ कीचड़ डूबै मैल न जाए॥
रख रख चरन धरे वीचारी॥ दुबिधा छोड भए निरंकारी॥
मुकत पदारथ हर रस चाखे॥ आवण जाण रहे गुर राखे॥
सरवर हंसा छोड न जाए॥ प्रेम भगति कर सहज समाए॥
सरवर मह हंस हंस मह सागर॥ अकथ कथा गुर बचनी आदर॥
सुंन मंडल इक जोगी बैसे॥ नार न पुरख कहहो कोऊ कैसे॥
त्रिभवण जोत रहे लिव लाई॥ सुर नर नाथ सचे सरणाई॥
आनंद मूल अनाथ अधारी॥ गुरमुख भगति सहज बीचारी॥
भगति वछल भै काटणहारे॥ हउमै मार मिले पग धारे॥

अनिक जतन कर काल संताए॥ मरण लिखाए मंडल मह आए॥
जनम पदारथ दुबिधा खोवै॥ आप न चीनस भ्रम भ्रम रोवै॥
कहतउ पड़तउ सुणतउ एक॥ धीरज धरम धरणीधर टेक॥
जत सत संजम रिदै समाए॥ चउथे पद कउ जे मन पतीआए॥
साचे निरमल मैल न लागै॥ गुर कै सबद भरम भउ भागै॥
सूरत मूरत आद अनूप॥ नानक जाचै साच सरूप॥[7]

माणस जनम दुलंभ

मनुष्य-जन्म अमूल्य वरदान है। केवल गुरुमुख या मालिक के सच्चे भक्त ही इसकी असली महिमा जानते हैं, बाक़ी लोग इसको कौड़ियों के मोल खो देते हैं।

जब संसार से जाने का समय आता है तो गुरुमुख गुणों के भंडार समेटकर साथ ले जाते हैं। उनको कुलमालिक की दरगाह में मान-सम्मान मिलता है और शब्दरूपी निर्मल वाणी द्वारा मायारहित प्रभु की पहचान हो जाती है।

संसार में हमारा असली शत्रु मन है। मन बहुत अड़ियल है, परंतु जब परमात्मा का सच्चा प्यार अंदर जागता है तो मन सहज ही वश में आ जाता है। यह कार्य सतगुरु की दया से पूर्ण होता है। परंतु जो लोग परमेश्वर और सतगुरु से विमुख रहते हैं वे सदा भ्रमों की भूल-भुलैयाँ में भटकते रहते हैं। ऐसे मनमुख प्रभु मिलाप का आनंद अनुभव नहीं कर पाते। वे तंग होकर मरते हैं। गुरुमुखों के हृदय नाम और भक्ति के रंग में रँगे होते हैं, परंतु मनमुखों के हृदय पर पापों के गहरे दाग़ लगे होते हैं। उनको प्रभुरूपी प्रियतम के प्यार का अमृत पीने को नहीं मिलता। गुरु साहिब कहते हैं कि वह गुणनिधान मेरे अंदर बस गया है, इसलिए मैं चाहता हूँ कि मेरे अंदर भरपूर गुण हो जाएँ। आप परमात्मा के आगे विनती करते हैं: हे प्रभु! मेरी यही विनती है कि तू कृपा करके मुझे अपने नाम में निवास दे ताकि मैं सदा तेरे गुण गाता रहूँ। मुझे इतना बल बख़्श कि मैं सदा सतगुरु के हुक्म में रहूँ और सतगुरु के बताए हुए मार्ग पर चलता हुआ अपनी सुरत को शब्द से जोड़ लूँ, ताकि मेरा जन्म-मरण के चक्र से सदा के लिए छुटकारा हो जाए:

माणस जनम दुलंभ गुरमुख पाइआ॥
मन तन होए चुलंभ जे सतगुर भाइआ॥
चलै जनम सवार वखर सच लै॥
पत पाए दरबार सतगुर सबद भै॥
मन तन सच सलाहे साचे मन भाइआ॥
लाल रता मन मानिआ गुर पूरा पाइआ॥
हउ जीवा गुण सार अंतर तू वसै॥
तूं वसह मन माहे सहजे रस रसै॥
मूरख मन समझाए आखउ केतड़ा॥
गुरमुख हर गुण गाए रंग रंगेतड़ा॥
नित नित रिदै समाल प्रीतम आपणा॥
जे चलह गुण नाल नाही दुख संतापणा॥
मनमुख भरम भुलाणा ना तिस रंग है॥
मरसी होए विडाणा मन तन भंग है॥
गुर की कार कमाए लाहा घर आणिआ॥
गुरबाणी निरबाण सबद पछाणिआ॥
इक नानक की अरदास जे तुध भावसी॥
मै दीजै नाम निवास हर गुण गावसी॥[8]

मोल खरीदा दास

इस शब्द में सतगुरु के प्रति दीनतापूर्ण प्रेम प्रकट किया गया है। शिष्य कहता है कि हे सतगुरु! मैं तेरा ख़रीदा हुआ ग़ुलाम हूँ। मैं ही नहीं बल्कि मेरे माता-पिता भी तेरे दास हैं। इस प्रकार मैं तो संतान ही गुरु के चाकरों की हूँ। गुरु के शब्द के बदले मैंने अपने आप को उसकी दुकान पर बेच दिया है।

सेवक कहता है कि मैं सतगुरु का लाला गोला हूँ अर्थात् दास और ग़ुलाम हूँ। सतगुरु जो भी कार्य मेरे ज़िम्मे करे वही मैं करने के लिए तैयार हूँ। गुरु के पीने के लिए पानी भर कर लाऊँगा, उसके भोजन के लिए आटा पीसूँगा, गर्मी हो तो उसको पंखा झुलाऊँगा और वह थका हुआ

हो तो उसके चरण दबाऊँगा। शिष्य कहता है कि मैं तो किसी प्रकार भी सतगुरु की सेवा के योग्य नहीं था, उसने स्वयं ही दया करके मुझे अपने चरणों में लगा लिया है।

यह शब्द गहरी भक्ति की भावना के साथ लिखा गया है, जिसमें गुरु साहिब गुरु और परमात्मा को एक ही रूप मानकर सतगुरु की महिमा करते हैं:

मुल खरीदी लाला गोला मेरा नाउ सभागा॥
गुर की बचनी हाट बिकाना जित लाइआ तित लागा॥
तेरे लाले किआ चतुराई॥ साहब का हुकम न करणा जाई॥
मा लाली पिउ लाला मेरा हउ लाले का जाइआ॥
लाली नाचै लाला गावै भगति करउ तेरी राइआ॥
पीअह त पाणी आणी मीरा खाहे त पीसण जाउ॥
पखा फेरी पैर मलोवा जपत रहा तेरा नाउ॥
लूण हरामी नानक लाला बखसिह तुध वडिआई॥
आद जुगाद दइआपत दाता तुध विण मुकत न पाई॥[9]

संसार-सागर

गुरु नानक साहिब इस संसार की वास्तविकता का वर्णन करते हैं और इसमें रहनेवाले लोगों की दशा का सजीव चित्रण करते हैं। आप इस संसार की तुलना एक विकराल समुद्र से करते हैं जिसमें मनरूपी नाव बेसहारा बही चली जा रही है। इस नाव में कर्मों का भारी बोझ लदा हुआ है। इस समुद्र का न इधर का किनारा दिखाई देता है और न उधर का। किसी को कुछ पता नहीं कि दुनिया कब बनी है और कब ख़त्म होगी। जीवन की इस नाव में न कोई मल्लाह है और न ही उसमें कोई बाँस या पतवार है। फिर समुद्र से पार उतरने की आशा कैसे रखी जा सकती है?

गुरु साहिब कहते हैं कि ऐसी हालत के बावजूद पार उतरने का एक साधन अवश्य है। यदि इस बेसहारा यात्री को कोई पूरा सतगुरु मिल

जाए तो वह अवश्य इसको समुद्र से पार कर सकता है। सतगुरु खेवट का काम करेगा और शब्द बाँस या पतवार का। जो यात्री पूरे सतगुरु की सहायता से एक बार इस भवसागर से पार अपनी मंज़िल पर पहुँच जाएगा, वह सदा के लिए समुद्र के ख़तरों और तूफ़ानों से बच जाएगा। दूसरे शब्दों में, उसको सदा के लिए जन्म-मरण के चक्र से मुक्ति मिल जाएगी। वह समय, स्थान, आवागमन और मन-माया के बंधनों से सदा के लिए आज़ाद हो जाएगा। उसको निर्मल आनंद की सहज अवस्था प्राप्त हो जाएगी।

गुरु साहिब इस सच की ओर संकेत करते हैं कि जैसे गारुड़ी साँप का ज़हर उतारता है, उसी तरह गुरुरूपी गारुड़ी मनरूपी साँप को वश में करता है यानी मन जब भी वश में आता है नाम का अमृत पीकर आता है। जैसे पिटारी में बंद करने से साँप का विष या रोष नहीं जाता, उसी प्रकार मन को बलपूर्वक सदा के लिए दबाकर नहीं रखा जा सकता। अंहकार मन में विष भरता है और परमात्मा से मिलाप की राह में सबसे बड़ी रुकावट बनकर खड़ा हो जाता है। परंतु जब हम शब्द को मन में बसा लेते हैं तो अहंभाव की जड़ कट जाती है।

गुरु साहिब उदाहरण देते हैं कि जैसे मगरमच्छ मांस के लालच में कुंडी (बंसी) को गले में निगल लेता है और वह लोहे का काँटा उसके गले में फँस जाता है, उसी तरह यह जीव दुर्गति का शिकार होकर दु:ख की चोटें खाता है। शब्द के अंत में गुरु साहिब आत्मा की तोते से और शरीर की उस पिंजरे से तुलना करते हैं, जिसमें आत्मारूपी तोता क़ैद है। इस शरीररूपी पिंजरे के अंदर शब्द यानी नामरूपी सत्य का चोगा है। यदि आत्मारूपी तोता इस सच का चोगा चुगे और अंदर इस अमृत को पीना शुरू कर दे तो यह सदा के लिए देह के बंधनों से आज़ाद हो जाए:

बिख बोहिथा लादिआ दीआ समुंद मंझार॥
कंधी दिस न आवई ना उरवार न पार॥

वंझी हाथ न खेवटू जल सागर असराल॥
बाबा जग फाथा महा जाल॥
गुर परसादी उबरे सचा नाम समाल॥
सतगुरू है बोहिथा सबद लंघावणहार॥
तिथै पवण न पावको ना जल ना आकार॥
तिथै सचा सच नाए भवजल तारणहार॥
गुरमुख लंघे से पार पए सचे सिउ लिव लाए॥
आवा गउण निवारिआ जोती जोत मिलाए॥
गुरमती सहज ऊपजै सचे रहै समाए॥
सप पिड़ाई पाईऐ बिख अंतर मन रोस॥
पूरब लिखिआ पाईऐ किस नो दीजै दोस॥
गुरमुख गारड़ जे सुणे मंने नाउ संतोस॥
मागरमछ फहाईऐ कुंडी जाल वताए॥
दुरमत फाथा फाहीऐ फिर फिर पछोताए॥
जंमण मरण न सुझई किरत न मेटिआ जाए॥
हउमै बिख पाए जगत उपाइआ सबद वसै बिख जाए॥
*जरा जोह न सकई सच रहै लिव लाए॥**
जीवन मुकत सो आखीऐ जिस विचहो हउमै जाए॥
धंधै धावत जग बांधिआ ना बूझै वीचार॥
जंमण मरण विसारिआ मनमुख मुगध गवार॥
गुर राखे से उबरे सचा सबद वीचार॥
सूहट पिंजर प्रेम कै बोलै बोलणहार॥
सच चुगै अंम्रित पीऐ उडै त एका वार॥
गुर मिलिऐ खसम पछाणीऐ कहो नानक मोख दुआर॥[10]

---

* जरा...लाए=सतगुरु के शब्द से लिव लगाने से बुढ़ापा निकट नहीं आता अर्थात् जीव सदा सचेत रहता है।

सतगुरु के बिना मुक्ति नहीं

यहाँ संसार में कोई हमारा सच्चा संबंधी नहीं है, क्योंकि कोई भी सदा हमारे साथ नहीं रहता। हमारा एक ही सच्चा संबंधी वह प्रभु है, जिससे सतगुरु की दया-मेहर द्वारा ही मिलाप होता है। गुरु साहिब अपने सतगुरु की बड़ाई करते हुए कहते हैं कि सतगुरु की सहायता के बिना मेरा जन्म-मरण का चक्र कभी समाप्त नहीं हो सकता था।

गुरु साहिब जीवात्मा को 'धन' या पत्नी और कुलमालिक परमात्मा को पति या कंत कहकर संबोधित करते हैं। आप कहते हैं कि केवल इन दोनों का ही आपस में सच्चा और स्थायी रिश्ता है। जीवात्मारूपी पत्नी अपने परमात्मारूपी पति के मिलाप में ही सच्चे सुख का अनुभव कर सकती है। आपके कहने का भाव है कि जब एक बार आत्मा अपने आप को और अपने सच्चे पति को पहचान लेती है तो फिर इसका पति से कभी विछोह नहीं होता और वह दिन-रात सुखी रहती है।

सतगुरु नाविक है जो पुकार-पुकारकर कहता है कि जो भवसागर से पार जाना चाहते हैं, वे आकर मेरी नाव में सवार हो जाएँ। किसी को भी सतगुरु के बिना कभी मुक्ति प्राप्त नहीं हुई।

गुरु साहिब शब्द का अंत इस विचार के साथ करते हैं कि संसार में कोई बुरा नहीं है और कभी भी अपने आप को अच्छा नहीं समझना चाहिए। जीव हौंमैं का नाश करके मनुष्य से परमात्मा बन सकता है:

ना भैणा भरजाईआ ना से ससुड़ीआह॥
सचा साक न तुटई गुर मेले सहीआह॥
बलिहारी गुर आपणे सद बलिहारै जाउ॥
गुर बिन एता भव थकी गुर पिर मेलिम दितम मिलाए॥
फुफी नानी मासीआ देर जेठानड़ीआह॥
आवन वंञन ना रहन पूर भरे पहीआह॥
मामे तै मामाणीआ भाइर बाप न माउ॥
साथ लडे तिन नाठीआ भीड़ घणी दरिआउ॥

साचउ रंग रंगावलो सखी हमारो कंत॥
सच विछोड़ा ना थीऐ सो सहु रंग रवंत॥
सभे रुत्ती चंगीआ जित सचे सिउ नेह॥
सा धन कंत पछाणिआ सुख सुती निस डेह॥
पतण कूके पातणी वंञहो ध्रुक विलाड़॥
*पार पवंदड़े डिठ मै सतगुर बोहिथ चाड़॥**
हिकनी लदिआ हिक लद गए हिक भारे भर नाल॥
जिनी सच वणंजिआ से सचे प्रभ नाल॥
ना हम चंगे आखीअह बुरा न दिसै कोए॥
नानक हउमै मारीऐ सचे जेहड़ा सोए॥[11]

परमात्मा और सतगुरु

इस शब्द का आरंभ इस विचार के साथ होता है कि जो कुछ है सब परमात्मा का रूप है। वह परमात्मा दृश्यमान जगत के पीछे छिपा सत्य है। वह स्वयं ही रचयिता है और स्वयं ही रचना है। वह स्वयं ही गुरु है और स्वयं ही शिष्य है। वास्तव में सारी सृष्टि में वही अपने मूल रूप में समाया हुआ है, वह हमारे निकट से निकट है।

संत-सतगुरु हर युग में संसार में आते हैं और इसकी शोभा बढ़ाते हैं। संसार पूरे सतगुरु से कभी ख़ाली नहीं होता। वे सदा अपनी लिव परमात्मा से जोड़कर रखते हैं, इसलिए संतजन स्वयं पापों की मैल से मुक्त होते हैं और वे अपने शिष्यों के पापों की भी सब मलिनता धो देते हैं।

जो साकत यानी मनमुख झूठ, हौंमैं और द्वैत के मार्ग पर चलते हैं वे काल के फंदे में रहते हैं, उनके लिए इस शब्द में यह उपदेश भी किया गया है कि जीवन नाशवान है। समय बहुत थोड़ा और क़ीमती है, इसको झूठ और व्यर्थ की बातों या निंदा-चुगली में ही नहीं खो देना चाहिए। झूठे को तो काल झपटकर पकड़ता है। मनमुख विकारों की भड़कती आग में जल

---

* पार...चाड़=मैंने जीव को सतगुरु के जहाज़ पर चढ़कर भवसागर से पार होते देखा है।

जाते हैं। इसलिए सत्य के मार्ग पर चलो, प्रभु को अपने अंदर पहचानो, वह दूर नहीं है। अंतर्दृष्टि का प्रयोग करके उसके शब्द की आवाज़ को सुनो। ऐसा करनेवाले गुरुमुखों के लिए भवसागर तरने में कोई विघ्न नहीं पड़ता।

गुरु साहिब इस बात पर ज़ोर देते हैं कि केवल शब्द (नाम) की कमाई द्वारा ही परमात्मा से मिलाप हो सकता है, जिसकी युक्ति का पूरे गुरु से पता लगता है। ग्रंथ-पोथियों के पाठ से पाँचों विकारों से छुटकारा नहीं मिल सकता, जबकि पूरे सतगुरु के सेवक अंदर ही परमात्मा से मिलाप कर लेते हैं। सत्संगति द्वारा उनको सारवस्तु प्राप्त हो जाती है। जब तक सतगुरु की दया-मेहर नहीं होती, जीव किसी भी हालत में नरकों के दु:खों से बच नहीं सकता। गुरु साहिब शब्द का अंत इस विचार के साथ करते हैं कि पूरा सतगुरु स्वयं तो तर ही गया है, वह अपने कुल, शिष्यों तथा सेवकों को भी तार लेता है:

आपे करता पुरख बिधाता॥ जिन आपे आप उपाए पछाता॥
आपे सतगुर आपे सेवक आपे स्रिसट उपाई हे॥
आपे नेड़ै नाही दूरे॥ बूझह गुरमुख से जन पूरे॥
तिन की संगत अहिनिस लाहा गुर संगत एह वडाई हे॥
जुग जुग संत भले प्रभ तेरे॥ हर गुण गावह रसन रसेरे॥
उसतत करह परहर दुख दालद जिन नाही चिंत पराई हे॥
ओए जागत रहहे न सूते दीसह॥ संगत कुल तारे साच परीसह॥
कलिमल मैल नाही ते निरमल ओए रहहे भगति लिव लाई हे॥
बूझहो हर जन सतगुर बाणी॥ एह जोबन सास है देह पुराणी॥
आज काल मर जाईऐ प्राणी हर जप जप रिदै धिआई हे॥
छोडहो प्राणी कूड़ कबाड़ा॥ कूड़ मारे काल उछाहाड़ा॥
साकत कूड़ पचह मन हउमै दुहु मारग पचै पचाई हे॥
छोडिहो निंदा तात पराई॥ पड़ पड़ दझह सात न आई॥
मिल सतसंगत नाम सलाहहो आतम राम सखाई हे॥
छोडहो काम क्रोध बुरिआई॥ हउमै धंध छोडहो लंपटाई॥

सतगुर सरण परहो ता उबरहो इउ तरीऐ भवजल भाई हे॥
आगै बिमल नदी अगन बिख झेला॥*
तिथै अवर न कोई जीउ इकेला॥
भड़ भड़ अगन सागर दे लहरी पड़ दझह मनमुख ताई हे॥
गुर पह मुकत दान दे भाणै॥ जिन पाइआ सोई बिध जाणै॥
जिन पाइआ तिन पूछहो भाई सुख सतगुर सेव कमाई हे॥
गुर बिन उरझ मरह बेकारा॥ जम सिर मारे करे खुआरा॥
बाधे मुकत नाही नर निंदक डूबह निंद पराई हे॥
बोलहो साच पछाणहो अंदर॥ दूर नाही देखहो कर नंदर॥
बिघन नाही गुरमुख तर तारी इउ भवजल पार लंघाई हे॥
देही अंदर नाम निवासी॥ आपे करता है अबिनासी॥†
ना जीउ मरै न मारिआ जाई कर देखै सबद रजाई हे॥
ओह निरमल है नाही अंधिआरा॥ ओह आपे तखत बहै सचिआरा॥
साकत कूड़े बंध भवाईअह मर जनमह आई जाई हे॥
गुर के सेवक सतगुर पिआरे॥ ओए बैसह तखत सो सबद वीचारे॥
तत लहहे अंतरगत जाणह सतसंगत साच वडाई हे॥
आप तरै जन पितरा तारे॥ संगत मुकत सो पार उतारे॥
नानक तिस का लाला गोला जिन गुरमुख हर लिव लाई हे॥[12]

सरण परे गुरदेव तुमारी

यह शब्द सतगुरु के प्रति श्रद्धा-भक्ति और आभार के भाव से भरा हुआ है। सतगुरु सत्पुरुष के समान ही समर्थ होता है। वास्तव में गुरु साहिब ने

---

* **आगै...झेला**=नरकों की ओर संकेत करते हैं कि आगे आग की नदी है, जिसमें से ज़हर की लपटें निकल रही हैं।

† **देही...अबिनासी**=गुरु साहिब ने अन्य अनेक स्थानों पर भी नाम और परमात्मा का अर्थ एक ही रूप में प्रयोग किया है। नाम से आपका भाव कोई शब्द नहीं, बल्कि परमात्मा की कर्ता शक्ति है जो जगत की रचना करके इसके कण-कण में समाई हुई है और हर प्राणी के अंदर है।

इस शब्द में गुरु और गोबिंद (परमात्मा) को एक कहा है। आप कहते हैं कि सारी सृष्टि सतगुरु के अधीन है और हर स्थान पर उसके हुक्म का सिक्का चलता है। सतगुरु ही शिष्य को आंतरिक सुंदर रूहानी मंडल दिखाता है और शिष्य को अंतर में सच्चा अमृत पीने के योग्य बना देता है। सतगुरु ही शिष्य का अंतर में दसवाँ दरवाज़ा खोलता है, जिससे वह अंदर की मनमोहिनी ज्योति के दर्शन कर सकता है और अंदर ही पाँचों शब्दों की अलग-अलग धुनों को सुन सकता है। सांसारिक-वृत्ति वाला जीव यानी मनमुख सदा काम, क्रोध, लोभ, मोह और अहंकाररूपी पाँच विकारों का शिकार बना रहता है, जबकि सतगुरु का शिष्य इन विघ्नों पर विजय प्राप्त कर लेता है। इसलिए सतगुरु ही लोक और परलोक दोनों में हमारा सच्चा रखवाला, हितैषी और मित्र है:

सरण परे गुरदेव तुमारी॥ तू समरथ दइआल मुरारी॥
तेरे चोज न जाणै कोई तू पूरा पुरख बिधाता हे॥
तू आद जुगाद करह प्रतिपाला॥ घट घट रूप अनूप दइआला॥
जिउ तुध भावै तिवै चलावह सभ तेरो कीआ कमाता हे॥
अंतर जोत भली जगजीवन॥ सभ घट भोगै हर रस पीवन॥
आपे लेवै आपे देवै तिहु लोई जगत पित दाता हे॥
जगत उपाए खेल रचाइआ॥ पवणै पाणी अगनी जीउ पाइआ॥
देही नगरी नउ दरवाजे सो दसवा गुपत रहाता हे॥
चार नदी अगनी असराला॥ कोई गुरमुख बूझै सबद निराला॥
साकत दुरमत डूबह दाझह गुर राखे हर लिव राता हे॥
अप तेज वाए प्रिथमी आकासा॥ तिन मह पंच तत घर वासा॥
सतगुर सबद रहहे रंग राता तज माइआ हउमै भ्राता हे॥
इह मन भीजै सबद पतीजै॥ बिन नावै किआ टेक टिकीजै॥
अंतर चोर मुहै घर मंदर इन साकत दूत न जाता हे॥
दुंदर दूत भूत भीहाले॥ खिंचोताण करह बेताले॥
सबद सुरत बिन आवै जावै पत खोई आवत जाता हे॥

कूड़ कलर तन भसमै ढेरी॥ बिन नावै कैसी पत तेरी॥
बाधे मुकत नाही जुग चारे जमकंकर काल पराता हे॥
जम दर बाधे मिलह सजाई॥ तिस अपराधी गत नही काई॥
करण पलाव करे बिललावै जिउ कुंडी मीन पराता हे॥
साकत फासी पड़ै इकेला॥ जम वस कीआ अंध दुहेला॥
राम नाम बिन मुकत न सूझै आज काल पच जाता हे॥
सतगुर बाझ न बेली कोई॥ ऐथै ओथै राखा प्रभ सोई॥
राम नाम देवै कर किरपा इउ सललै सलल मिलाता हे॥
भूले सिख गुरू समझाए॥ उझड़ जादे मारग पाए॥
तिस गुर सेव सदा दिन राती दुख भंजन संग सखाता हे॥
गुर की भगति करह किआ प्राणी॥ ब्रहमै इंद्र महेस न जाणी॥
सतगुर अलख कहहो किउ लखीऐ जिस बखसे तिसह पछाता हे॥
अंतर प्रेम परापत दरसन॥ गुरबाणी सिउ प्रीत सो परसन॥
अहिनिस निरमल जोत सबाई घट दीपक गुरमुख जाता हे॥
भोजन गिआन महा रस मीठा॥ जिन चाखिआ तिन दरसन डीठा॥
दरसन देख मिले बैरागी मन मनसा मार समाता हे॥
सतगुर सेवह से परधाना॥ तिन घट घट अंतर ब्रहम पछाना॥
नानक हर जस हर जन की संगत दीजै
जिन सतगुर हर प्रभ जाता हे॥[13]

घर मह घर देखाए दे

गुरु नानक साहिब समझाते हैं कि सच्चा गुरु वह है जो जीव को शरीररूपी घर के अंदर ही अपना सच्चा घर दिखा दे। मनुष्य-शरीर वह अद्‌भुत महल है, जिसके अंदर दिन-रात पाँच शब्द बज रहे हैं। इसमें न केवल वे अनंत खंड-ब्रह्मांड ही समाए हुए हैं, जिनकी विशालता बुद्धि को चकरा देती है, बल्कि इसमें अनहद शब्द का इलाही राग भी गूँज रहा है। इसके अंदर ही सबसे ऊँचे मुक़ाम पर वह कुलमालिक परमात्मा, सुलतानी शान से अपने तख़्त पर विराजमान है।

इस सच्चे घर को जानेवाला मार्ग सुषुम्ना और सुन्न मंडल में से होकर गुज़रता है। सुषुम्ना में शब्द-धुन को सुनने से सुन्न मंडल (पारब्रह्म) में लिव लग जाती है यानी पारब्रह्म का मार्ग खुल जाता है। वहाँ अजपा जाप से जुड़कर जीव, सृष्टि के आदि उस प्रभु में समा जाता है। अपनी अंतिम रूहानी मंज़िल पर पहुँचकर आत्मा शब्द-रूप हो जाती है और इसको पूर्ण शांति और आनंद की सहज अवस्था प्राप्त हो जाती है। वहाँ पहुँचकर मन की सभी इच्छाओं का अंत हो जाता है और उसकी बाहरी संसार की ओर जाने की तृष्णा समाप्त हो जाती है। जीव का हृदय-कमल सीधा हो जाता है, यह नाम के अमृत से भर जाता है जिससे मन निश्चल हो जाता है। फिर आत्मा सदा के लिए परमपिता परमात्मा में समा जाती है और यही गुरुमुखों का सच्चा घर या निज धाम है। जब सतगुरु की सहायता से इसे निज घर में वास मिल जाता है, तो वहाँ कई गुरुमुख आत्माओं से मिलाप होता है।

कहा जाता है कि गुरु साहिब ने यह श्लोक एक विशेष अवसर पर फ़रमाया था। अपनी एक उदासी के दौरान आपकी मुलाक़ात बाबा फ़रीद की गद्दी के सूफ़ी फ़क़ीर शेख़ इब्राहीम से हुई। गुरु साहिब से हुई गोष्ठी के दौरान शेख़ इब्राहीम ने गुरु साहिब के आगे विनती की कि हमें यह उपदेश दो कि हमारा असली घर कौन-सा है और हम वहाँ किस तरह पहुँच सकते हैं। गुरु साहिब ने उत्तर में अपने विचार इस शब्द में प्रकट किए हैं:

घर मह घर देखाए दे सो सतगुर पुरख सुजाण॥
पंच सबद धुनिकार धुन तह बाजै सबद नीसाण॥
दीप लोअ पाताल तह खंड मंडल हैरान॥
तार घोर बाजिंत्र तह साच तखत सुलतान॥
सुखमन कै घर राग सुन सुंन मंडल लिव लाए॥
अकथ कथा बीचारीऐ मनसा मनह समाए॥
उलट कमल अंम्रित भरिआ इह मन कतहु न जाए॥
अजपा जाप न वीसरै आद जुगाद समाए॥

सभ सखीआ पंचे मिले गुरमुख निज घर वास॥
सबद खोज इह घर लहै नानक ता का दास॥[14]

प्रभु और गुरु

इस शब्द में ख़ास तौर पर परमात्मा का यशोगान है। शब्द के अंतिम अंश में प्रभुप्राप्ति के लिए सतगुरु की आवश्यकता पर ज़ोर दिया गया है।

गुरु नानक साहिब बताते हैं कि परमेश्वर का दरबार अनोखी शान वाला है। बड़े-बड़े पीर-पैग़ंबर, अवतार, देवी-देवता, जती-सती और योगी-त्यागी उसकी दहलीज़ पर सिर झुकाए हुए खड़े हैं। अनगिनत महापुरुष वहाँ श्रद्धा से ध्यानमग्न बैठे हैं। आश्चर्यमयी ऋद्धियों और सिद्धियों के मालिक, अनेक सिद्ध-साधक और उनके शिष्य, बल्कि अनेक दानव तक उस शाहों के शाह के हुक्म की प्रतीक्षा कर रहे हैं।

गुरु साहिब कहते हैं कि इनमें से किसी को भी पूरे सतगुरु के उपदेश के बिना सच्ची शांति नहीं मिल सकती और कोई भी शब्द की कमाई के बिना प्रभु की दरगाह में दाख़िल नहीं हो सकता:

तित दर लक्ख मुहंमदा लक्ख ब्रहमे बिशन महेश॥
लख लख राम वडीरीअहि लख राही लख वेस॥
लख लख ओथे जती है सतीअहु ते संनिआस॥
लख लख ओथे गोरखा लख लख नाथां नाथ॥
लख लख ओथे आसना गुर चेले रहिरास॥
लख लख देवी देवते लख दानो लख निवास॥
लख पीर पैकंबर अउलीए लख काजी मुलां सेख॥
किसै सांत न आईआ बिन सतगुर के उपदेश॥
साधक सिध अगणत है केते लख अपार॥
केतड़िआं अपवित्र है बिन सतिगुर सबद बीचार॥
सिर नाथां के एक नाथ सतिनाम करतार॥
नानक ता की कीमत न पवै बेअन्त बेशुमार॥[15]

शब्द

शब्द की महिमा

जीव का शरीर तो अंत समय जलकर राख हो जाता है और माया के मोह में जकड़ा हुआ मन, मनूर यानी लोहे के ज़ंग के समान गंदा ही रहता है। किए हुए पाप व अपराध आत्मा पर हावी हो जाते हैं और झूठ की विजय के नगाड़े बज उठते हैं। गुरु साहिब कहते हैं कि जब तक शब्द से मिलाप नहीं होता, चौरासी का चक्र नहीं टूट सकता। एक-आध जीव ही नहीं, बल्कि माया की पैदा की हुई दुबिधा या भ्रमों ने जीवों के समूह के समूह नष्ट कर दिए हैं। गुरु साहिब बार-बार इस बात पर ज़ोर देते हैं कि जब तक हम पूरे सतगुरु के उपदेश के अनुसार अंदर शब्द से नहीं जुड़ते, हमारा आवागमन के चक्र का भ्रमण कभी समाप्त नहीं हो सकता।

सच्चा और पवित्र शरीर वह है जिसके अंदर शब्द (नाम) प्रकट हो चुका है। ऐसी काया सदा शब्द, नाम या परमेश्वररूपी सच के प्रेम और भय के रंग में रँगी रहती है। उसकी जिह्वा सदा सच्चे प्रभु के सोहले यानी महिमा के गीत गाती है। ऐसी देह सब विषय-विकारों से मुक्त होकर सच्चे आनंद में समा जाती है। उसको दोबारा जन्म-मरण की आग में नहीं तपना पड़ता। शब्द में रँगी ऐसी जीवात्मा को प्रभु की दरगाह में सच्चा मान मिलता है।

जब मन परमात्मा यानी शब्दरूपी सच से भर जाता है तो इस पर उस दयालु प्रभु की रहमतों की अपार वर्षा होती है। मन में उस सच्चे स्वामी का निर्मल भय उत्पन्न हो जाता है और शरीर के सभी तत्त्वों में शांतिमयी

एकस्वरता आ जाती है। अंदर सच की ज्योति प्रकट हो जाती है। पापों के अंधकार का नाश हो जाता है और अंतर गुणों के नूर से भर जाता है:

तन जल बल माटी भइआ मन माइआ मोह मनूर॥
अउगण फिर लागू भए कूर वजावै तूर॥
बिन सबदै भरमाईऐ दुबिधा डोबे पूर॥
मन रे सबद तरहो चित लाए॥
जिन गुरमुख नाम न बूझिआ मर जनमै आवै जाए॥
तन सूचा सो आखीऐ जिस मह साचा नाउ॥
भै सच राती देहुरी जिहवा सच सुआउ॥
सची नदर निहालीऐ बहुड़ न पावै ताउ॥
साचे ते पवना भइआ पवनै ते जल होए॥
जल ते त्रिभवण साजिआ घट घट जोत समोए॥
निरमल मैला ना थीऐ सबद रत्ते पत होए॥
इह मन साच संतोखिआ नदर करे तिस माहे॥
पंच भूत सच भै रते जोत सची मन माहे॥*
नानक अउगण वीसरे गुर राखे पत ताहे॥[1]

नाम रिदै अंम्रित मुख नाम

गुरु साहिब कहते हैं कि जीव के हृदय में और उसकी जिह्वा पर सदा कुलमालिक का नाम होना चाहिए: *नाम रिदै अंम्रित मुख नाम*। आप समझाते हैं कि जीव साँसों की मिली पूँजी समाप्त करके संसार से चला जाता है। वह यह सोचने की कोशिश नहीं करता कि मैं कहाँ से आया था और जा कहाँ रहा हूँ। न ही उसको इस बात का ज्ञान है कि वह इस संसार से क्यों बँधा हुआ है, कौन-से साधन के द्वारा इस बंधन से छुटकारा पा सकता है और वह किस प्रकार अपनी आत्मा को अनंत प्रभु में लीन

---

* **पंच भूत**=पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश - इन पाँच तत्त्वों का सूक्ष्म आधार।

करके उसका रूप बन सकता है? गुरु साहिब इन प्रश्नों का उत्तर देते हुए फ़रमाते हैं कि जो जीव परमात्मा के नाम से जुड़ जाता है, वह परमात्मा का ही रूप हो जाता है।

जीव के मन में उठनेवाली इच्छाएँ ही उसके लिए संसार में दोबारा जन्म लेने का कारण बनती हैं। इस प्रकार जीव मौत के बाद भी मन का दास बना रहता है। मनमुख सदा चौरासी में टक्करें खाते रहते हैं, परंतु गुरुमुख इन बंधनों से सदा के लिए मुक्त हो जाते हैं। वे शब्द (नाम) में लीन हो जाते हैं, इसलिए उन्हें फिर से चौरासी के चक्र में नहीं आना पड़ता। उनके मुख में सदा नाम होता है, हृदय में भी नाम होता है। वे हरि की भाँति निश्चल और निर्लेप हो जाते हैं।

गुरु साहिब संसार की एक वृक्ष से और इसके जीवों की वृक्ष पर बैठे पक्षियों से तुलना करते हैं। ये पक्षी आकाश में ऊँची उड़ान भरना चाहते हैं, परंतु यहाँ के फलों के लालच में वृक्ष से ही बँधे रहते हैं। इसी प्रकार संसार की इच्छाओं से बँधे जीव, उनकी पूर्ति के लिए बार-बार संसार में जन्म लेते और मरते हैं। परंतु जो लोग नाम से लिव जोड़ लेते हैं, वे संसार को पशुओं की चरागाह के समान एक सराय या मुसाफ़िरख़ाना ही समझते हैं। वे समझते हैं कि यह हमारी मंज़िल के मार्ग का एक पड़ाव है। वे इंद्रियों के भोगों और विषय-वासनाओं का त्याग करके अज्ञानता का परदा हटा देते हैं और अंदर दसवें दरवाज़े में प्रवेश करके अथाह व अनमोल रूहानी दौलत प्राप्त कर लेते हैं। दसवें द्वार में प्रवेश करके इस अमूल्य धन को प्राप्त करने की युक्ति पूरे साधु-संतों से मिलती है। परमात्मा अपने भक्तों और संत-महात्माओं को प्यार करता है और कभी भी उनका कहा नहीं टालता:

जातो जाए कहा ते आवै॥ कह उपजै कह जाए समावै॥
किउ बाधिओ किउ मुकती पावै॥ किउ अबिनासी सहज समावै॥
नाम रिदै अंम्रित मुख नाम॥ नरहर नाम नरहर निहकाम॥
सहजे आवै सहजे जाए॥ मन ते उपजै मन माहे समाए॥

गुरमुख मुकतो बंध न पाए॥ सबद बीचार छुटै हर नाए॥
तरवर पंखी बहु निस बास॥ सुख दुखीआ मन मोह विणास॥
साझ बिहाग तकह आगास॥ दह दिस धावह करम लिखिआस॥
नाम संजोगी गोइल थाट॥ काम क्रोध फूटै बिख माट॥
बिन वखर सूनो घर हाट॥ गुर मिल खोले बजर कपाट॥
साध मिलै पूरब संजोग॥ सच रहसे पूरे हर लोग॥
मन तन दे लै सहज सुभाए॥ नानक तिन कै लागउ पाए॥[2]

जप मन नाम हर सरणी

परमात्मा के भक्त सदा उसके प्रेम में मग्न रहते हैं। उनके हृदय में सदा उससे मिलने की प्यास लगी रहती है। मन में उसका अथाह प्रेम समाया रहता है। प्रियतम के दर्शनों की तड़प या प्यास के कारण ही उनका प्रियतम से मिलाप होता है, जिससे उनको अकथनीय आनंद और शांति की प्राप्ति होती है।

गुरु साहिब मूर्ख व अड़ियल मन को सदा उस परमात्मा का नाम जपने और उसकी शरण में रहने का उपदेश करते हैं। आप समझाते हैं कि नाम ही वह बेड़ा या जहाज़ है, जिस पर सवार होकर जीव इस भवसागर को पार कर सकता है। सतगुरु की दया से ही सच्चे ज्ञान की प्राप्ति होती है। गुरु के उपदेश के अनुसार परमात्मा के नाम का सिमरन करने से मृत्यु भी शुभ कार्य बन जाता है और कल्याण करनेवाला प्रभु-नाम का ख़ज़ाना हासिल हो जाता है।

चंचल मन नश्वर धन-दौलत के पीछे दौड़ता रहता है और सांसारिक मोह में मग्न रहता है, जबकि सदा रहनेवाली वस्तु प्रभु-नाम की भक्ति है। इसलिए सतगुरु के वचनों को मानकर शब्द के अभ्यास में लीन हो जाना चाहिए।

प्रभु का धाम ही निश्चल और निर्लेप है। प्रभु के नाम का अभ्यास ही सच्चा मार्ग है, जबकि यह संसार मोह में ग्रस्त है, इसमें जन्म-मरण के दुःख बहुत हैं। इसलिए जल्दी से सतगुरु की शरण ग्रहण करनी चाहिए, ताकि प्रभु-नाम को हृदय में बसाकर संसार-सागर से पार हो सकें।

गुरु साहिब कहते हैं, निर्मल मन वही है जिसमें सत्य और ज्ञान का अमूल्य रत्न है। लोभ-लालच की लहरों को दूर करनेवाली सच्ची पूँजी प्रभु का नाम ही है। इसलिए हे निरंजन! तू मेरे मन को मार दे और अपनी शरण बख़्श दे।

गुरु साहिब तीर्थयात्रा और पवित्र नदियों या सरोवरों आदि में स्नान करने की प्रथा के बारे में सावधान करते हैं कि इस प्रकार के कर्मकांड से मन की मलिनताएँ दूर नहीं होतीं। इनसे न पापों की मैल धुलती है, न ही संशय व भ्रम के रोग का नाश होता है और न ही चौरासी का चक्कर ख़त्म होता है। केवल सचखंड यानी निज धाम पहुँचकर ही सहज अवस्था प्राप्त होती है, जिसको पाकर जन्म-मरण का चक्र सदा के लिए समाप्त हो जाता है:

भगति प्रेम आराधितं सच पिआस परम हितं॥
बिललाप बिलल बिनंतीआ सुख भाए चित हितं॥
जप मन नाम हर सरणी॥
संसार सागर तार तारण रम नाम कर करणी॥
ए मन मिरत सुभ चिंतं गुर सबद हर रमणं॥
मत तत गिआनं कलिआण निधानं हर नाम मन रमणं॥
चल चित वित भ्रमा भ्रमं जग मोह मगन हितं॥
थिर नाम भगति दिड़ं मती गुर वाक सबद रतं॥
भरमात भरम न चूकई जग जनम बिआध खपं॥
असथान हर निहकेवलं सत मती नाम तपं॥
इह जग मोह हेत बिआपितं दुख अधिक जनम मरणं॥
भज सरण सतगुर ऊबरह हर नाम रिद रमणं॥
गुरमत निहचल मन मन मनं सहज बीचारं॥
सो मन निरमल जित साच अंतर गिआन रतन सारं॥
भै भाए भगति तर भवजल मना चित लाए हर चरणी॥
हर नाम हिरदै पवित्र पावन इह सरीर तउ सरणी॥

लब लोभ लहर निवारणं हर नाम रास मनं॥
मन मार तुही निरंजना कहो नानका सरनं॥[3]

अंम्रित जा का नाउ

जैसे अमली को अमल और मछली को जल प्यारा होता है, उसी प्रकार परमात्मा के भक्तों को उसका नाम प्रिय है। नाम ही उनके प्राणों का आधार है।

गुरु साहिब कहते हैं कि वह परमात्मा ऐसे सुंदर वृक्ष के समान है, जिसमें नाम का सुहाना फल लगता है। जो भी इस अमृत को पी लेता है, उसकी भूख-प्यास मिट जाती है। उसके अंदर पूरी तृप्ति यानी शांति आ जाती है। इस अमृत को पीकर उसको अमरपद की प्राप्ति हो जाती है।

कितने दु:ख की बात है कि वह परमात्मा जो हर जगह विद्यमान है, हमें दूर दिखाई देता है। इसका कारण जीव और मालिक के बीच खड़ी हौंमैं की दीवार है। यदि प्यासे और पानी के बीच दीवार या खाई हो तो प्यासा अपनी प्यास कैसे बुझा सकता है?

गुरु साहिब कहते हैं कि हे प्रभु! मैं तेरा बनिया या व्यापारी हूँ। तू मेरा साहिब या मालिक है और तू ही मेरी पूँजी या राशि है। मैं केवल तेरी दया-मेहर से माया के भ्रम में से निकल सकता हूँ:

अमली अमल न अंबडै मछी नीर न होए॥
जो रते सह आपणै तिन भावै सभ कोए॥
हउ वारी वंञा खंनीऐ वंञा तउ साहिब के नावै॥
साहिब सफलिओ रुखड़ा अंम्रित जा का नाउ॥
जिन पीआ ते त्रिपत भए हउ तिन बलिहारै जाउ॥
मै की नदर न आवही वसह हभीआं नाल॥
तिखा तिहाइआ किउ लहै जा सर भीतर पाल॥
नानक तेरा बाणीआ तू साहिब मै रास॥
मन ते धोखा ता लहै जा सिफत करी अरदास॥[4]

हर हर नाम समाईऐ

छः चक्रों वाली इस देह में मन का निवास है और इस देह में ही शब्द की ध्वनि गूँज रही है। गुरु साहिब कहते हैं कि मेरा मन इस अनहद शब्द की ध्वनि में लीन हो गया है और मुझे सहज आनंद की अकथ अवस्था प्राप्त हो गई है। यह दात सतगुरु की दया से मिली है और इसके फलस्वरूप मेरा मन हरि के नाम में समा गया है।

परमात्मा में समाने के लिए मन को इंद्रियों के भोगों की ओर से रोककर अंदर निश्चल करना आवश्यक है। जब तक आशा-तृष्णा का नाश नहीं होता, चंचल मन स्थिर नहीं होता। संसार की वस्तुओं व पदार्थों के प्रेम और हौंमैं का नाश करने के बाद ही मन शांत हो सकता है और जब हृदय में परमात्मा का नाम बस जाता है तो क्रूर यम उसका कुछ नहीं बिगाड़ सकता यानी उसमें मौत का भय समाप्त हो जाता है।

परमात्मा से मिलाप केवल शब्द की कमाई के द्वारा ही होता है। शब्द सब विकारों, पापों और कर्मों की मलिनता को धोकर मन को निर्मल बना देता है, जिससे शिष्य के अंदर सतगुरु के ज्ञान का प्रकाश हो जाता है। ऐसा गुरुमुख शरीररूपी गुफा में रहते हुए भी शरीर और संसार की हर प्रकार की इच्छाओं से निर्लेप रहता है। वह विकाररूपी पाँचों डाकुओं को जीत लेता है। उसका मन कभी भी सांसारिक पदार्थों की ओर नहीं जाता। वह सदा सहज यानी निश्चल अवस्था में समाया रहता है:

खट मट देही मन बैरागी॥ सुरत सबद धुन अंतर जागी॥
वाजै अनहद मेरा मन लीणा॥ गुर बचनी सच नाम पतीणा॥
प्राणी राम भगति सुख पाईऐ॥
गुरमुख हर हर मीठा लागै हर हर नाम समाईऐ॥
माइआ मोह बिवरज समाए॥ सतगुर भेटै मेल मिलाए॥
नाम रतन निरमोलक हीरा॥ तित राता मेरा मन धीरा॥
हउमै ममता रोग न लागै॥ राम भगति जम का भउ भागै॥

जम जंदार न लागै मोहे॥ निरमल नाम रिदै हर सोहे॥
सबद बीचार भए निरंकारी॥ गुरमत जागे दुरमत परहारी॥
अनदिन जाग रहे लिव लाई॥ जीवन मुकत गत अंतर पाई॥
अलिपत गुफा मह रहहे निरारे॥ तसकर पंच सबद संघारे॥
पर घर जाए न मन डोलाए॥ सहज निरंतर रहउ समाए॥
गुरमुख जाग रहे अउधूता॥ सद बैरागी तत परोता॥
जग सूता मर आवै जाए॥ बिन गुर सबद न सोझी पाए॥
अनहद सबद वजै दिन राती॥ अविगत की गत गुरमुख जाती॥
तउ जानी जा सबद पछानी॥ एको रव रहिआ निरबानी॥
सुंन समाध सहज मन राता॥ तज हउ लोभा एको जाता॥
गुर चेले अपना मन मानिआ॥ नानक दूजा मेट समानिआ॥[5]

हर धन संचहो रे जन भाई

इस शब्द में गुरु साहिब ने मुख्य रूप से परमात्मा और सतगुरु की महिमा की है। गुरु साहिब कहते हैं कि वास्तविक अमूल्य धन परमात्मा ही है। चोर या डाकू इस धन को चुरा नहीं सकते, इसलिए सतगुरु की सेवा द्वारा सदा भक्तिरूपी धन संचय करना चाहिए। दसवें दरवाज़े से गुज़रकर उस कुलमालिक से मिलाप करने की शक्ति उसकी दया-मेहर से ही प्राप्त होती है।

मनुष्य-जन्म का वास्तविक उद्देश्य ही यह है कि हम शरीररूपी शहर में अपने असली घर की खोज कर लें। यह खोज केवल सच्चे शब्द (नाम) के द्वारा हो सकती है।

मंज़िल तक पहुँचने के मार्ग में बड़ी रुकावट काम, क्रोध, लोभ आदि विकार हैं। सतगुरु के उपदेश पर चलकर यह रुकावट दूर की जा सकती है। सतगुरु की दया से मन निश्चल हो जाता है और इस पर इच्छाओं व तृष्णाओं का प्रभाव नहीं होता। सतगुरु की दया से ही अंदर पाँच शब्दों की ध्वनि सुनाई देती है, जिससे लिव जोड़कर हम निज घर पहुँचकर परमात्मा से मिलाप कर सकते हैं।

परमात्मा हर वस्तु और हर प्राणी के अंदर विद्यमान है। वह स्वयं ही शाह है, स्वयं ही व्यापारी है। वह स्वयं ही सबकी परख करता है और स्वयं ही परख की कसौटी बनाता है। वह स्वयं ही दया करके हौंमैं और द्वैत का नाश करता है। उसकी दया से शरीर और संसार में रहते हुए भी इनसे निर्लेप रहने की युक्ति प्राप्त होती है। उस निर्लेप प्रभु की भक्ति से ही जीव आशा-तृष्णा से मुक्त रह सकता है।

गुरु साहिब कहते हैं कि संसार में अनेक प्रकार के जीवों में से असली ज्ञानी और तत्त्वज्ञानी वे ही हैं जो शब्द की कमाई करके हौंमैं का नाश कर लेते हैं। वे अपने आप को पहचानकर सदा के लिए सहज अवस्था में समा जाते हैं:

हर धन संचहो रे जन भाई॥ सतगुर सेव रहहो सरणाई॥
तसकर चोर न लागै ता कउ धुन उपजै सबद जगाइआ॥
तू एकंकार निरालम राजा॥ तू आप सवारह जन के काजा॥
अमर अडोल अपार अमोलक हर असथिर थान सुहाइआ॥
देही नगरी ऊतम थाना॥ पंच लोक वसह परधाना॥*
ऊपर एकंकार निरालम सुंन समाध लगाइआ॥
देही नगरी नउ दरवाजे॥ सिर सिर करणैहारै साजे॥
दसवै पुरख अतीत निराला आपे अलख लखाइआ॥
पुरख अलेख सचे दीवाना॥ हुकम चलाए सच नीसाना॥
नानक खोज लहहो घर अपना हर आतम राम नाम पाइआ॥
सरब निरंजन पुरख सुजाना॥ अदल करे गुर गिआन समाना॥
काम क्रोध लै गरदन मारे हउमै लोभ चुकाइआ॥
सचै थान वसै निरंकारा॥ आप पछाणै सबद वीचारा॥
सचै महल निवास निरंतर आवण जाण चुकाइआ॥
ना मन चलै न पउण उडावै॥ जोगी सबद अनाहद वावै॥

* **देही...परधाना**=देहरूपी उत्तम नगरी (स्थान) में पाँच बड़े-बड़े मंडल हैं।

पंच सबद झुणकार निरालम प्रभ आपे वाए सुणाइआ॥
भउ बैरागा सहज समाता॥ हउमै तिआगी अनहद राता॥
अंजन सार निरंजन जाणै सरब निरंजन राइआ॥
दुख भै भंजन प्रभ अबिनासी॥ रोग कटे काटी जम फासी॥
नानक हर प्रभ सो भउ भंजन गुर मिलिऐ हर प्रभ पाइआ॥
कालै कवल निरंजन जाणै॥ बूझै करम सो सबद पछाणै॥
आपे जाणै आप पछाणै सभ तिस का चोज सबाइआ॥
आपे साहु आपे वणजारा॥ आपे परखे परखणहारा॥
आपे कस कसवटी लाए आपे कीमत पाइआ॥
आप दइआल दइआ प्रभ धारी॥ घट घट रव रहिआ बनवारी॥
पुरख अतीत वसै निहकेवल गुर पुरखै पुरख मिलाइआ॥
प्रभ दाना बीना* गरब गवाए॥ दूजा मेटै एक दिखाए॥
आसा माहे निरालम जोनी अकुल निरंजन गाइआ॥
हउमै मेट सबद सुख होई॥ आप वीचारे गिआनी सोई॥
नानक हर जस हर गुण लाहा सतसंगत सच फल पाइआ॥[6]

नाम बिना कैसे आचार

अगर चुप रहें तो लोग कहते हैं कि यह मूर्ख है। दरअसल बहुत बातों का कोई लाभ नहीं, क्योंकि इससे उस परमात्मा के नाम से लिव टूटती है। जब तक हम नाम (शब्द) की कमाई नहीं करते, कभी भी सच्ची निर्मलता नहीं मिल सकती। शब्द (नाम) की कमाई करना ही सबसे ऊँचा और पवित्र आचरण धारण करना है।

गुरु साहिब कहते हैं कि मुझे अपने निंदक प्यारे लगते हैं, क्योंकि वे बिना मज़दूरी लिए मेरे पापों की मलिनता को धो डालते हैं। गुरु साहिब इस विश्वास की पुष्टि करते हैं कि निंदक जिसकी निंदा करता है उसके कर्म अपने ऊपर ले लेता है। परंतु सतगुरु के उपदेशानुसार शब्द की कमाई

* **दाना बीना**=जो सब कुछ जानता है, जो सब कुछ देखता है।

द्वारा इस बुराई से मुक्ति मिल जाती है। सतगुरु की प्राप्ति, परमात्मा की अपनी दया-मेहर से होती है।

ऊँचा-ऊँचा कहने से कोई ऊँचा नहीं बन सकता। ऊँचा बनने के लिए ऊँचे गुण धारण करने आवश्यक हैं। इसलिए गुरुमुख शब्द (नाम) का अमृत पीते हैं, परंतु मनमुख अज्ञानता के कारण सांसारिक इच्छाओं, विषय-विकारों और निंदा-चुग़ली के ज़हर को अपनाते हैं। परमात्मा का शब्द (नाम) अंधों के लिए प्रकाश है, बहरों के लिए ध्वनि यानी आवाज़ है और मूर्खों के लिए सच्चे ज्ञान का स्रोत है। यह निर्धन के लिए सच्चा धन है और बेसहारे का सच्चा सहारा है। नाम अमूल्य ख़ज़ाना है। यह सच्चा अमृत है जब कि संसार की बाक़ी सब वस्तुएँ विष और ख़ाक के समान हैं।

गुरु साहिब के अनुसार कुछ लोग दूसरों की निंदा करते हैं और कुछ प्रशंसा करते हैं, परंतु वास्तव में बुद्धिमान वह है जो इन दोनों से अलग रहते हुए शब्द (नाम) की कमाई में लगा रहता है:

मसट करउ मूरख जग कहीआ॥ अधिक बकउ तेरी लिव रहीआ॥
भूल चूक तेरै दरबार॥ नाम बिना कैसे आचार॥
ऐसे झूठ मुठे संसारा॥ निंदक निंदै मुझै पिआरा॥
जिस निंदह सोई बिध जाणै॥ गुर कै सबदे दर नीसाणै॥
कारण नाम अंतरगत जाणै॥ जिस नो नदर करे सोई बिध जाणै॥
मै मैलौ ऊजल सच सोए॥ ऊतम आख न ऊचा होए॥
मनमुख खूल्ह महा बिख खाए॥ गुरमुख होए सो राचै नाए॥
अंधौ बोलौ मुगध गवार॥ हीणौ नीच बुरौ बुरिआर॥
नीधन कौ धन नाम पिआर॥ इह धन सार होर बिखिआ छार॥
उसतत निंदा सबद वीचार॥ जो देवै तिस कउ जैकार॥
तू बखसह जात पत होए॥ नानक कहै कहावै सोए॥[7]

कर्मकांड

देश-देशांतर न भटको

गुरु नानक साहिब इस शब्द में उपदेश कर रहे हैं कि स्थान-स्थान पर या देश के विभिन्न तीर्थों पर जाने से मन में उठनेवाली इच्छाओं की अग्नि शांत नहीं होती और न ही उज्ज्वल कपड़े पहनने से मन उज्ज्वल होता है। खेद का विषय है कि लोग कपट, दिखावे या पाखंड का जीवन व्यतीत करते हैं। वे बाहर से कई प्रकार के भेष धारण करके अपनी आंतरिक असलियत को ढकने का प्रयत्न करते हैं।

सतगुरु के उपदेश के बिना सच्ची भक्ति की युक्ति नहीं मिलती। गुरु का उपदेश मन में बस जाए तो मन वश में आ जाता है और हौंमैं व तृष्णा की अग्नि शांत हो जाती है। परमात्मा का नाम अंदर बस जाए तो यह मन अनमोल हीरा बन जाएगा और जीव को सच्ची इज़्ज़त हासिल हो जाएगी। शिष्य का मन जब भी वश में आता है, सतगुरु के उपदेश के अनुसार हरि से लिव लगाने से ही आता है। जब मन वश में आ जाता है तो आत्मा उसके पंजे से आज़ाद होकर अपने स्रोत में उसी प्रकार समा जाती है, जिस प्रकार समुद्र में से उठी लहर समुद्र में ही समा जाती है।

गुरु नानक साहिब ज़ोर देकर कहते हैं कि जिनका परमपुरुष सतगुरु से मिलाप नहीं होता और जो गुरु के उपदेश के अनुसार हरि के नाम से लिव नहीं जोड़ते, वे सदा भवसागर के तूफ़ानों में घिरे रहते हैं, उसी में

ग़ोते खाते रहते हैं। उनका जन्म-मरण का चक्र कभी समाप्त नहीं होता। गुरु साहिब उपदेश करते हैं कि मनुष्य-जन्म के क़ीमती हीरे को घोंघे और कौड़ियों की तरह व्यर्थ नहीं गँवाना चाहिए।

संसार के जेलख़ाने से बाहर निकलने की युक्ति गुरु से प्राप्त होती है। जिनको यह युक्ति मिल जाती है, वे सच्चे अर्थों में सुजान-पुरुष या ब्रह्मज्ञानी बन जाते हैं। वे ही गुरु की कृपा से दरगाह में स्वीकृत होते हैं। उनके अंदर शब्द-धुन अपना घर कर लेती है। इसलिए उनके मुख सदा उज्ज्वल और शोभनीय दिखाई देते हैं:

भरमे भाहे न विझवै जे भवै दिसंतर देस॥
अंतर मैल न उतरै ध्रिग जीवण ध्रिग वेस॥
होर कितै भगति न होवई बिन सतगुर के उपदेस॥
मन रे गुरमुख अगन निवार॥
गुर का कहिआ मन वसै हउमै त्रिसना मार॥
मन माणक निरमोल है राम नाम पत पाए॥
मिल सतसंगत हर पाईऐ गुरमुख हर लिव लाए॥
आप गइआ सुख पाइआ मिल सललै सलल समाए॥
जिन हर हर नाम न चेतिओ सो अउगुण आवै जाए॥
जिस सतगुर पुरख न भेटिओ सो भउजल पचै पचाए॥
इह माणक जीउ निरमोल है इउ कउडी बदलै जाए॥
जिंना सतगुर रस मिलै से पूरे पुरख सुजाण॥
गुर मिल भउजल लंघीऐ दरगह पत परवाण॥
नानक ते मुख उजले धुन उपजै सबद नीसाण॥[1]

सच्चा मुसलमान

गुरु नानक साहिब वाणी में सच्चे मुसलमान की महिमा करते हैं। सच्चा मुसलमान बनने के लिए किसी को न मसजिद में जाने की ज़रूरत है और न ही कोई मुसल्ला बिछाकर नमाज़ पढ़ने की। न ही उसे क़ुरान

शरीफ़ की आयतें पढ़ने की आवश्यकता है और न ही रमज़ान के महीने में रोज़े रखने की ज़रूरत। दया यानी रहम की भावना सच्चे मुसलमान की मसजिद है और सिद्क़ या भरोसा उसका मुसल्ला। हक़-हलाल की कमाई ही उसकी असली क़ुरान है। नेक-पाक और संयम का जीवन उसका रोज़ा होता है और रब की शर्म अर्थात् बुरे कर्मों से बचना उसकी सुन्नत। नेक अमल सच्चे मुसलमान का काबा है, सच या शब्द उसका नबी या पैग़ंबर है और कलमा अर्थात् नाम (शब्द) ही उसकी नमाज़ है। परमात्मा की रज़ा में राज़ी रहना उसकी तसबीह यानी माला है। जो मुसलमान इस प्रकार की रहनी रहता है उसकी लाज रब ख़ुद ही रखता है।

दूसरे श्लोक में आप समझाते हैं कि सच, हक़-हलाल की कमाई, दान, मन की शुद्धि और ख़ुदा की सिफ़त (गुणगान) पाँच नमाज़ें हैं और कलमे अर्थात् शब्द की कमाई ही सच्चे मुसलमान की असली निशानी है:

मिहर मसीत सिदक मुसला हक हलाल कुराण॥
सरम सुंनत सील रोजा होहो मुसलमाण॥
करणी काबा सच पीर कलमा करम निवाज॥
तसबी सा तिस भावसी नानक रखै लाज॥...
पंज निवाजा वखत पंज पंजा पंजे नाउ॥
पहिला सच हलाल दुए तीजा खैर खुदाए॥
चउथी नीअत रास मन पंजवी सिफत सनाए॥
करणी कलमा आख कै ता मुसलमाण सदाए॥
नानक जेते कूड़िआर कूड़ै कूड़ी पाए॥[2]

मुक्ति का दरवाज़ा

पाँच तत्त्व और मन के मेल से मनुष्य का शरीर बनता है। चंचल मन ही इस शरीर को चलाता है। परमात्मा ने इस देहरूपी घर के नौ दरवाज़े प्रकट रखे हैं, परंतु दसवाँ द्वार गुप्त रखा है। इस द्वार से ही परमात्मा के

निज घर को रास्ता जाता है। गुरु साहिब कहते हैं कि सच्चा ज्ञानी वही है जो इस गुप्त द्वार को ढूँढ़कर इसके अंदर दाख़िल हो जाता है। ऐसा ज्ञानी अपने आप को पहचान लेता है। बाक़ी कोई चाहे जितनी बातें कहता या सुनता रहे, कोई लाभ नहीं।

गुरु साहिब प्रश्न करते हैं: देह मिट्टी के समान है और प्राण पवन के समान हैं तो फिर शरीर के मरने पर असल में मरता कौन है? गुरु साहिब स्वयं ही उत्तर देते हैं कि उस व्यक्ति की हौंमैं मरती है, आंतरिक साक्षी यानी सब कुछ देखनेवाली आत्मा की कभी मौत नहीं होती। आपका भाव है कि आत्मा अमर और निर्लेप है तथा शरीररूपी बरतन टूटने से इसकी मौत नहीं होती।

गुरु साहिब अज्ञानी जीव को सावधान करते हैं कि जिस अनमोल रत्न की तलाश में तू नदी के तटों पर बने तीर्थों पर घूमता है वह तेरे अपने अंदर है। पंडित ग्रंथ-शास्त्रों का पाठ करके कई प्रकार के वाद-विवाद करता है। वह इसलिए झगड़े करता है कि उसको अंदर पड़ी हुई वस्तु का ज्ञान नहीं है। गुरु साहिब कहते हैं कि मेरे लिए जन्म-मरण का तगादा सदा के लिए समाप्त हो गया है, क्योंकि सतगुरु ने मुझे अंदर ही उस परमात्मा के साक्षात दर्शन करा दिए हैं, जो सर्वव्यापक और अजर-अमर है। वह न कभी मरता है, न ही मैं कभी मर सकता हूँ:

पउणै पाणी अगनी का मेल॥ चंचल चपल बुध का खेल॥
नउ दरवाजे दसवा दुआर॥ बुझ रे गिआनी एह बीचार॥
कथता बकता सुनता सोई॥ आप बीचारे सो गिआनी होई॥
देही माटी बोलै पउण॥ बुझ रे गिआनी मूआ है कउण॥
मूई सुरत बाद अहंकार॥ ओह न मूआ जो देखणहार॥
जै कारण तट तीरथ जाही॥ रतन पदारथ घट ही माही॥
पड़ पड़ पंडित बाद वखाणै॥ भीतर होदी वसत न जाणै॥
हउ न मूआ मेरी मुई बलाए॥ ओह न मूआ जो रहिआ समाए॥
कहो नानक गुर ब्रहम दिखाइआ॥ मरता जाता नदर न आइआ॥[3]

सभ जप सभ तप सभ चतुराई

जप-तप, पूजा-पाठ और अन्य सब बाहरमुखी कर्म इस प्रकार हैं जैसे कोई रास्ता भूला व्यक्ति उजाड़ में भटक रहा हो। दरअसल सच्चे ज्ञान के बिना अपने ठिकाने पर नहीं पहुँचा जा सकता और शब्द (नाम) की कमाई के बिना सच्चा ज्ञान प्राप्त नहीं होता। नाम-विहीन व्यक्ति के माथे पर कलंक का टीका लगता है।

सारा संसार कूड़ यानी नाशवान है, केवल एक परमात्मा सच्चा है। इस नाशवान संसार से छुटकारे का एकमात्र उपाय है: सच्चे गुरु की शरण प्राप्त करके उसकी बताई हुई युक्ति पर अमल किया जाए। गुरु की मति पर चलने से इस आशा-तृष्णा से बँधे संसार में रहते हुए इससे उदास या निर्लेप रहने की युक्ति आ जाती है। जीव के अंदर नामरूपी सच्चे ज्ञान का प्रकाश हो जाता है और हृदय-कमल खिल उठता है। इस प्रकार पूरे गुरु का शिष्य मौत के भय से मुक्त हो जाता है।

संसार के लोग विषय-विकारों, इंद्रियों के भोगों और मोह-ममता के ग़ुलाम हैं। वे बेटे-बेटियों, स्त्री आदि के प्यार में फँसकर नाम को भूले हुए हैं। इन अज्ञानियों को यह पता नहीं कि चौरासी लाख योनियों में मनुष्य-जन्म सबसे उत्तम है। यह अमूल्य अवसर है और इस अवसर से पूरा लाभ उठाने का उत्तम ढंग सतगुरु की सेवा है। पूरे गुरु की सेवा सब करनी का सार है, क्योंकि सतगुरु की सेवा से आत्मा बंधनमुक्त हो जाती है और इसको दोबारा हौंमैं की मैल नहीं लगती। जो जीव सतगुरु की मति पर चलते हैं, उनकी मोह-ममता की अग्नि बुझ जाती है और उनके हृदय में परमात्मा के निर्मल नाम का वास हो जाता है। उनका मन ठहर जाता है और बाहर भटकना छोड़ देता है।

गुरु साहिब के अनुसार परमात्मा से मिलाप करने के लिए जीवित सतगुरु का होना अनिवार्य है। गुरु-विहीन जीव जन्म-मरण के चक्र में फँसा रहता है। गुरु के बिना शब्द की सूझ नहीं होती, इसलिए सच्ची शांति नहीं मिलती। परंतु जो प्राणी सतगुरु के उपदेश पर चलता है, उसको अंदर ही बिना बजाए बजनेवाला दिव्य-संगीत सुनाई देने लगता है। वह सुंदर

परमेश्वर अकथ और अमूल्य है, जो जीव परमात्मारूपी सच के साक्षात दर्शन कर लेता है और सच्चे नाम से जुड़ जाता है, उसका अंतर सच्चे सुख से भर जाता है। वह अपने अहं यानी हौंमैं को खोकर तीनों भुवनों का ज्ञान प्राप्त कर लेता है। उसकी लिव सदा शब्द (नाम) में लगी रहती है। उसको अंतर में शब्द यानी नामरूपी सच्ची वाणी मिल जाती है और वह उसमें समाकर उसका ही रूप हो जाता है। धन्य है वह दयालु प्रभु जो दया-मेहर करके जीव को सही मार्ग पर लगाकर उसका कल्याण कर देता है:

सभ जप सभ तप सभ चतुराई॥ ऊझड़ भरमै राह न पाई॥
बिन बूझे को थाए न पाई॥ नाम बिहूणै माथे छाई॥
साच धणी जग आए बिनासा॥ छूटस प्राणी गुरमुख दासा॥
जग मोह बाधा बहुती आसा॥ गुरमती इक भए उदासा॥
अंतर नाम कमल परगासा॥ तिन्ह कउ नाही जम की त्रासा॥
जग त्रिअ जित कामण हितकारी॥ पुत्र कलत्र लग नाम विसारी॥
बिरथा जनम गवाइआ बाजी हारी॥ सतगुर सेवे करणी सारी॥
बाहरहो हउमै कहै कहाए॥ अंदरहो मुकत लेप कदे न लाए॥
माइआ मोह गुर सबद जलाए॥ निरमल नाम सद हिरदै धिआए॥
धावत राखै ठाक रहाए॥ सिख संगत करम मिलाए॥
गुर बिन भूलो आवै जाए॥ नदर करे संजोग मिलाए॥
रूड़ो कहउ न कहिआ जाई॥ अकथ कथउ नह कीमत पाई॥
सभ दुख तेरे सूख रजाई॥ सभ दुख मेटे साचै नाई॥
कर बिन वाजा पग बिन ताला॥* जे सबद बुझै ता सच निहाला॥
अंतर साच सभे सुख नाला॥ नदर करे राखै रखवाला॥
त्रिभवण सूझै आप गवावै॥ बाणी बूझै सच समावै॥
सबद वीचारे एक लिव तारा॥ नानक धंन सवारणहारा॥[4]

* कर...ताला=शब्द की अपने आप होनेवाली धुन, हाथ, पैर तथा किसी अन्य वस्तु से उत्पन्न नहीं होती।

बाहरमुखी क्रियाओं का खंडन

गुरु नानक साहिब ज़ोरदार शब्दों में विस्तारपूर्वक समझाते हुए अनेक प्रकार के कर्मकांड का खंडन करते हैं। आप किसी विशेष धर्म की प्रथाओं का ही विरोध नहीं करते, बल्कि हिंदुओं, मुसलमानों, योगियों आदि सभी की बाहरमुखी क्रियाओं का खंडन करते हैं। गुरु साहिब ने हिंदुओं की तीर्थयात्राओं, पवित्र नदियों, सरोवरों के स्नान, नंगे घूमने, घरबार का त्याग करके जंगलों और पर्वतों में मारे-मारे फिरने आदि का ही नहीं, बल्कि मुसलमानों की शरीअत के कई अंगों का भी खंडन किया है, क्योंकि इस प्रकार के प्रयत्न परमात्मा की प्राप्ति में कोई सहायता नहीं देते।

गुरु साहिब ने ग्रंथ-शास्त्रों के वाचक ज्ञान और वाद-विवाद को कोई महत्त्व नहीं दिया है। आप कहते हैं कि पंडित जो कुछ दिन-रात पढ़ने में लगे हुए हैं उसका कोई लाभ नहीं, क्योंकि वे इस पर अमल नहीं करते। उनका सारा पढ़ना-पढ़ाना केवल दिखावा, कपट या छल है। उनकी कथनी और करनी में बहुत अंतर है।

नीचे दिए गए पदों से गुरु साहिब के इस विषय से संबंधित विचारों का पता लग सकता है:

मुसलमाना सिफत सरीअत पड़ पड़ करह बीचार॥
बंदे से जे पवह विच बंदी वेखण कउ दीदार॥
हिंदू सालाही सालाहन दरसन रूप अपार॥
तीरथ नावह अरचा पूजा अगर वास बहकार॥
जोगी सुंन धिआवन्ह जेते अलख नाम करतार॥
सूखम मूरत नाम निरंजन काइआ का आकार॥[5]

पड़ पड़ गडी लदीअह पड़ पड़ भरीअह साथ॥
पड़ पड़ बेड़ी पाईऐ पड़ पड़ गडीअह खात॥
पड़ीअह जेते बरस बरस पड़ीअह जेते मास॥

पड़ीऐ जेती आरजा पड़ीअह जेते सास॥
नानक लेखै इक गल होर हउमै झखणा झाख॥[6]

लख नेकीआ चंगिआईआा लख पुंना परवाण॥
लख तप उपर तीरथां सहज जोग बेबाण॥
लख सूरतण संगराम रण मह छुटह पराण॥
लख सुरती लख गिआन धिआन पड़ीअह पाठ पुराण॥
जिन करतै करणा कीआ लिखिआ आवण जाण॥
नानक मती मिथिआ करम सचा नीसाण॥[7]

लिख लिख पड़िआ॥ तेता कड़िआ॥
बहु तीरथ भविआ॥ तेतो लविआ॥
बहु भेख कीआ देही दुख दीआ॥ सहु वे जीआ अपणा कीआ॥
अंन न खाइआ साद गवाइआ॥ बहु दुख पाइआ दूजा भाइआ॥
बसत्र न पहिरै॥ अहिनिस कहरै॥
मोन विगूता॥ किउ जागै गुर बिन सूता॥
पग उपेताणा॥ अपणा कीआ कमाणा॥
अल मल खाई सिर छाई पाई॥
मूरख अंधै पत गवाई॥ विण नावै किछ थाए न पाई॥[8]

मूरख पंडित हिकमत हुजत संजै करह पिआर॥
धरमी धरम करह गावावह मंगह मोख दुआर॥
जती सदावह जुगत न जाणह छड बहहे घर बार॥
सभ को पूरा आपे होवै घट न कोई आखै॥
पत परवाणा पिछै पाईऐ ता नानक तोलिआ जापै॥[9]

माणस खाणे करह निवाज॥ छुरी वगाइन तिन गल ताग॥
तिन घर ब्रहमण पूरह नाद॥ उन्हा भि आवह ओई साद॥

कूड़ी रास कूड़ा वापार॥ कूड़ बोल करह आहार॥
सरम धरम का डेरा दूर॥ नानक कूड़ रहिआ भरपूर॥
मथै टिका तेड़ धोती कखाई॥ हथ छुरी जगत कासाई॥[10]

जे मोहाका घर मुहै घर मुह पितरी दे॥
अगै वसत सिञाणीऐ पितरी चोर करे॥
वढीअह हथ दलाल के मुसफी एह करे॥
नानक अगै सो मिलै जे खटे घाले दे॥[11]

लख चोरीआ लख जारीआ लख कूड़ीआ लख गाल॥
लख ठगीआ पहिनामीआ रात दिनस जीअ नाल॥
तग कपाहहो कतीऐ बाम्हण वटे आए॥
कुह बकरा रिंन्ह खाइआ सभ को आखै पाए॥
होए पुराणा सुटीऐ भी फिर पाईऐ होर॥
नानक तग न तुटई जे तग होवै जोर॥[12]

पड़ पुसतक संधिआ बादं॥ सिल पूजस बगुल समाधं॥
मुख झूठ बिभूखण सारं॥ त्रैपाल तिहाल बिचारं॥
गल माला तिलक लिलाटं॥ दुए धोती बसत्र कपाटं॥
जे जाणस ब्रहमं करमं॥ सभ फोकट निसचउ करमं॥
कहो नानक निहचउ धिआवै॥ विण सतगुर वाट न पावै॥[13]

अंदरहो झूठे पैज बाहर दुनीआ अंदर फैल॥
अठसठ तीरथ जे नावह उतरै नाही मैल॥[14]

घर अंम्रित घट माही

जीव जिस अमृत की प्राप्ति के लिए संसार में आया है, वह कहीं बाहर नहीं है। वह अमृत उसके अपने घर के अंदर है। शरीर के अंदर स्थित इस

ख़ज़ाने को खोलने की कुंजी पूरे गुरु के पास है। जब सार-वस्तु घर में है तो बाहरी कर्मकांड का क्या लाभ? गुरु साहिब कहते हैं कि सब बाहरमुखी प्रयत्न व्यर्थ हैं और इनका त्याग करके सच्चे मार्ग पर चलना चाहिए।

जीव को चाहिए कि खोटे व खरे, बुरे व भले की पहचान करे, ताकि बुराई का मार्ग छोड़कर नेकी के मार्ग पर चला जा सके। जब तक उचित और अनुचित का विवेक नहीं जागता, जीव जितने प्रयास करता है उतना ही माया के दलदल में फँसता जाता है।

जब मन में लोभ और झूठ की गंदगी भरी पड़ी है और मुँह निंदा-चुगली की मलिनता से भरा हुआ है तो तीर्थों पर स्नान करने का क्या लाभ होगा? यदि लोभ, निंदा, चुग़ली और झूठ का त्याग करके गुरु के वचनों पर अमल किया जाए, तभी उस सच का फल प्राप्त होगा। मन की मलिनता केवल गुरु के उपदेश के अनुसार शब्द की कमाई से ही दूर हो सकती है। मन की सफ़ाई का और कोई साधन नहीं है:

जिस जल निध कारण तुम जग आए सो अंम्रित गुर पाही जीउ॥
छोडहो वेस भेख चतुराई दुबिधा इह फल नाही जीउ॥
मन रे थिर रहो मत कत जाही जीउ॥
बाहर ढूढत बहुत दुख पावह घर अंम्रित घट माही जीउ॥
अवगुण छोड गुणा कउ धावहो कर अवगुण पछुताही जीउ॥
सर अपसर की सार न जाणह फिर फिर कीच बुडाही जीउ॥
अंतर मैल लोभ बहु झूठे बाहर नावहो काही जीउ॥
निरमल नाम जपहो सद गुरमुख अंतर की गत ताही जीउ॥
परहर लोभ निंदा कूड़ तिआगहो सच गुर बचनी फल पाही जीउ॥
जिउ भावै तिउ राखहो हर जीउ जन नानक सबद सलाही जीउ॥[15]

त्यागी और वैरागी

इस शब्द में गुरु साहिब ऐसे योगी के आचार-व्यवहार की सख़्त आलोचना करते हैं जिसकी कथनी और करनी में कोई मेल नहीं है। वह जगत

को उपदेश देता है, लेकिन यह सब पेटपूजा के लिए करता है। मन के स्थिर किए बिना परमात्मा को कैसे पाया जा सकता है? गुरु साहिब कहते हैं कि त्यागी या वैरागी का त्याग निरा कपट या दिखावा-मात्र है। वह शहर को छोड़कर जंगलों में अवश्य चला जाता है, परंतु उसके मन में नारी और माया की तृष्णा समाई रहती है। इससे वह न तो योगी और न ही संसारी रहा। वह संसार को ज्ञान प्रदान करते नहीं थकता, परंतु अपने हृदय में लगी विषय-विकारों की आग को नहीं बुझा पाता। वह रँगे हुए कपड़े तथा कानों में बिल्लौर की मुद्राएँ डालकर अपनी पवित्रता का दिखावा करता है। ऐसा करके वह संसार को धोखा देता है, क्योंकि उसका मन तो इच्छाओं के विष से भरा हुआ है और बाहर से त्यागी बना हुआ है। वह शरीर पर भभूत लगाता है, परंतु शरीर पर राख मलने से उसका जन्म-मरण के चक्र से कभी छुटकारा नहीं हो सकता। वह निर्लज्ज होकर घर-घर भीख माँगता फिरता है और अपना भार दूसरों पर डालता है। ऐसे जोगी को गुरु साहिब उपदेश देते हैं कि यदि तू अपने मन को स्थिर कर ले तो दुविधा और दुःख भाग जाएँगे। तू उस परमात्मा के गीत गाता है, पर अपनी पहचान नहीं करता। तुझे जो विषय-विकारों की आग लगी हुई है, वह कैसे बुझेगी? तू मन में गुरु के शब्द का प्रेम पैदा कर; सहज की भिक्षा ले।

तू शरीर पर भस्म लगाकर पाखंड करता है, इससे तो माया और मोह में फँसकर यम की सज़ा भुगतनी पड़ती है। अशुद्ध मनरूपी भिक्षापात्र में प्रेम की भीख नहीं पड़ सकती। मोह-बंधन के कारण आवागमन बना रहता है। तू कामवासना को वश में नहीं करता और जती कहलाता है, तीनों गुणों के दायरे में फँसा तू हमेशा माया माँगता है। तेरे अंदर न तो दया है और न ही प्रभु की ज्योति का प्रकाश है। अलग-अलग भेष धारण करके तू नट की तरह बहुत तरह के खेल खेलता है। पाखंड या बाहरी ज्ञान से मुक्ति नहीं मिल सकती। क्या संसारी और क्या योगी, ये सब तीन गुणों वाली माया के दास हैं। शब्द की कमाई ही आवागमन और जन्म-मरण के दुःखों को मिटाने की एकमात्र औषधि है। इसलिए जीव

को चाहिए कि वह किसी पूरे गुरु की शरण में जाकर उसकी बताई हुई युक्ति पर अमल करे। इस प्रकार उसका मन निर्मल हो जाएगा। निर्मल मन में ही परमात्मा का सच्चा प्रेम समा सकता है। सतगुरु द्वारा बताई विधि से शब्द की कमाई करके योगी अंत में अपने आप को पहचानने और परमात्मा से मिलाप करने के योग्य बन जाता है और ऐसा योगी सारी सृष्टि का मित्र बन जाता है:

जग परबोधह मड़ी बधावह॥ आसण तिआग काहे सच पावह॥
ममता मोह कामण हितकारी॥ ना अउधूती ना संसारी॥
जोगी बैस रहहो दुबिधा दुख भागै॥ घर घर मागत लाज न लागै॥
गावह गीत न चीनहे आप॥ किउ लागी निवरै परताप॥
गुर कै सबद रचै मन भाए॥ भिखिआ सहज वीचारी खाए॥
भसम चड़ाए करह पाखंड॥ माइआ मोह सहहे जम डंड॥
फूटै खापर भीख न भाए॥ बंधन बाधिआ आवै जाए॥
बिंद न राखह जती कहावह॥ माई मागत त्रै लोभावह॥
निरदइआ नही जोत उजाला॥ बूडत बूडे सरब जंजाला॥
भेख करह खिंथा बहु थटूआ॥ झूठो खेल खेलै बहु नटूआ॥
अंतर अगन चिंता बहु जारे॥ विण करमा कैसे उतरस पारे॥
मुंद्रा फटक बनाई कान॥ मुकत नही बिदिआ बिगिआन॥
जिहवा इंद्री साद लुभाना॥ पसू भए नही मिटै नीसाना॥
त्रिबिध लोगा त्रिबिध जोगा॥ सबद वीचारै चूकस सोगा॥
ऊजल साच सो सबद होए॥ जोगी जुगत वीचारे सोए॥
तुझ पह नउ निध तू करणै जोग॥ थाप उथापे करे सो होग॥
जत सत संजम सच सुचीत॥ नानक जोगी त्रिभवण मीत॥[16]

हठ निग्रह कर काइआ छीजै

गुरु साहिब ने हठयोग और व्रत-तप जैसे अनेक साधनों का प्रबल खंडन किया है, क्योंकि इससे शरीर कमज़ोर हो जाता है, फिर भी मन को शांति

नहीं मिलती। आप स्पष्ट शब्दों में उपदेश करते हैं कि आवश्यकता तो मन को वश में करने की है, शरीर को कष्ट देने की नहीं। मन को वश में करने की युक्ति साधु-संगति में मिलती है। योगी श्वास चढ़ाकर अंतर में रूहानी रस लेने का प्रयत्न करता है। वह अपनी ओर से समझता है कि मैं सिंहासन अर्थात् ऊँचे रूहानी मुक़ाम पर पहुँच गया हूँ। योगी हठयोग के छः साधन—धौती, बस्ति, नेती, नौलि, त्राटक और कपालभाती करता है। परंतु राम-नाम के बिना उसका हर श्वास व्यर्थ जाता है। प्राणायाम द्वारा केवल शरीर शुद्ध हो सकता है, परंतु इससे मन में से काम, क्रोध, लोभ, मोह और अहंकाररूपी विकार दूर नहीं हो सकते और त्रिगुणात्मक माया में लिप्त होने के कारण जन्म-मरण से छुटकारा भी नहीं मिलता। तीर्थस्थानों पर स्नान करने का भी कोई रूहानी लाभ नहीं, क्योंकि इससे ज़्यादा से ज़्यादा शरीर साफ़ हो जाएगा। इन तीर्थों पर स्नान करने से मन की मलिनताएँ तो दूर नहीं हो सकतीं। क्योंकि अगर अंदर पाँच अग्नियाँ हैं तो शांति कैसे मिल सकती है? पाँच चोर अंदर लगे हुए हैं तो हरिरस का स्वाद कैसे लिया जा सकता है? जन्म-मरण के बंधनों से मुक्ति प्राप्त करने और परमात्मा से मिलाप करने का एकमात्र साधन शब्द (नाम) की कमाई है। हरिनाम का अमृत पीने से न तो निर्दयी यम निकट आता है और न ही मायारूपी सर्पिनी डस सकती है। शब्द (नाम) की कमाई की युक्ति जीते-जागते सतगुरु से मिलती है। वह स्वयं मज़िल पर पहुँच चुका है और उसको मंज़िल के रास्ते का ज्ञान है:

हठ निग्रह कर काइआ छीजै॥ वरत तपन कर मन नही भीजै॥
राम नाम सर अवर न पूजै॥ गुर सेव मना हर जन संग कीजै॥
जम जंदार जोह नही साकै सरपन डस न सकै हर का रस पीजै॥
वाद पड़ै रागी जग भीजै॥ त्रै गुण बिखिआ जनम मरीजै॥
राम नाम बिन दूख सहीजै॥ चाड़स पवन सिंघासन भीजै॥
निउली करम खट करम करीजै॥ राम नाम बिन बिरथा सास लीजै॥
अंतर पंच अगन किउ धीरज धीजै॥ अंतर चोर किउ साद लहीजै॥

गुरमुख होए काइआ गड़ लीजै॥ अंतर मैल तीरथ भरमीजै॥
मन नही सूचा किआ सोच करीजै॥ किरत पइआ दोस का कउ दीजै॥
अंन न खाहे देही दुख दीजै॥ बिन गुर गिआन त्रिपत नही थीजै॥
मनमुख जनमै जनम मरीजै॥ सतगुर पूछ संगत जन कीजै॥
मन हर राचै नही जनम मरीजै॥ राम नाम बिन किआ करम कीजै॥
ऊंदर दूंदर पास धरीजै॥ धुर की सेवा राम रवीजै॥
नानक नाम मिलै किरपा प्रभ कीजै॥[17]

झूठा तपस्वी

त्यागी और वैरागी का जीवन व्यर्थ ही दु:खों में बीत जाता है। वह अपनी गृहस्थी की ज़िम्मेदारियों से दूर भागता है, परंतु संसार का त्याग करके भी इंद्रियों के भोगों और विषय-विकारों का शिकार बना रहता है। वह अपना घर छोड़कर लोगों के घरों से भिक्षा माँगता है।

वैरागी भगवे वस्त्र पहनकर और त्यागियों का भेष धारण करके संन्यासी होने का ढोंग रचता है। वह अपनी जीविका स्वयं कमाने के बजाय दर-दर भिक्षा माँगता फिरता है। उसे शब्द का ज्ञान नहीं होता, इसलिए वह सदा संशय, भ्रम और वहम का शिकार बना रहता है। वह इस नश्वर शरीर के अंदर ध्यान टिकाकर शब्द की पहचान नहीं करता, बस पशुओं की तरह पेट भरने में लगा रहता है।

तीर्थस्थानों की यात्रा करने और शरीर पर भभूत लगाने से वह माया के जाल से नहीं छूट सकता। उसकी ज़बान पर ग्रंथ-शास्त्रों के वचन हैं, परंतु वह झूठ बोलता है और छल-कपट से काम लेता है। वह ज्ञानी तो बनता है, परंतु उसे इतना भी ज्ञान नहीं कि परमपिता परमात्मा केवल अपने अंदर ही मिल सकता है। वह गुरु की शरण में जाकर विकारों और आशा-तृष्णा की आंतरिक आग बुझाने के बजाय बाहरी धूनी रमाता है।

सिर मुँड़ाने से या लंबी चोटी रखने से तो आत्मा ऊपर के मंडलों में नहीं पहुँच सकती। मौन धारण से भी कुछ लाभ नहीं होता। ऐसे कर्मों से तो हौंमैं में वृद्धि होती है। अगर त्यागी का मन दसों दिशाओं में भटक

रहा है और निश्चल होकर नहीं टिकता, तो उसे अंतर में हरि-नाम का अमृत कैसे मिल सकता है? वह अंदर और बाहर उस एक प्रभु को नहीं देखता, सच्ची बात कहने पर क्रोध करता है।

दिखावटी वैरागी ऐसा अंधा अज्ञानी है जो अपनी पत्नी को त्याग देता है, परंतु काम के वशीभूत होकर पराई नारियों के पीछे दौड़ता है। वह दूसरों को त्याग और वैराग्य का उपदेश देता है, परंतु स्वयं मोहमाया में फँसा रहता है। उसके हाथ में कमंडल है और गुदड़ी पहनी है, परंतु मन तृष्णा से भरा हुआ है। उसे शब्द का कुछ भी पता नहीं है। वह बाहर से देखने में शांत लगता है, परंतु अंदर उसके मन में विकारों की लपटें उठ रही हैं। इसलिए उसे यमदूतों के हाथों ख़्वार होना पड़ता है। गुरु साहिब का कथन है कि हरि के चरणों में चित्त लगानेवाला चाहे कोई गृहस्थ हो या संन्यासी, वह सच्चा योगी है और वही धन्य है।

सच्चा संन्यासी आशा-निराशा से ऊपर रहता है और सदा शब्द के रस में मग्न रहता है। वह कम बोलता है, क्षमा का धन इकट्ठा करता है और नीच वृत्तियों को शब्द की कमाई से जला देता है। सतगुरु की दया से वह विषय-विकारों और निकृष्ट विचारों पर विजय प्राप्त कर लेता है और गुरुमत द्वारा शरीररूपी घर में खोज करके नाम का धन प्राप्त कर लेता है। सतगुरु की भक्ति द्वारा उसके अंदर प्रभु की भक्ति जाग उठती है और उसका मन तृप्त हो जाता है। वह हौंमैं को मारकर अपने आप की पहचान कर लेता है। ऐसे सच्चे संन्यासी को भोजन और वस्त्र आदि के लिए किसी दूसरे के आगे हाथ नहीं फैलाने पड़ते। उसके वचन कभी व्यर्थ नहीं जाते और उसका हृदय सारी सृष्टि के लिए प्रेम से भरा होता है। वह जीवनमुक्त हो जाता है और अंदर अनहद शब्द से जुड़ा रहता है, जिसके फलस्वरूप उसे सच्चे सुख व शांति की प्राप्ति होती है:

मनमुख लहर घर तज विगूचै अवरा के घर हेरै॥
ग्रिह धरम गवाए सतगुर न भेटै दुरमत घूमन घेरै॥
दिसंतर भवै पाठ पड़ थाका त्रिसना होए वधेरै॥

काची पिंडी सबद न चीनै उदर भरै जैसे ढोरै॥
बाबा ऐसी रवत रवै संनिआसी॥
गुर कै सबद एक लिव लागी तेरै नाम रते त्रिपतासी॥
घोली गेरू रंग चड़ाइआ वसत्र भेख भेखारी॥
कापड़ फार बनाई खिंथा झोली माइआधारी॥
घर घर मागै जग परबोधै मन अंधै पत हारी॥
भरम भुलाणा सबद न चीनै जूऐ बाजी हारी॥
अंतर अगन न गुर बिन बूझै बाहर पूअर तापै॥
गुर सेवा बिन भगति न होवी किउ कर चीनस आपै॥
निंदा कर कर नरक निवासी अंतर आतम जापै॥
अठसठ तीरथ भरम विगुचह किउ मल धोपै पापै॥
छाणी खाक बिभूत चड़ाई माइआ का मग जोहै॥
अंतर बाहर एक न जाणै साच कहे ते छोहै॥
पाठ पड़ै मुख झूठो बोलै निगुरे की मत ओहै॥
नाम न जपई किउ सुख पावै बिन नावै किउ सोहै॥
मूंड मुडाए जटा सिख बाधी मोन रहै अभिमाना॥
मनूआ डोलै दह दिस धावै बिन रत आतम गिआना॥
अंम्रित छोड महा बिख पीवै माइआ का देवाना॥
किरत न मिटई हुकम न बूझै पसूआ माहे समाना॥
हाथ कमंडल कापड़ीआ मन त्रिसना उपजी भारी॥
इसत्री तज कर काम विआपिआ चित लाइआ पर नारी॥
सिख करे कर सबद न चीनै लंपट है बाजारी॥
अतंर बिख बाहर निभराती ता जम करे खुआरी॥
सो संनिआसी जो सतगुर सेवै विचहो आप गवाए॥
छादन भोजन की आस न करई अचिंत मिलै सो पाए॥
बकै न बोलै खिमा धन संग्रहै तामस नाम जलाए॥
धन गिरही संनिआसी जोगी जे हर चरणी चित लाए॥
आस निरास रहै संनिआसी एकस सिउ लिव लाए॥

हर रस पीवै ता सात आवै निज घर ताड़ी लाए॥
मनूआ न डोलै गुरमुख बूझै धावत वरज रहाए॥
ग्रिह सरीर गुरमती खोजे नाम पदारथ पाए॥
ब्रहमा बिसन महेस सरेसट नाम रते वीचारी॥
खाणी बाणी गगन पताली जंता जोत तुमारी॥*
सभ सुख मुकत नाम धुन बाणी सच नाम उर धारी॥
नाम बिना नही छूटस नानक साची तर तू तारी॥†[18]

---

* **खाणी...तुमारी**=चारों खानियों, चारों वाणियों, आकाश, पाताल तथा सब जीव-जंतुओं में तेरी ही ज्योति काम कर रही है।

† **नाम...तारी**=इस आंतरिक सच्चे नाम के बिना कभी मुक्ति प्राप्त नहीं हो सकती।

मन

मछुली जाल न जाणिआ

मछली देखने में बहुत चालाक और होशियार लगती है, परंतु वह अनजाने ही मछुए के जाल में फँस जाती है। इसी प्रकार जीव यमदूतों के फंदे में फँस जाते हैं। मछली और जीव अपनी ही मूर्खता से मौत के फंदे में फँसते हैं।

सारा संसार मौत के पंजे में जकड़ा हुआ है। कोई भी मौत से नहीं बच सकता। बार-बार होनेवाली मौत से बचने और इसको जीतने का एकमात्र साधन पूरे सतगुरु के उपदेश पर अमल करना है। सतगुरु शब्द से जुड़ने की युक्ति सिखलाता है जिससे मौत के चक्र से मुक्ति प्राप्त हो जाती है। गुरु साहिब कहते हैं कि मैं ऐसे सतगुरु पर सदा बलिहारी जाता हूँ जो मौत के बंधन से छुड़ाता है।

गुरु साहिब जीव की तुलना बाज़ के पंजे में फँसे पक्षी और शिकारी के जाल में फँसे शिकार से भी करते हैं। पक्षी और पशु दोनों लालच-वश जाल में क़ैद हो जाते हैं। केवल वे ही बचते हैं जिनके सिर पर पूरे सतगुरु का हाथ होता है। सतगुरु नाम का दान देकर जीव को जन्म-मरण के बंधनों से आज़ाद कर देता है, जबकि नाम से विहीन जीव अलग ही चुनकर निकाल लिए जाते हैं। कोई साथी, मित्र या संबंधी उसकी किसी प्रकार की सहायता नहीं कर सकता।

परमात्मा सच्चा है। उसका निज धाम भी सच्चा है। गुरुमुख यानी सच्चे भक्त उसी सच्चे में लीन रहते हैं। सतगुरु की दया से जिनको उस

सच का ज्ञान हो जाता है, उनके मुख भी उजले हैं और उनके मन भी पवित्र हैं। भाव यह है कि उनके विचार, वचन और कर्म आवागमन के बंधन में फँसानेवाले नहीं होते। गुरुमुख अमर हो जाते हैं, उनके लिए मौत सदा के लिए मर जाती है। उनके अंदर नाम (शब्द) का प्रकाश प्रकट हो जाता है फिर काल उनके निकट नहीं आ सकता।

सतगुरु के बिना हम अँधेरे में ठोकरें खाते फिरते हैं और शब्द के बिना हमें अज्ञानता के अंधकार में सच का मार्ग दिखाई नहीं देता। परंतु जब सतगुरु के उपदेश पर चलते हैं, तो पूरे गुरु की दया से हमारा सच में वास हो जाता है और हमें सच्चा ज्ञान प्राप्त हो जाता है। फिर हमारी ज्योति उस परम-ज्योति में समा जाती है।

गुरु साहिब कहते हैं कि जो कुछ होता है सब कुलमालिक की मौज (रज़ा) से होता है। उसकी मौज से ही संसार बनता और ढहता है, उसकी मौज में ही जीना-मरना है और उसकी मौज यानी हुक्म से ही उससे मिलाप होता है। मनुष्य के हाथ में कुछ भी नहीं है, जो कुछ होता है सब मालिक की मौज से होता है:

मछुली जाल न जाणिआ सर खारा असगाह॥
अत सिआणी सोहणी किउ कीतो वेसाह॥
कीते कारण पाकड़ी काल न टलै सिराह॥
भाई रे इउ सिर जाणहो काल॥
जिउ मछी तिउ माणसा पवै अचिंता जाल॥
सभ जग बाधो काल को बिन गुर काल अफार॥
सच रते से उबरे दुबिधा छोड विकार॥
हउ तिन कै बलिहारणै दर सचै सचिआर॥
सीचाने जिउ पंखीआ जाली बधिक हाथ॥
गुर राखे से उबरे होर फाथे चोगै साथ॥
बिन नावै चुण सुटीअह कोर न संगी साथ॥
सचो सचा आखीऐ सचे सचा थान॥

जिनी सचा मंनिआ तिन मन सच धिआन॥
मन मुख सूचे जाणीअह गुरमुख जिना गिआन॥
सतगुर अगै अरदास कर साजन दे मिलाए॥
साजन मिलिऐ सुख पाइआ जमदूत मुए बिख खाए॥
नावै अंदर हउ वसां नाउ वसै मन आए॥
बाझ गुरू गुबार है बिन सबदै बूझ न पाए॥
गुरमती परगास होए सच रहै लिव लाए॥
तिथै काल न संचरै जोती जोत समाए॥
तूंहै साजन तूं सुजाण तूं आपे मेलणहार॥
गुर सबदी सालाहीऐ अंत न पारावार॥
तिथै काल न अपड़ै जिथै गुर का सबद अपार॥
हुकमी सभे ऊपजह हुकमी कार कमाहे॥
हुकमी कालै वस है हुकमी साच समाहे॥
नानक जो तिस भावै सो थीऐ इना जंता वस किछ नाहे॥[1]

जीवन के दस पड़ाव

इस शब्द के शुरू में गुरु साहिब सतगुरु की महिमा करते हैं। सतगुरु सच्चा दाता और शांति का पुंज है। वह तीनों भुवनों की ज्योति है। जिसको वह परमात्मा के शब्द का दान देता है उसका मन वश में आ जाता है और उसको अमर आनंद की प्राप्ति हो जाती है।

गुरु साहिब जीवन के दस पड़ावों का वर्णन करते हैं। जीव हर पड़ाव पर अज्ञानता, इच्छा-तृष्णा और विषय-विकारों का शिकार बना रहता है। जब उसका अंत समय आता है तो पल दो पल के लिए साथी, मित्र और संबंधी रो-पीटकर बैठ जाते हैं। वे बस श्राद्ध के समय पत्तलों में भोजन परोसते हैं तथा कौओं को बुलाते हैं। इसके बाद वे अपने काम-धंधों में लगकर मृतक को भूल जाते हैं। किसी को कुछ पता नहीं लगता कि मृतक की आत्मा किधर चली गई है। इस प्रकार मनमुखों के जीवन की शुरुआत अज्ञानता और दुःखों में होती है और उनका अंत भी अज्ञानता और दुःखों

में ही हो जाता है। पूरे गुरु के बिना सारा संसार अज्ञानता के अँधेरे और जन्म-मरण के दुःखों में फँसा रहता है:

गुर दाता गुर हिवै घर गुर दीपक तिह लोए॥
अमर पदारथ नानका मन मानिऐ सुख होए॥
पहिलै पिआर लगा थण दुध॥ दूजै माए बाप की सुध॥
तीजै भया भाभी बेब॥ चउथै पिआर उपंनी खेड॥
पंजवै खाण पीअण की धात॥ छिवै काम न पुछै जात॥
सतवै संज कीआ घर वास॥ अठवै क्रोध होआ तन नास॥
नावै धउले उभे साह॥ दसवै दधा होआ सुआह॥
गए सिगीत पुकारी धाह॥ उडिआ हंस दसाए राह॥
आइआ गइआ मुइआ नाउ॥ पिछै पतल सदिहो काव॥
नानक मनमुख अंध पिआर॥ बाझ गुरू डुबा संसार॥[2]

अवर पंच हम एक जना

गुरु साहिब कहते हैं कि प्रभु ने शरीररूपी मंदिर बनाकर उसमें दस द्वार रखे हैं; इस शरीर में आत्मारूपी स्त्री बैठी है। इस शरीर में मौजूद पाँच विकार यानी पाँच डाकूओं ने उस अकेली स्त्री को घेर रखा है। वे डाकू शरीररूपी मंदिर को बार-बार लूट लेते हैं। आत्मारूपी स्त्री को मृत्यु ने पकड़ा हुआ है। वह तो सोना-चाँदी एकत्र करना चाहती है, जबकि उसके मित्र, संबंधी आदि उसे हड़पना चाहते हैं। ये बार-बार उसको हराकर लूट लेते हैं। गुरु साहिब उपदेश करते हैं कि जीवात्मा को परमात्मा के नाम के सुमिरन का सहारा लेना चाहिए, क्योंकि केवल नाम के सहारे ही इन दुष्टों का मुक़ाबला किया जा सकता है। नाम के सुमिरन से यमदूत भी निकट नहीं आते, परंतु नाम से रहित जीव को असहनीय दुःख और यातनाएँ देते हैं। गुरु साहिब कहते हैं कि इन वासनाओं और इच्छाओं की पूर्ति के लिए जीव पाप करता है और इन कर्मों का बँधा हुआ नरकों (जमपुर) में जाता है। गुरु नानक साहिब समझाते हैं कि बेटे, बेटियों और स्त्री आदि

के मोह में फँसकर पाप करने की मूर्खता से बचना चाहिए, क्योंकि जीव को कभी न कभी अपने किए हुए कर्मों का फल अवश्य भोगना पड़ता है:

अवर पंच हम एक जना किउ राखउ घर बार मना॥
मारह लूटह नीत नीत किस आगै करी पुकार जना॥
स्री राम नामा उचर मना॥ आगै जम दल बिखम घना॥
उसार मड़ोली राखै दुआरा भीतर बैठी सा धना॥
अंम्रित केल करे नित कामण अवर लुटेन सो पंच जना॥
ढाह मड़ोली लूटिआ देहुरा सा धन पकड़ी एक जना॥
जम डंडा गल संगल पड़िआ भाग गए से पंच जना॥
कामण लोड़ै सुइना रूपा मित्र लुड़ेन सो खाधाता॥
नानक पाप करे तिन कारण जासी जम पुर बाधाता॥[3]

रैण गवाई सोए कै

परमात्मा से मिलाप करने का एकमात्र अवसर मनुष्य-जन्म है। चौरासी के क़ैदख़ाने में से निकलने का यह एक ही दरवाज़ा है। मनुष्य-जन्म की महत्ता बताते हुए गुरु साहिब खेद प्रकट करते हैं कि जीव इस अमूल्य अवसर को भोग-विलास, खाने-पीने और संसार के नाशवान पदार्थों के भंडार भरने में ही खो देता है। होना तो यह चाहिए था कि वह हृदय में परमात्मा के साथ मिलाप की इच्छा रखता और उसके नाम की आराधना की ओर पूरा ध्यान देता, क्योंकि यही असल में सच्चे यानी अमर पदार्थ हैं। परंतु अज्ञानी मनमुख ज़िंदगी के इस असली कार्य की ओर ध्यान ही नहीं देता। वह मोहवश अपार धन को धरती में दबाकर रखता है, परंतु उस अनंत प्रभु को प्यार नहीं करता। जिन मनमुखों ने धन से प्यार किया वे अनंत प्रभु को गँवा बैठे।

शब्द के अंत में गुरु साहिब कहते हैं कि बेचारे जीव के हाथ में या वश में कुछ नहीं है, अगर अपने प्रयत्न से प्रभु मिल जाता तो सब भाग्यवान बन जाएँ। उस परमात्मा की अपनी दया-मेहर के बिना उससे मिलाप कर सकना असंभव है:

रैण गवाई सोए कै दिवस गवाइआ खाए॥
हीरे जैसा जनम है कउडी बदले जाए॥
नाम न जानिआ राम का॥ मूड़े फिर पाछै पछुताहे रे॥
अनता धन धरणी धरे अनत न चाहिआ जाए॥
अनत कउ चाहन जो गए से आए अनत गवाए॥
आपण लीआ जे मिलै ता सभ को भागठ होए॥
करमा उपर निबड़ै जे लोचै सभ कोए॥
नानक करणा जिन कीआ सोई सार करे॥
हुकम न जापी खसम का किसै वडाई दे॥[4]

मनमुखों की अवस्था

परमात्मा के भक्त केवल प्रभु के प्यार और सेवा में लगे रहते हैं, वे किसी दूसरी चीज़ की परवाह नहीं करते। जिस प्रकार चातक पक्षी को स्वाति जल से प्रेम होता है, केवल उसी की प्यास होती है और जैसे मछली पानी में ही ख़ुश रहती है, उसी प्रकार हरि के भक्त को हरि-रस या राम-नाम पीकर ही तृप्ति या शांति मिलती है। वे पाँच तत्त्वों की रचना और झगड़ों व बखेड़ों से भरे संसार से मोह नहीं करते। उनके मन में क्लेश और द्वेष के लिए कोई स्थान नहीं होता। वे उस प्रभु के प्रेम और भक्ति द्वारा उसमें ही समा जाते हैं। ऐसी अवस्था में वे अंदर और बाहर से सदा शांत रहते हैं।

मनमुखों का हृदय-कमल उलटा हुआ रहता है, इसलिए उनमें परमात्मा की दया का अमृत नहीं समाता। सारा संसार पाँच विकारों की अग्नि में जलकर राख हो रहा है, केवल वे ही बचते हैं जो गुरु के शब्द की ओट ले लेते हैं। भँवरा, पतंगा, हाथी, मछली और हिरन क्रमशः नाक, आँख, इंद्रिय, ज़बान और कान के विषय के कारण बरबाद हो जाते हैं। मनुष्य का हृदय पाँच विकारों से भरा हुआ है। लोग काम के अधीन होकर कामिनी के पीछे मारे-मारे फिरते हैं। मन के इन विकारों के कारण उनके मन की शांति नष्ट हो जाती है और वे नाम को भुलाकर बुद्धि और इज़्ज़त दोनों

खो देते हैं। मनमुख हमेशा पराई नारी, पराए धन तथा दूसरों के प्रति ईर्ष्या के कारण दुःखों में फँसे रहते हैं। जब तक मन अंदर प्रभु की भक्ति यानी प्रेम के रंग में रँगा नहीं जाता तब तक मनमुख कई प्रकार के तमाशे करता रहता है, परंतु उसे लाभ कुछ नहीं होता।

मनमुख उस विधवा के समान है जो काम और धन के मोह के कारण अपना तन पराए पुरुष को दे देती है, परंतु उसको पति के बिना कभी सच्चा सुख या सच्ची शांति प्राप्त नहीं हो सकती। इस प्रकार जब तक परमात्मा से मिलाप नहीं होता, किसी को भी ग्रंथ-पोथियों के पाठ और विचार तथा कई प्रकार के कर्मकांड से भी कभी सच्चा सुख नहीं मिल सकता:

सेवा एक न जानस अवरे॥ परपंच बिआध तिआगै कवरे॥
भाए मिलै सच साचै सच रे॥
ऐसा राम भगत जन होई॥ हर गुण गाए मिलै मल धोई॥
ऊंधो कवल सगल संसारै॥ दुरमत अगन जगत परजारै॥
सो उबरै गुर सबद बीचारै॥
भ्रिंग पतंग कुंचर अर मीना॥ मिरग मरै सहे अपुना कीना॥
त्रिसना राच तत नही बीना॥
काम चितै कामण हितकारी॥ क्रोध बिनासै सगल विकारी॥
पत मत खोवह नाम विसारी॥
पर घर चीत मनमुख डोलाए॥ गल जेवरी धंधै लपटाए॥
गुरमुख छूटस हर गुण गाए॥
जिउ तन बिधवा पर कउ देई॥ काम दाम चित पर वस सेई॥
बिन पिर त्रिपत न कबहूं होई॥
पड़ पड़ पोथी सिंम्रित पाठा॥ बेद पुराण पड़ै सुण थाटा॥
बिन रस राते मन बहु नाटा॥
जिउ चात्रिक जल प्रेम पिआसा॥ जिउ मीना जल माहे उलासा॥
नानक हर रस पी त्रिपतासा॥[5]

काल

काल, यम या धर्मराज संसार के किसी प्राणी का लिहाज़ नहीं करता। बड़े-बड़े राजा-महाराजा और उनकी प्रजा, बड़े-बड़े चौधरी, शासक, सरदार, क़ाज़ी, शेख़ और फ़क़ीर काल के क्रूर पंजे से नहीं बच सके। क्योंकि काल बहुत ताक़तवर है, वह झूठे यानी मनमुख के सिर पर चोट मारता है। काल जिह्वा, कान, आँख आदि इंद्रियों द्वारा हमारे सामने तृष्णाओं और विषय-विकारों आदि का जाल बिछा देता है। इंद्रियाँ मन को भोगों की ओर खींचती हैं और उसको अपना दास बना लेती हैं।

काल परमात्मा के हुक्म से ही ब्रह्मा, विष्णु और महेश द्वारा संसार की रचना करता है, इसका पालन और नाश करता है। ये तीनों देवता उस कर्तापुरुष के हुक्म में अपना काम चला रहे हैं। उनके अपने वश में कुछ भी नहीं है। गुरु साहिब उपेदश करते हैं कि पूजा, भक्ति या आराधना सबसे ऊँचे स्वामी, उस कुलमालिक की करनी चाहिए, न कि देवी-देवताओं आदि की जो स्वयं नाशवान हैं। दरअसल जो कुछ पैदा हुआ है सब नाशवान है, केवल गुरु के उपदेशानुसार शब्द की कमाई करनेवाले ही काल से बचते हैं।

वह परमात्मा सब देवी-देवताओं को देखता है, परंतु आश्चर्य का विषय है कि वे देवी-देवता उसको नहीं देख सकते। ये देवी-देवता रचना का अंग हैं जबकि वह निराकार परमेश्वर सबका कर्ता है। जो जीव सतगुरु की शरण यानी सेवा दृढ़ कर लेता है और शब्द (नाम) को मन में बसा लेता है, काल और देवी-देवता उसका कुछ नहीं बिगाड़ सकते:

प्रथमे ब्रहमा कालै घर आइआ॥ ब्रहम कमल पइआल न पाइआ॥
आगिआ नही लीनी भरम भुलाइआ॥
जो उपजै सो काल संघारिआ॥ हम हर राखे गुर सबद बीचारिआ॥
माइआ मोहे देवी सभ देवा॥ काल न छोडै बिन गुर की सेवा॥
ओह अबिनासी अलख अभेवा॥
सुलतान खान बादिसाह नही रहना॥ नामहो भूलै जम का दुख सहना॥

मैं धर नाम जिउ राखहो रहना॥
चउधरी राजे नही किसै मुकाम॥ साह मरह संचह माइआ दाम॥
मै धन दीजै हर अंम्रित नाम॥
रयत महर मुकदम सिकदारै॥ निहचल कोए न दिसै संसारै॥
अफरिउ काल कूड़ सिर मारै॥
निहचल एक सचा सच सोई॥ जिन कर साजी तिनह सभ गोई॥
ओह गुरमुख जापै तां पत होई॥
काजी सेख भेख फकीरा॥ वडे कहावह हउमै तन पीरा॥
काल न छोडै बिन सतगुर की धीरा॥
काल जाल जिहवा अर नैणी॥ कानी काल सुणै बिख बैणी॥
बिन सबदै मूठे दिन रैणी॥
हिरदै साच वसै हर नाए॥ काल न जोह सकै गुण गाए॥
नानक गुरमुख सबद समाए॥[6]

मन मैगल साकत देवाना

गुरु नानक साहिब यहाँ मन को मदमस्त हाथी कह रहे हैं जो माया-मोह के वन में भटकता फिर रहा है और जिसको अहंकार का नशा चढ़ा हुआ है, परंतु साथ ही जिसको अंदर मौत का डर सता रहा है। गुरुमुखों की बताई युक्ति पर चलकर ही वह अपने असल घर पहुँच सकता है, जहाँ पहुँचकर इसके सभी भय समाप्त हो जाते हैं।

सतगुरु के उपदेश के बिना मन शांत नहीं हो सकता। सतगुरु शिष्य को हर प्रकार के कर्मकांड में से निकालकर शब्द (नाम) की कमाई में लगाता है। आप समझाते हैं कि परमात्मा दया करके जब किसी जीव का पूरे सतगुरु से मिलाप करवा देता है तो सतगुरु उसका मन निश्चल कर देता है और काल का काँटा सदा के लिए निकाल देता है। सतगुरु की दया से झूठ हार जाता है और सत्य की विजय होती है।

मन पाँच तत्त्वों का बना हुआ है। यह कर्मों के क़ानून का बँधा संसार में अच्छे-बुरे कर्म करता है। मूर्खों के मन में ताक़त और दौलत

का अहंकार होता है, जो जन्म-मरण का कारण बनता है। परंतु सतगुरु के उपदेश पर चलने से हौंमैं का नाश हो जाता है और चौरासी से मुक्ति मिल जाती है। सतगुरु की मति पर चलकर मन को तीनों भुवनों (लोकों) का ज्ञान हो जाता है और जीव परमात्मा से मिलाप करने में समर्थ हो जाता है।

सतगुरु के उपदेश पर चलकर मन पर से आशा-तृष्णा के रंग उतर जाते हैं और जीव को अंतर में नाम (शब्द) का अमृत पीने को मिल जाता है। ऐसा जीव मान-सम्मान के साथ दसवें द्वार में दाख़िल हो जाता है। पूरे गुरु के नाम (शब्द) के कारण जीव निर्भय होकर विकाररूपी पाँचों शत्रुओं को जीत लेता है। इसको अंदर अनहद शब्द का वह अलौकिक नाद मिल जाता है जिसको सुनकर यह हर प्रकार के बाहरी नाद की ओर से मुँह मोड़ लेता है। इस दसवें द्वार में दाख़िल होने पर जीव को अपने असली स्वरूप का ज्ञान होना शुरू हो जाता है। फिर इसको पता लगता है कि मेरा मूल रूप यह शरीर या इंद्रियाँ नहीं, बल्कि शब्द (नाम) या परमात्मा है। इस प्रकार इसके अंदर परमात्मा का सच्चा प्यार जाग उठता है और यह अनहद शब्द की मीठी ध्वनि में मग्न हो जाता है।

गुरु साहिब शब्द के अंत में विनती करते हैं कि हमें सतगुरु के चरणकमलों की ओट मिल जाए, ताकि हमारा परमात्मा से मिलाप हो जाए:

मन मैगल साकत देवाना॥ बन खंड माइआ मोह हैराना॥
इत उत जाहे काल के चापे॥ गुरुमुख खोज लहै घर आपे॥
बिन गुर सबदै मन नही ठउरा॥
सिमरहो राम नाम अत निरमल अवर तिआगहो हउमै कउरा॥
इह मन मुगध कहहो किउ रहसी॥ बिन समझे जम का दुख सहसी॥
आपे बखसे सतगुर मेलै॥ काल कंटक मारे सच पेलै॥
इह मन करमा इह मन धरमा॥ इह मन पंच तत ते जनमा॥
साकत लोभी इह मन मूड़ा॥ गुरमुख नाम जपै मन रूड़ा॥
गुरमुख मन असथाने सोई॥ गुरमुख त्रिभवण सोझी होई॥

इह मन जोगी भोगी तप तापै॥ गुरमुख चीन्है हर प्रभ आपै॥
मन बैरागी हउमै तिआगी॥ घट घट मनसा दुबिधा लागी॥
राम रासाइण गुरमुख चाखै॥ दर घर महली हर पत राखै॥
इह मन राजा सूर संग्राम॥ इह मन निरभउ गुरमुख नाम॥
मारे पंच अपुनै वस कीए॥ हउमै ग्रास इकत थाए कीए॥
गुरमुख राग सुआद अन तिआगे॥ गुरमुख इह मन भगती जागे॥
अनहद सुण मानिआ सबद वीचारी॥ आतम चीन्ह भए निरंकारी॥
इह मन निरमल दर घर सोई॥ गुरमुख भगति भाउ धुन होई॥
अहिनिस हर जस गुर परसाद॥ घट घट सो प्रभ आद जुगाद॥
राम रसाइण इह मन माता॥ सरब रसाइण गुरमुख जाता॥
भगति हेत गुर चरण निवासा॥ नानक हर जन के दासन दासा॥[7]

बंधन मात पिता संसार

सतगुरु की सेवा से ही उस सच्चे ठाकुर का पता लगता है। सतगुरु शब्द का भेद देता है जिससे सच का ज्ञान होता है। गुरु की मति पर अमल करनेवाला जीव दु:खों और चिंताओं से मुक्त हो जाता है।

जिनसे हमारा मोह है, वे सभी रिश्तेदार और संबंधी बंधन का कारण हैं। माता-पिता, बेटे-बेटियाँ, स्त्री आदि सभी बंधन हैं। हौंमैं के वश किए हुए कर्म भी बंधनकारी हैं। इनका फल भोगने के लिए हमें बार-बार संसार में जन्म लेना पड़ता है।

संसार की सभी वस्तुएँ व पदार्थ बंधन का कारण हैं। किसान की खेती, राजा का कर, अमीर का धन आदि सब बंधन ही बंधन हैं।

विद्या, पांडित्य और ग्रंथों का पाठ और मनन भी बंधन का काम करते हैं, क्योंकि इनसे भी हौंमैं में वृद्धि होती है। माया ने बहुत विशाल जाल बिछाया हुआ है और संसार के सब प्राणी उसके इस जाल में फँसे हुए हैं। परमात्मा की सच्ची भक्ति के बिना इस जाल से कभी छुटकारा नहीं हो सकता। गुरु साहिब विनती करते हैं कि पूरे सतगुरु की शरण मिल जाए ताकि इस बंधन से छुटकारा हो सके:

गुर सेवे सो ठाकुर जानै॥ दूख मिटै सच सबद पछानै॥
राम जपहो मेरी सखी सखैनी॥ सतगुर सेव देखहो प्रभ नैनी॥
बंधन मात पिता संसार॥ बंधन सुत कंनिआ अर नार॥
बंधन करम धरम हउ कीआ॥ बंधन पुत कलत मन बीआ॥
बंधन किरखी करह किरसान॥ हउमै डंन सहै राजा मंगै दान॥
बंधन सउदा अणवीचारी॥ तिपत नाही माइआ मोह पसारी॥
बंधन साह संचह धन जाए॥ बिन हर भगति न पवई थाए॥
बंधन बेद बाद अहंकार॥ बंधन बिनसै मोह विकार॥
नानक राम नाम सरणाई॥ सतगुर राखे बंध न पाई॥[8]

सुण हरणा कालिआ

इस शब्द में गुरु साहिब ने मन के लिए कई उपमाओं का प्रयोग किया है। इसको काला हिरन कहा है जो भोगों की बाड़ियों की ओर जाना चाहता है। मूर्ख यह नहीं सोचता कि जिन विषय-विकारों के सुख और इंद्रियों के भोगों की ओर यह बार-बार दौड़ता है, वे चार दिन के खेल हैं। इसके बाद अनंत काल तक दु:ख सहने पड़ने हैं। मन और आत्मा को केवल परमात्मा की भक्ति और उसके नाम की कमाई में ही सच्चा सुख मिल सकता है। जबकि दूसरे सब रास्ते मौत और तबाही की घाटी की ओर जाते हैं। शब्द के बिना जीव को बाँधकर नरक में ले जाया जाएगा और वहाँ उस पर यमदूतों के हाथों की मार पड़ेगी।

गुरु साहिब मन को दुनिया की सुंदर शक्लों और सुगंधियों (विषय-विकारों) के चारों ओर घूमनेवाला भौंरा कहते हैं। जैसे भौंरा फूल में बंद होकर अपनी जान तक गँवा बैठता है, इसी तरह अज्ञानी जीव संसार के भोगों के पीछे लगकर बरबाद हो जाता है। उसे इस बात का ज्ञान ही नहीं होता कि संसार के ये भोग तो समुद्र की लहर और बिजली की चमक के समान क्षणभंगुर हैं। अनादि काल से उन भोगों में विष भरा हुआ है जो अज्ञानी जीव को मीठा लगता है, इस सच्चाई को कोई सच्चा योगी ही जानता है। गुरु साहिब विस्तारपूर्वक समझाते हैं कि शब्द के मार्ग

को छोड़कर हम जिस मार्ग पर भी चलते हैं, अंत में पछताना पड़ता है। जिसके हृदय में राम-नाम की भक्ति नहीं, वे अंत में बिलख-बिलखकर रोते हैं। शब्द के बिना जीवात्मा अज्ञानता के अँधेरे में ही भटकती रहती है।

गुरु साहिब उपदेश करते हैं कि यह संसार आत्मा का असली देश नहीं है। आत्मा को काल के जाल से बचकर रहना चाहिए, अन्यथा यह भी कालरूपी मछुए के जाल में फँसकर तड़प-तड़पकर मर जाएगी। आत्मा राम-नाम के सुमिरन द्वारा ही काल का जाल तोड़ने में समर्थ हो सकती है। जैसे अपने स्रोत से बिछुड़ी नदियाँ भाग्य से ही समुद्र में समाती हैं, इसी प्रकार परमात्मा से बिछुड़े हुए जीव परमात्मा की दया-मेहर से ही उसमें समा सकते हैं।

ऐसे सौभाग्यशाली जीव विरले ही होते हैं जिनको सतगुरु द्वारा यह ज्ञान प्राप्त हो जाता है कि दुनिया के भोग और पदार्थ माया का छलावा-मात्र हैं, नहीं तो परमेश्वर के नाम को भूले हुए लोग इस मायामय संसार में ही धक्के खाते रहते हैं और सदा काल की चोट सहते हैं:

तूं सुण हरणा कालिआ की वाड़ीऐ राता राम॥
बिख फल मीठा चार दिन फिर होवै ताता राम॥
फिर होए ताता खरा माता नाम बिन परतापए॥
ओह जेव साइर दे लहरी बिजुल जिवै चमकए॥
हर बाझ राखा कोई नाही सो तुझह बिसारिआ॥
सच कहै नानक चेत रे मन मरह हरणा कालिआ॥
भवरा फूल भवंतिआ दुख अत भारी राम॥
मै गुर पूछिआ आपणा साचा बीचारी राम॥
बीचार सतगुर मुझै पूछिआ भवर बेली रातओ॥
सूरज चड़िआ पिंड पड़िआ तेल तावण तातओ॥
जम मग बाधा खाहे चोटा सबद बिन बेतालिआ॥
सच कहै नानक चेत रे मन मरह भवरा कालिआ॥
मेरे जीअड़िआ परदेसीआ कित पवह जंजाले राम॥

साचा साहिब मन वसै की फासह जम जाले राम॥
मछुली विछुंनी नैण रुंनी जाल बधिक पाइआ॥
संसार माइआ मोह मीठा अंत भरम चुकाइआ॥
भगति कर चित लाए हर सिउ छोड मनहो अंदेसिआ॥
सच कहै नानक चेत रे मन जीअड़िआ परदेसीआ॥
नदीआ वाह विछुंनिआ मेला संजोगी राम॥
जुग जुग मीठा विस भरे को जाणै जोगी राम॥
कोई सहज जाणै हर पछाणै सतगुरू जिन चेतिआ॥
बिन नाम हर के भरम भूले पचह मुगध अचेतिआ॥
हर नाम भगति न रिदै साचा से अंत धाही रुंनिआ॥
सच कहै नानक सबद साचै मेल चिरी विछुंनिआ॥[9]

करणी कागद मन मसवाणी

इस शब्द में गुरु नानक साहिब ने कर्मों के सिद्धांत का बहुत सुंदर चित्र खींचा है। हमारी करनी काग़ज़ और मन दवात है, जिससे हमारे कर्म जीवन की पुस्तक में लेखों के समान दर्ज किए गए हैं। ये लेख हमारे नेक और बद कर्मों के अनुसार अच्छे और बुरे हैं। बार-बार किए जानेवाले कर्म हमारी आदत बन जाते हैं। कर्मों से बना प्रारब्ध जैसे हमें चलाता है वैसे ही हमें चलना पड़ता है। जीव अपनी करनी यानी कोशिश से हरि का अंत यानी भेद नहीं पा सकता।

गुरु साहिब परमात्मा के नाम का सुमिरन न करनेवाले मतवाले और मुँहज़ोर मन को परमात्मा के नाम की कमाई करने का आदेश देते हैं, ताकि नाम को भुला देने के कारण मुरझाई हुई अच्छाइयाँ फिर से हरी हो जाएँ।

आप बताते हैं कि रात और दिन जाल के समान हैं, जिसमें भोगों के चोग़े चुगने के कारण सब जीव फँसे हुए हैं। मूर्ख जीव को उन गुणों का ज्ञान नहीं, जिससे वह इस जाल से छूट सके। शरीर भट्ठी की भाँति है, जिसमें पाँच

विकारों की अग्नि जल रही है। इस भट्ठी में पापों का ईंधन जल रहा है जो मन को जलाकर राख कर देता है, हालाँकि यह मनरूपी लोहा सतगुरुरूपी पारस के स्पर्श से सोना भी बन सकता है। सतगुरु शब्द (नाम) के अमृत से इसको निर्मल बना देता है। फिर यह जन्म-मरण के चक्र से छूट जाता है:

करणी कागद मन मसवाणी बुरा भला दुए लेख पए॥
जिउ जिउ किरत चलाए तिउ चलीऐ तउ गुण नाही अंत हरे॥
चित चेतस की नही बावरिआ॥ हर बिसरत तेरे गुण गलिआ॥
जाली रैन जाल दिन हूआ जेती घड़ी फाही तेती॥
रस रस चोग चुगह नित फासह छूटस मूड़े कवन गुणी॥
काइआ आरण मन विच लोहा पंच अगन तित लाग रही॥
कोइले पाप पड़े तिस ऊपर मन जलिआ संन्ही चिंत भई॥
भइआ मनूर कंचन फिर होवै जे गुर मिलै तिनेहा॥
एक नाम अंम्रित ओह देवै तउ नानक त्रिसटस देहा॥[10]

मनमुख

घट-घट में रमा हुआ राम विषय-विकारों के राक्षसों का संहार कर देता है। उस अथाह प्रभु की थाह सतगुरु के उपदेश पर चलने से मिलती है। गुरु को सम्मुख रखनेवाला जीव सहज ही भवसागर से पार हो जाता है।

ऐसे गुरुमुख के विपरीत जो मनमुख है वह सदा जन्म-मरण की चोटें खाता रहता है। उसके शुभ कर्म लाभदायक सिद्ध नहीं होते, इसलिए उसको यमदूतों द्वारा अनादर सहना पड़ता है। जो दुहागिन जीवात्मा अपने सच्चे प्रियतम को भुलाकर पराए पुरुष अर्थात् संसार के रिश्तों, पदार्थों आदि के साथ रंगरलियाँ मनाती रहती है, वह कभी भी पति-परमेश्वर के घर स्वीकार नहीं की जा सकती।

प्रेत के पिंजरे यानी शरीर के बंधनों में जकड़ा हुआ मनमुख यहाँ भी अनेक दुःख सहता है और मौत के बाद भी वह बेइज़्ज़त होता है यानी नरकों की आग में जलता है। धर्मराज ऐसे पापियों पर तरस नहीं करता।

मनमुख सदा आशा-तृष्णा की आग में जलता रहता है। वह ढीठ बनकर पशुओं की वृत्ति धारण कर लेता है, फिर वह पापों और विकारों में बुरी तरह लिप्त हो जाता है। झूठ द्वारा ठगी हुई दुनिया, गुरुमत का मार्ग छोड़कर दूसरे मार्ग पर चलती है और माया की अग्नि में जलती रहती है, क्योंकि मायारूपी ज़हरीली सर्पिणी जीव के साथ ही रहती है। माया की पैदा की हुई दुबिधा ने असंख्य जीवों को बरबाद कर दिया है।

संसार के जीव मित्रों, संबंधियों, पत्नी और संतान के मोह में जकड़े हुए हैं। यह सब माया का पसारा है, जिसका भ्रमजाल पूरे गुरु की दया से ही टूटता है। सतगुरु ही युगों-युगों से भवसागर से पार करानेवाला जहाज़ है।

मनमुख कुमार्ग पर चलकर नरकों की आग में जलता है, जबकि गुरुमुख सतगुरु की कृपा से मिलनेवाले नाम का अमृत पीकर अमर हो जाता है। सतगुरु के उपदेश पर चलने से मन में इतनी शक्ति आ जाती है कि मनुष्य ख़ुशी-ख़ुशी धीरज और संतोष के साथ प्रारब्ध की चोटें सह लेता है। उसके पैरों पर दुनिया के दुःखों के काँटों का प्रभाव नहीं पड़ता।

मनमुख उस पत्थर के समान है जो पानी से नहीं भीगता। मनमुख अपना अंत समय भुला देता है और मनमति नहीं त्यागता। मनमुख सूअर या कुत्ते के समान होते हैं, जो माया के लोभ में भौंक-भौंककर मरते और जन्म लेते रहते हैं। हौंमैं और द्वैत भी मनमुखों के विनाश का कारण बन जाते हैं। हौंमैं और द्वैत की एकमात्र दवा परमपिता परमात्मा का सच्चा प्रेम है, जिसकी दात पूरे सतगुरु से मिलती है:

असुर सघारण राम हमारा॥ घट घट रमईआ राम पिआरा॥
नाले अलख न लखीऐ मूले गुरमुख लिख वीचारा हे॥
गुरमुख साधू सरण तुमारी॥ कर किरपा प्रभ पार उतारी॥
अगन पाणी सागर अत गहरा गुर सतगुर पार उतारा हे॥
मनमुख अंधुले सोझी नाही॥ आवह जाहे मरह मर जाही॥
पूरब लिखिआ लेख न मिटई जम दर अंध खुआरा हे॥

इक आवह जावह घर वास न पावह॥ किरत के बाधे पाप कमावह॥
अंधुले सोझी बूझ न काई लोभ बुरा अहंकारा हे॥
पिर बिन किआ तिस धन सीगारा॥ पर पिर राती खसम विसारा॥
जिउ बेसुआ पूत बाप को कहीऐ तिउ फोकट कार विकारा हे॥
प्रेत पिंजर मह दूख घनेरे॥ नरक पचह अगिआन अंधेरे॥
धरम राए की बाकी लीजै जिन हर का नाम विसारा हे॥
सूरज तपै अगन बिख झाला॥ अपत पसू मनमुख बेताला॥
आसा मनसा कूड़ कमावह रोग बुरा बुरिआरा हे॥
मसतक भार कलर सिर भारा॥ किउ कर भवजल लंघस पारा॥
सतगुर बोहिथ आद जुगादी राम नाम निसतारा हे॥
पुत्र कलत्र जग हेत पिआरा॥ माइआ मोह पसरिआ पासारा॥
जम के फाहे सतगुर तोड़े गुरमुख तत बीचारा हे॥
कूड़ मुठी चालै बहु राही॥ मनमुख दाझै पड़ पड़ भाही॥
अंम्रित नाम गुरू वड दाणा नाम जपहो सुख सारा हे॥
सतगुर तुठा सच द्रिड़ाए॥ सभ दुख मेटे मारग पाए॥
कंडा पाए न गडई मूले जिस सतगुर राखणहारा हे॥
खेहू खेह रलै तन छीजै॥ मनमुख पाथर सैल न भीजै॥
करण पलाव करे बहुतेरे नरक सुरग अवतारा हे॥
माइआ बिख भुइअंगम नाले॥ इन दुबिधा घर बहुते गाले॥
सतगुर बाझहो प्रीत न उपजै भगति रते पतीआरा हे॥
साकत माइआ कउ बहु धावह॥ नाम विसार कहा सुख पावह॥
त्रिहु गुण अंतर खपह खपावह नाही पार उतारा हे॥
कूकर सूकर कहीअह कुड़िआरा॥ भउक मरह भउ भउ भउ हारा॥
मन तन झूठे कूड़ कमावह दुरमत दरगह हारा हे॥
सतगुर मिलै त मनूआ टेकै॥ राम नाम दे सरण परेकै॥
हर धन नाम अमोलक देवै हर जस दरगह पिआरा हे॥
राम नाम साधू सरणाई॥ सतगुर बचनी गत मित पाई॥
नानक हर जप हर मन मेरे हर मेले मेलणहारा हे॥[11]

घर रहो रे मन

गुरु नानक साहिब इस शब्द में मूर्ख मन को समझा रहे हैं कि तू टिककर घर के अंदर (आँखों के पीछे दसवें द्वार में) बैठ और बार-बार बाहर जाने की कोशिश न कर। वे मन को समझाते हैं कि मौत को कभी न भुला और न ही कभी परमात्मा के नाम को विसार। जो नाम को भुला देते हैं, वे मौत और दुःखों की चोटें खाते हैं। इसलिए तू दुनिया के लालच छोड़कर अपरंपार परमात्मा से प्रेम कर और नाम से जुड़, यही मुक्ति का असली मार्ग है। नाम से जुड़ने की युक्ति सतगुरु से प्राप्त होती है। जब सतगुरु से नाम का भेद मिल जाए तो प्रतिदिन नियमपूर्वक नाम का अभ्यास करना चाहिए। दिन-रात इस नाम से अंतर में जुड़े रहना ही सारी पूजा और जप-तप का सार है।

गुरु साहिब इस शब्द में अनेक प्रकार के कर्मकांड, हठयोग आदि का भी खंडन करते हैं। नाम यानी परमात्मारूपी सार-पदार्थ जीव के अपने अंदर है। इसलिए उसे बाहर ढूँढ़ने का कोई भी प्रयत्न कभी सफल नहीं हो सकता। गुरु की बताई विधि के अनुसार राम-नाम जपो। नाम रस की संतों के सत्संग में खोज करो। नामरूपी सच्चे तीर्थ में स्नान करो तथा प्रभु के गुणों का चिंतन करो। नामरूपी परम तत्त्व का विचार अर्थात् अभ्यास करो और प्रभु से लिव लगाओ, क्योंकि राम-नाम से प्रेम करनेवाले की मौत के समय यमदूत उसके निकट नहीं आते। पाँच तत्त्वों से बनी इसी काया में नामरूपी रत्न को पहचानो। आत्मा की पहचान द्वारा परमात्मा की पहचान करो। यह लाभ गुरु की संगति से मिलता है। विचार करके देख, मेरी-मेरी करनेवाले यहाँ से क्या लेकर जाते हैं? पापों का ज़हर और विकारों की राख। इसलिए परमात्मा की भक्ति करो, जिससे मन अपने ठिकाने (त्रिकुटी में) पहुँच जाए और अकथ प्रभु का ज्ञान हो जाए। बाहर जा रहे मन को (गुरु की बताई युक्ति के अनुसार) बार-बार अंदर लाओ और आँखों के पीछे एकाग्र करो, इनसे दुःखों के सब बंधन कट जाएँगे।

जो जीव पूरे गुरु की शरण ले लेता है, उसको यमदूतों के हाथों परेशान नहीं होना पड़ता। पूरा सतगुरु परम तत्त्व का ज्ञाता होता है और उसके अंदर शब्द घर कर चुका होता है। इसलिए काल (शैतान) की कोई ताक़त पूरे

गुरु के शिष्य का बाल भी बाँका नहीं कर सकती। परंतु मनमुख संसार की वस्तुओं, पदार्थों, मोहमाया, आशा-तृष्णा, हौंमैं और ममता का शिकार रहता है। उसके मन से यमदूतों का भय कभी दूर नहीं हो सकता और वह सदा जन्म-मरण के कभी समाप्त न होनेवाले चक्र में फँसा रहता है:

घर रहो रे मन मुगध इआने॥ राम जपहो अंतरगत धिआने॥
लालच छोड रचहो अपरंपर इउ पावहो मुकत दुआरा हे॥
जिस बिसरिऐ जम जोहण लागै॥ सभ सुख जाहे दुखा फुन आगै॥
राम नाम जप गुरमुख जीअड़े एह परम तत वीचारा हे॥
हर हर नाम जपहो रस मीठा॥ गुरमुख हर रस अंतर डीठा॥
अहिनिस राम रहहो रंग राते एह जप तप संजम सारा हे॥
राम नाम गुर बचनी बोलहो॥ संत सभा मह इह रस टोलहो॥
गुरमत खोज लहहो घर अपना बहुड़ न गरभ मझारा हे॥
सच तीरथ नावहो हर गुण गावहो॥ तत वीचारहो हर लिव लावहो॥
अंत काल जम जोह न साकै हर बोलहो राम पिआरा हे॥
सतगुर पुरख दाता वड दाणा॥ जिस अंतर साच सो सबद समाणा॥
जिस कउ सतगुर मेल मिलाए तिस चूका जम भै भारा हे॥
पंच तत मिल काइआ कीनी॥ तिस मह राम रतन लै चीनी॥
आतम राम राम है आतम हर पाईऐ सबद वीचारा हे॥
सत संतोख रहहो जन भाई॥ खिमा गहहो सतगुर सरणाई॥
आतम चीन परातम चीनहो गुर संगत इह निसतारा हे॥
साकत कूड़ कपट मह टेका॥ अहिनिस निंदा करह अनेका॥
बिन सिमरन आवह फुन जावह ग्रभ जोनी नरक मझारा हे॥
साकत जम की काण न चूकै॥ जम का डंड न कबहू मूकै॥
बाकी धरम राए की लीजै सिर अफरिओ भार अफारा हे॥
बिन गुर साकत कहहो को तरिआ॥ हउमै करता भवजल परिआ॥
बिन गुर पार न पावै कोई हर जपीऐ पार उतारा हे॥
गुर की दात न मेटै कोई॥ जिस बखसे तिस तारे सोई॥

जनम मरण दुख नेड़ न आवै मन सो प्रभ अपर अपारा हे॥
गुर ते भूले आवहो जावहो॥ जनम मरहो फुन पाप कमावहो॥
साकत मूड़ अचेत न चेतह दुख लागै ता राम पुकारा हे॥
सुख दुख पुरब जनम के कीए॥ सो जाणै जिन दातै दीए॥
किस कउ दोस देह तू प्राणी सहु अपणा कीआ करारा हे॥
हउमै ममता करदा आइआ॥ आसा मनसा बंध चलाइआ॥
मेरी मेरी करत किआ ले चाले बिख लादे छार बिकारा हे॥
हर की भगति करहो जन भाई॥ अकथ कथहो मन मनह समाई॥
उठ चलता ठाक रखहो घर अपुनै दुख काटे काटणहारा हे॥
हर गुर पूरे की ओट पराती॥ गुरमुख हर लिव गुरमुख जाती॥
नानक राम नाम मत ऊतम हर बखसे पार उतारा हे॥[12]

काम क्रोध परहर पर निंदा

आंतरिक रूहानी उन्नति करके परमात्मा से मिलाप करने के लिए आवश्यक है कि पहले काम, क्रोध, लोभ, मोह और अहंकाररूपी पाँच विकारों का त्याग कर दिया जाए। इन विकारों के त्याग के बिना नाम का अमृत प्राप्त कर सकना असंभव है। गुरु साहिब यहाँ इस रूहानी भेद की ओर संकेत कर रहे हैं कि शरीर के निचले छः चक्रों में भ्रम और माया का राज्य है। इनसे निराला होकर जीव अपने अंतर में शब्द यानी नामरूपी हरिरस में समा सकते हैं।

नाम की कमाई से जब सुरत अंदर जाना शुरू करती है तो शुरू-शुरू में बिजली की चमक दिखाई देती है। इसके बाद जगमग करती हुई ज्योति के दर्शन होते हैं और फिर सुरत सूर्यलोक और चंद्रलोक में से गुज़रती है। इस प्रकार अनेक मंडलों को पार करके आनंद स्वरूप परमात्मा से मिलाप कर लेती है, फिर उसे तीनों भुवनों (लोकों) में उसी परमात्मा का प्रकाश दिखाई देता है।

आत्मा और परमात्मा के बीच में गुरु एक आवश्यक बिचौलिया है। गुरु के माध्यम के बिना परमात्मा की प्राप्ति कठिन ही नहीं, असंभव है।

मनमुख लोग सुरत को शब्द से जोड़ने की युक्ति नहीं जानते, इसलिए वे सदा जन्म-मरण के बंधनों में जकड़े रहते हैं। लेकिन सतगुरु की दया होने से अंदर अनहद शब्द की ध्वनि सुनाई देने लगती है, जिससे निरंजन अर्थात् परमात्मा की प्राप्ति हो जाती है। सतगुरु ही उस अलख को लखाता है और वही अमर जीवन प्रदान करनेवाला नामरूपी अमृत देता है। जब अंतर में नामरूपी अमूल्य हीरा प्राप्त होता है तो मन वश में आ जाता है। उस नाम की कमाई से घट यानी शरीर के अंदर औघट यानी कठिन मार्ग पार करके सब प्रकार के भय का नाश करनेवाला प्रभु मिल जाता है और फिर दोबारा जन्म-मरण में नहीं आना पड़ता। जो व्यक्ति सतगुरु की मति के अनुसार अंदर नाम (शब्द) की कमाई करता है, यमदूत और काल भी उसके सेवक बन जाते हैं।

शब्द का अभ्यास करने से आत्मा सबसे ऊँचे रूहानी मंडल में पहुँच जाती है। वहाँ अमर जीवन प्रदान करनेवाले नाम यानी प्रभुरूपी अमृत में सदा के लिए लीन हो जाती है। इस मंडल में पूर्ण अद्वैत है। यह मंडल मन-इंद्रियों, तर्क-बुद्धि और समय-स्थान की सीमा से परे है। गुरु साहिब कहते हैं कि यदि कोई माया से निर्लेप होकर मन को बाहर से मोड़कर अंदर आँखों के पीछे लाकर शब्द से जोड़ देता है और अपने अंदर इस सच के प्रकाश को देख लेता है, तो उसे बाहर भी हर स्थान पर वही नूर भरपूर दिखाई देता है:

काम क्रोध परहर पर निंदा॥ लब लोभ तज होहो निचिंदा॥
भ्रम का संगल तोड़ निराला हर अंतर हर रस पाइआ॥
निस दामन जिउ चमक चंदाइण देखै॥ अहिनिस जोत निरंतर पेखै॥
आनंद रूप अनूप सरूपा गुर पूरै देखाइआ॥
सतगुर मिलहो आपे प्रभ तारे॥ ससि घर सूर दीपक गैणारे॥
देख अदिसट रहहो लिव लागी सभ त्रिभवण ब्रहम सबाइआ॥
अंम्रित रस पाए त्रिसना भउ जाए॥ अनभउ पद पावै आप गवाए॥
ऊची पदवी ऊचो ऊचा निरमल सबद कमाइआ॥
अद्रिसट अगोचर नाम अपारा॥ अत रस मीठा नाम पिआरा॥

नानक कउ जुग जुग हर जस दीजै हर जपीऐ अंत न पाइआ॥
अंतर नाम परापत हीरा॥ हर जपते मन मन ते धीरा॥
दुघट घट भउ भंजन पाईऐ बाहुड़ जनम न जाइआ॥
भगति हेत गुर सबद तरंगा॥ हर जस नाम पदारथ मंगा॥
हर भावै गुर मेल मिलाए हर तारे जगत सबाइआ॥
जिन जप जपिओ सतगुर मत वा के॥
जमकंकर काल सेवक पग ता के॥
ऊतम संगत गत मित ऊतम जग भउजल पार तराइआ॥
इह भवजल जगत सबद गुर तरीऐ॥ अंतर की दुबिधा अंतर जरीऐ॥
*पंच बाण ले जम कउ मारै गगनंतर धणख चड़ाइआ॥**
साकत नर सबद सुरत किउ पाईऐ॥ सबद सुरत बिन आईऐ जाईऐ॥
नानक गुरमुख मुकत पराइण हर पूरै भाग मिलाइआ॥
निरभउ सतगुर है रखवाला॥ भगति परापत गुर गोपाला॥
धुन अनंद अनाहद वाजै गुर सबद निरंजन पाइआ॥
निरभउ सो सिर नाही लेखा॥ आप अलेख कुदरत है देखा॥
आप अतीत अजोनी संभउ नानक गुरमत सो पाइआ॥
अंतर की गत सतगुर जाणै॥ सो निरभउ गुर सबद पछाणै॥
अंतर देख निरंतर बूझै अनत न मन डोलाइआ॥
निरभउ सो अभ अंतर वसिआ॥ अहिनिस नाम निरंजन रसिआ॥
नानक हर जस संगत पाईऐ हर सहजे सहज मिलाइआ॥
अंतर बाहर सो प्रभ जाणै॥ रहै अलिपत चलते घर आणै॥
ऊपर आद सरब तिहु लोई सच नानक अंम्रित रस पाइआ॥[13]

---

* **पंच बाण**=कुछ विद्वान पाँच बाण का अर्थ शील, संतोष, क्षमा, विवेक और नम्रता करते हैं, परंतु यहाँ पाँच शब्दों की ओर संकेत है; **पंच...मारै**=पाँच शब्दों द्वारा यम मारा जाता है; **गगनंतर**=अंतर में दूसरे रूहानी मंडल का एक पड़ाव; **पंच...चड़ाइआ**=गगन के अंदर शब्द का बाण चलाने से काल या मन मारा गया अर्थात् दूसरा मंडल पार करने में सफल हो गए।

प्रेम

आवहो भैणे गल मिलह

आत्मा दुल्हिन है और परमात्मा दूल्हा। एक आत्मारूपी सखी दूसरी आत्मारूपी सखी से कहती है कि आओ, उस सर्वशक्तिमान कंत का यशोगान करें। वे कहती हैं कि हमारा कंत गुणों का भंडार है, परंतु हम अवगुणों से भरी हुई हैं। जब हमारा वह कंत ही सबका कर्ता है, सर्वसमर्थ है और हर प्रकार से पूर्ण है तो फिर उसको छोड़कर किसी दूसरे का ख़याल भी क्यों किया जाए? अर्थात् हमें एक परमात्मा के नाम की कमाई करनी चाहिए। वह एक परमात्मा अनेक रूप, शक्ल, वर्ण, आकार और जाति का रूप धारण करके प्रकट हो जाता है और अनगिनत जीव-जंतु दिन-रात उसकी महिमा और प्रशंसा करने में लगे हुए हैं। उसकी क़ुदरत और दात की क़ीमत कोई नहीं जानता।

जीवात्मारूपी स्त्री किन गुणों को धारण करे जिनसे वह प्रियतम प्रसन्न हो? उसको चाहिए कि धैर्य और संतोष का शृंगार करे और मीठे वचन बोले। जब उसे सच्चा सतगुरु मिला जाए, तो वह सतगुरु के उपदेश के अनुसार शब्द की कमाई भी करे, तभी उसका अपने सुंदर और आनंद-रूप पति से मिलाप होगा और फिर आत्मा को सच्ची शोभा प्राप्त हो जाएगी:

आवहो भैणे गल मिलह अंक सहेलड़ीआह॥
मिल कै करह कहाणीआ संम्रथ कंत कीआह॥
साचे साहिब सभ गुण अउगण सभ असाह॥

करता सभ को तेरै जोर॥
एक सबद बीचारीऐ जा तू ता किआ होर॥
जाए पुछहो सोहागणी तुसी राविआ किनी गुंणी॥
सहज संतोख सीगारीआ मिठा बोलणी॥
पिर रीसालू ता मिलै जा गुर का सबद सुणी॥
केतीआ तेरीआ कुदरती केवड तेरी दात॥
केते तेरे जीअ जंत सिफत करह दिन रात॥
केते तेरे रूप रंग केते जात अजात॥
सच मिलै सच ऊपजै सच मह साच समाए॥
सुरत होवै पत ऊगवै गुर बचनी भउ खाए॥
नानक सचा पातिसाह आपे लए मिलाए॥[1]

इक तिल पिआरा वीसरै

उस प्यारे प्रियतम को पल भर के लिए भी भुलाना भारी रोग को निमंत्रण देना है। यदि वह प्रियतम मन में न बसे तो इसको दरगाह में कैसे शोभा मिल सकेगी? यह सच्ची शोभा तब ही मिलेगी जब पूरे गुरु की दया से विकारों की अग्नि शांत हो जाएगी।

संसार में विरले ही प्राणी हैं जो पल-पल और क्षण-क्षण उस प्रियतम प्रभु का ध्यान करते हैं। गुरु की दया से उनकी ज्योति (आत्मा) परम ज्योति (परमात्मा) में समा जाती है। ऐसे जीव हिंसा, हौंमैं, भ्रम, संशय और दुःख-संताप से छुटकारा पा लेते हैं। मन को वश में करके परमात्मा से मिलाप करनेवाले गुरुमुख बड़े भाग्य से मिलते हैं।

संसार की नाशवान वस्तुओं और पदार्थों से प्यार करना मूर्खता है। गुरुमुख मन की संपूर्ण अग्नि को शांत कर लेते हैं और उनका हृदय-कमल नाम के अमृत से भर जाता है:

इक तिल पिआरा वीसरै रोग वडा मन माहे॥
किउ दरगह पत पाईऐ जा हर न वसै मन माहे॥

गुर मिलिऐ सुख पाईऐ अगन मरै गुण माहे॥
मन रे अहिनिस हर गुण सार॥
जिन खिन पल नाम न वीसरै ते जन विरले संसार॥
जोती जोत मिलाईऐ सुरती सुरत संजोग॥
हिंसा हउमै गत गए नाही सहसा सोग॥
गुरमुख जिस हर मन वसै तिस मेले गुर संजोग॥
काइआ कामण जे करी भोगे भोगणहार॥
तिस सिउ नेह न कीजई जो दीसै चलणहार॥
गुरमुख रवह सोहागणी सो प्रभ सेज भतार॥
चारे अगन निवार मर गुरमुख हर जल पाए॥
अंतर कमल प्रगासिआ अंम्रित भरिआ अघाए॥
नानक सतगुर मीत कर सच पावह दरगह जाए॥[2]

सतगुर मेली भै वसी

अपनी ओर से सब जीवात्माएँ उस परमेश्वररूपी पति को प्रसन्न करने के लिए अनेक प्रकार के शृंगार करती हैं। परमात्मा के सच्चे भक्त तो उन सुहागिनों के समान हैं जिनके हृदय में प्रियतम का सच्चा प्रेम और सच्चा भय होता है; परंतु मनमुखों को अपने धर्मकर्म और आचार-विचार का मान होता है। इसलिए वह बेपरवाह प्रियतम उन हौंमैं की शिकार स्त्रियों की ओर कोई ध्यान नहीं देता।

गुरु साहिब उपदेश करते हैं कि आत्मारूपी स्त्री का असली गहना शब्द है। उसको सच्चे हृदय, सच्चे प्रेम और सच्ची नम्रता का शृंगार करके पति का हुक्म मानना चाहिए। उसको अपने आभूषण उसके प्रेम के गहरे रंग में रँगने चाहिएँ और अपना तन और मन उसको अर्पण करके उसकी सेवा करनी चाहिए।

प्रेमी जीवात्मा सदा प्रियतम प्रभु के प्रेम के रंग में रँगी रहती है। वह अपने प्रियतम के सिवाय किसी अन्य को पुरुष ही नहीं मानती। सच्ची गुरुभक्ति के द्वारा ही उसे यह अवस्था प्राप्त होती है। वह अजर-अमर

कंत की नारी है, इसलिए उसका सुहाग अटल है। उसके अंदर शब्द की ज्योति जलने लगती है, जो कभी बुझती नहीं। वह अपना महल (मंदिर) दशम द्वार को बनाती है और अपने प्रियतम को मन में बसाने के लिए गले में नाम का हार पहनती है और माथे पर प्यार का टीका लगाती है जो मणि के समान चमकता है। सब जीवात्माएँ उस प्रभुरूपी पति को प्रसन्न करने के लिए शृंगार करती हैं अर्थात् प्रभु के मिलाप के लिए उपाय करती हैं। जो अपने शृंगार का दिखावा करती हैं उनके सुंदर लाल वस्त्र (लाल सुहाग का चिह्न) व्यर्थ हैं, क्योंकि पाखंड के द्वारा प्रभु का प्रेम नहीं मिल सकता। कृत्रिमता या दिखावा दुर्दशा का कारण बनता है। इसके विपरीत जो अपने प्रियतम (लाल) के प्रेम के रंग में रँगी हुई है। उसके हृदय में प्रभु का सच्चा भय है, वह प्रेम में लीन है और प्रेम द्वारा सँवारी हुई है अर्थात् प्रभु-प्रेम ही उसका शृंगार और उसकी शोभा है। वह प्रियतम की चेरी कहलाती है और उसका नाम जपती है। जो जीवात्मारूपी स्त्री अंदर (शब्द-स्वरूपी) सतगुरु में समा जाती है, वह कभी विधवा नहीं हो सकती, क्योंकि उसका प्रियतम सुंदर, आनंद-स्वरूप और अमर है। वह स्त्री (धन) शब्दरूपी सच की चोटी गूँथती है, प्रेम उसके सुंदर वस्त्र और शृंगार हैं।

इसके विपरीत जो दुहागिन उस प्रभुरूपी प्रियतम से प्यार नहीं करती, उसकी जीवनरूपी रात अज्ञानता और दुःखों के अँधेरे में सोते हुए ही बीत जाती है। वह पति से बिछुड़ी रहती है और उसके दुःखों की कभी समाप्ति नहीं होती। गुरु साहिब बताते हैं, प्रेमरहित स्त्री का तो मनुष्य-जन्मरूपी यौवन व्यर्थ चला जाता है। अज्ञानी जीवात्मा सो रही है, वह यह नहीं जानती कि कंत तो सेज पर ही है अर्थात् परमात्मा अंदर ही है। केवल सतगुरु ही परमात्मा के सच्चे प्रेम और सच्चे भय को प्राप्त करने की युक्ति सिखाता है और बिछुड़ी हुई विरहिणी को उसके साथ मिलाता है:

सभे कंत महेलीआ सगलीआ करह सीगार॥
गणत गणावण आईआ सूहा वेस विकार॥

पाखंड प्रेम न पाईऐ खोटा पाज खुआर॥
हर जीउ इउ पिर रावै नार॥
तुध भावन सोहागणी अपणी किरपा लैह सवार॥
गुर सबदी सीगारीआ तन मन पिर कै पास॥
दुए कर जोड़ खड़ी तकै सच कहै अरदास॥
लाल रती सच भै वसी भाए रती रंग रास॥
प्रिअ की चेरी कांढीऐ लाली मानै नाउ॥
साची प्रीत न तुटई साचे मेल मिलाउ॥
सबद रती मन वेधिआ हउ सद बलिहारै जाउ॥
सा धन रंड न बैसई जे सतगुर माहे समाए॥
पिर रीसालू नउतनो साचउ मरै न जाए॥
नित रवै सोहागणी साची नदर रजाए॥
साच धड़ी धन माडीऐ कापड़ प्रेम सीगार॥
चंदन चीत वसाइआ मंदर दसवा दुआर॥
दीपक सबद विगासिआ राम नाम उर हार॥
नारी अंदर सोहणी मसतक मणी पिआर॥
सोभा सुरत सुहावणी साचै प्रेम अपार॥
बिन पिर पुरख न जाणई साचे गुर कै हेत पिआर॥
निस अंधिआरी सुतीए किउ पिर बिन रैण विहाए॥
अंक जलउ तन जालीअउ मन धन जल बल जाए॥
जा धन कंत न रावीआ ता बिरथा जोबन जाए॥
सेजै कंत महेलड़ी सूती बूझ न पाए॥
हउ सुती पिर जागणा किस कउ पूछउ जाए॥
सतगुर मेली भै वसी नानक प्रेम सखाए॥[3]

राम नाम मन बेधिआ

इस शब्द के आरंभ में गुरु नानक देव जी प्रेमी के मन की दशा का सुंदर वर्णन करते हैं। जिस प्रेमी के हृदय में प्रेम का बाण लग जाता है उसको

सिवाय प्रियतम के और कुछ नहीं सूझता, कोई दूसरी वस्तु नहीं भाती। उसकी सुरत अंदर शब्द से जुड़ जाती है। वह अमर सुख के स्रोत में समा जाता है। वह मालिक के भाणे (रज़ा) में आ जाता है और राम-नाम उसके जीवन का असली सहारा बन जाता है।

आपने यह समझाया है कि जिस प्रभु ने आत्मा को तन-मन से सँवारा है, उसके शब्द (नाम) से सुरत को जोड़ना ही प्रभु का सच्चा प्रेम है और इसी से प्रियतम का मिलाप और सहज सुख प्राप्त होता है। अब आप अनेक प्रकार के हठ कर्मों का वर्णन करते हैं जिनके द्वारा लोग मन को वश में करने और प्रभु से मिलाप करने का प्रयत्न करते हैं। आप कहते हैं कि यदि शरीर को अग्नि में जला दिया जाए, अपने मांस का कण-कण यज्ञ में सामग्री के रूप में जलाया जाए, सिर को आरे के नीचे चिरा लिया जाए, शरीर हिमालय की बर्फ़ में गला दिया जाए और अन्य ऐसे अनेक प्रकार के कर्म कर लिए जाएँ तब भी मन पर चढ़ी हौंमैं की मैल दूर नहीं होती। इन सब प्रयत्नों के बावजूद नाम का अमूल्य धन नहीं मिल सकता, क्योंकि कोई भी कर्म राम-नाम की बराबरी नहीं कर सकता। यदि सोने के क़िले, हाथी, घोड़े, गाय और भूमि आदि का बेहिसाब दान दे दिया जाए तो भी मन से हौंमैं का नाश नहीं होगा। ग्रंथ-शास्त्रों का पाठ और विचार भी आत्मा के बंधन नहीं तोड़ सकता।

इन बंधनों को तोड़कर मुक्ति प्राप्त करने का एकमात्र रास्ता है – सतगुरु के बख़्शे नाम (शब्द) की कमाई करना। शब्द के सच्चे मार्ग पर चलने का कर्म बाक़ी हर प्रकार के धर्मकर्म से ऊँचा और निर्मल है। जब हम इस सच को जीवन में धारण कर लेते हैं तो हम सब जीवों में एक प्रभु का ही नूर दिखाई देने लगता है। सब बर्तन एक ही कुम्हार के सिरजे हुए दिखाई देते हैं और तीनों लोकों में एक ही प्रभु का प्रकाश समाया हुआ दिखाई देता है। इस अवस्था में सब लोग ऊँचे से ऊँचे दिखाई देते हैं, कोई भी छोटा या बुरा नहीं लगता। यह ज्ञान उस परमेश्वर की कृपा होने पर सतगुरु द्वारा मिलता है और सतगुरु के बख़्शे शब्द, नाम या सच के दान को कोई छीन नहीं सकता।

सौभाग्य से जब पूरे सतगुरु से मिलाप हो जाता है तो उसके भाणे में रहने से मन, संतोष और शांति से भर जाता है। जब शिष्य अपनी हौंमैं का त्याग करके अंतर में सतगुरु में समा जाता है तो उसको परमेश्वररूपी अकथ कथा का ज्ञान हो जाता है। मन की ज़िद और बुद्धि की चतुराई जीव को कितने ही मार्ग सुझाती है। वेदों और शास्त्रों से कितनी ही प्रेरणाएँ मिलती हैं, लेकिन मन जब भी वश में आता है, राम-नाम के द्वारा ही आता है और यह दान सतगुरु से मिलता है। शब्द (नाम) का अमृत पीकर मन सदा के लिए शांत और निश्चल हो जाता है, तब जीव को परमात्मा की दरगाह में पहुँचने का मान प्राप्त हो जाता है। वह प्रतिदिन शब्द की सुहानी किंगरी सुनता है, जो हर जीव के अंदर बज रही है। कोई विरले और भाग्यशाली जीव हैं जो गुरुमुखों के उपदेश द्वारा मन को वश में करके अंतर में शब्द (नाम) यानी परमात्मा में समाते हैं। गुरु साहिब उपदेश करते हैं कि नाम को कभी नहीं भुलाना चाहिए, क्योंकि जब भी बंधनों से छुटकारा होगा नाम (शब्द) की कमाई से होगा:

राम नाम मन बेधिआ अवर कि करी वीचार॥
सबद सुरत सुख ऊपजै प्रभ रातउ सुख सार॥
जिउ भावै तिउ राख तूं मै हर नाम अधार॥
मन रे साची खसम रजाए॥
जिन तन मन साज सीगारिआ तिस सेती लिव लाए॥
तन बैसंतर होमीऐ इक रती तोल कटाए॥
तन मन समधा जे करी अनदिन अगन जलाए॥
हर नामै तुल न पुजई जे लख कोटी करम कमाए॥
अरध सरीर कटाईऐ सिर करवत धराए॥
तन हैमंचल गालीऐ भी मन ते रोग न जाए॥
हर नामै तुल न पुजई सभ डिठी ठोक वजाए॥
कंचन के कोट दत करी बहु हैवर गैवर दान॥
भूमि दान गऊआ घणी भी अंतर गरब गुमान॥

राम नाम मन बेधिआ गुर दीआ सच दान॥
मनहठ बुधी केतीआ केते बेद बीचार॥
केते बंधन जीअ के गुरमुख मोख दुआर॥
सचहो ओरै सभ को उपर सच आचार॥
सभ को ऊचा आखीऐ नीच न दीसै कोए॥
इकनै भांडे साजिऐ इक चानण तिहु लोए॥
करम मिलै सच पाईऐ धुर बखस न मेटै कोए॥
साध मिलै साधू जनै संतोख वसै गुर भाए॥
अकथ कथा वीचारीऐ जे सतगुर माहे समाए॥
पी अंम्रित संतोखिआ दरगह पैधा जाए॥
घट घट वाजै किंगुरी अनदिन सबद सुभाए॥
विरले कउ सोझी पई गुरमुख मन समझाए॥
नानक नाम न वीसरै छूटै सबद कमाए॥[4]

मिल वर नारी मंगल गाइआ

जिस जीवात्मारूपी स्त्री का परमात्मारूपी पति घर नहीं आता, उसकी जीवनरूपी रात निद्रारहित और दुःखों में बीतती है। वह प्रियतम के वियोग में कुम्हला जाती है, वियोग के दुःख में कमज़ोर हुई वह हमेशा इसी इंतज़ार में रहती है कि कब प्रियतम को इन आँखों से देखे। यदि प्रियतम घर आ जाए तो उसके साथ रात सुख में बीतती है। जिस स्त्री ने सब शृंगार किए हुए हैं, परंतु उसका पति उसके पास नहीं उसका शृंगार किसी काम का नहीं। सखियों से पूछकर देख लें कि कंत के बिना घर में सुखपूर्वक निवास नहीं हो सकता, वह जीवात्मा निमानी हो जाती है। जिस जीव को संसार के सब सुख प्राप्त हैं, परंतु वह परमात्मा से दूर है, उसको कभी सच्चे सुख की साँस नहीं आ सकती और उसके मन में कभी शांति नहीं आ सकती। उसकी मदमस्त युवावस्था अहंकार के कारण व्यर्थ चली जाती है। जिस प्रकार दुहा हुआ दूध वापस थनों में नहीं जा सका इसी प्रकार मनुष्य-जन्मरूपी यौवन वापस नहीं आता और प्रभु के

मिलाप का यह अवसर हाथ से चला जाता है। जीवात्मारूपी स्त्री तभी परमात्मारूपी पति से मिल सकती है, जब वह स्वयं मिलाता है। इंद्रियों के भोग, विषय-विकार कभी सच्चा सुख नहीं दे सकते, क्योंकि ये सब आरज़ी और नाशवान होते हैं और इनकी तह में डर या दुःख समाया रहता है। सच्चा और सदा का सुख केवल अजर, अमर और आनंद-स्वरूप परमात्मारूपी अटल सुहाग के मिलाप से ही प्राप्त हो सकता है। गुरु साहिब कहते हैं, जब प्रभुरूपी सच की पहचान हो गई तो बाहरमुखी अर्थात् बाहर इधर-उधर भटकता मन अंदर निश्चल हो गया और वह सदा के लिए नई नवेली और सुंदर बन गई। शब्द के प्रेम से आत्मा सदा जवान और सुंदर रहती है। वर से मिलकर नारी मंगल-गीत गाने लगी अर्थात् उसे अंदर अनहद शब्द का संगीत सुनाई देने लगा। प्रियतम के गुणों और प्रेम के गीत गाकर स्त्री आनंदित हुई और उसका मन उत्साह और उल्लास से भर गया। उसके सज्जन प्रसन्न हो गए और शत्रु दुःखी हो गए। उसने सच की साधना करके सच्चा लाभ कमा लिया। जीवात्मारूपी स्त्री हाथ जोड़कर विनती करती है कि मुझे दिन-रात इसी प्रकार अपने प्रेम के रस में भीगी रहने दें। मेरा प्रियतम से मिलाप हो गया है, मैं उसके साथ रंगरलियाँ मनाती हूँ, मेरी सब इच्छाएँ पूरी हो गई हैं।

मुंध रैण दुहेलड़ीआ जीउ नीद न आवै॥
सा धन दुबलीआ जीउ पिर कै हावै॥
धन थीई दुबल कंत हावै केव नैणी देखए॥
सीगार मिठ रस भोग भोजन सभ झूठ कितै न लेखए॥
मै मत जोबन गरब गाली दुधा थणी न आवए॥
नानक सा धन मिलै मिलाई बिन पिर नीद न आवए॥
मुंध निमानड़ीआ जीउ बिन धनी पिआरे॥
किउ सुख पावैगी बिन उर धारे॥
नाह बिन घर वास नाही पुछहो सखी सहेलीआ॥
बिन नाम प्रीत पिआर नाही वसह साच सुहेलीआ॥

सच मन सजन संतोख मेला गुरमती सहु जाणिआ॥
नानक नाम न छोडै सा धन नाम सहज समाणीआ॥
मिल सखी सहेलड़ीहो हम पिर रावेहा॥
गुर पुछ लिखउगी जीउ सबद सनेहा॥
सबद साचा गुर दिखाइआ मनमुखी पछुताणिआ॥
निकस जातउ रहै असथिर जाम सच पछाणिआ॥
साच की मत सदा नउतन सबद नेह नवेलओ॥
नानक नदरी सहज साचा मिलहो सखी सहेलीहो॥
मेरी इछ पुनी जीउ हम घर साजन आइआ॥
मिल वर नारी मंगल गाइआ॥
गुण गाए मंगल प्रेम रहसी मुंध मन ओमाहओ॥
साजन रहंसे दुसट विआपे साच जप सच लाहओ॥
कर जोड़ सा धन करै बिनती रैण दिन रस भिंनीआ॥
नानक पिर धन करह रलीआ इछ मेरी पुंनीआ॥[5]

मुंध जोबन बालड़ीए

जिस जीवात्मारूपी स्त्री के हृदय में परमात्मारूपी पति के लिए अनन्य प्रेम होता है, उसका पति से अवश्य मिलाप हो जाता है। वह पति आनंद का स्रोत है, दया व प्रेम की मूर्ति है। वह अति निर्मल और सुंदर है। जब जीवात्मा उसके साथ सच्चा प्रेम करती है तो उसके तन, मन, बुद्धि आदि सब निर्मल हो जाते हैं। जो आत्मा शब्द से जुड़ जाती है, प्रभु उस पर प्रसन्न होता है, क्योंकि शब्द उसका निज रूप है। प्रभु प्रियतम को देखते ही आत्मा सच्चे आनंद में खिल उठती है। उसकी ख़ुशी का कोई ठिकाना नहीं रहता। गुरु साहिब कहते हैं: हर वस्तु में अपने स्रोत से मिलने का क़ुदरती खिंचाव होता है। उसी प्रकार आत्मा में भी परमात्मा में समाने का स्वाभाविक आकर्षण या तड़प है, परंतु वह कर्मों के भार के नीचे दबी हुई है। कर्मों के भार से निकलते ही आत्मा तुरंत अपने स्रोत में मिल जाती है। इस मिलाप से उसको अनूठा आनंद प्राप्त होता है:

मुंध जोबन बालड़ीए मेरा पिर रलीआला राम॥
धन पिर नेह घणा रस प्रीत दइआला राम॥
धन पिरह मेला होए सुआमी आप प्रभ किरपा करे॥
सेजा सुहावी संग पिर कै सात सर अंम्रित भरे॥
कर दइआ मइआ दइआल साचे सबद मिल गुण गावओ॥
नानका हर वर देख बिगसी मुंध मन ओमाहओ॥
मुंध सहज सलोनड़ीए इक प्रेम बिनंती राम॥
मै मन तन हर भावै प्रभ संगम राती राम॥
प्रभ प्रेम राती हर बिनंती नाम हर कै सुख वसै॥
तउ गुण पछाणह ता प्रभ जाणह गुणह वस अवगण नसै॥
तुध बाझ इक तिल रह न साका कहण सुनण न धीजए॥
नानका प्रिउ प्रिउ कर पुकारे रसन रस मन भीजए॥
सखीहो सहेलड़ीहो मेरा पिर वणजारा राम॥
हर नामो वणंजड़िआ रस मोल अपारा राम॥
मोल अमोलो सच घर ढोलो प्रभ भावै ता मुंध भली॥
इक संग हर कै करह रलीआ हउ पुकारी दर खली॥
करण कारण समरथ स्रीधर आप कारज सारए॥
नानक नदरी धन सोहागण सबद अभ साधारए॥
हम घर साचा सोहिलड़ा प्रभ आइअड़े मीता राम॥
रावे रंग रातड़िआ मन लीअड़ा दीता राम॥
आपणा मन दीआ हर वर लीआ जिउ भावै तिउ रावए॥
तन मन पिर आगै सबद सभागै घर अंम्रत फल पावए॥
बुध पाठ न पाईऐ बहु चतुराईऐ भाए मिलै मन भाणे॥
नानक ठाकुर मीत हमारे हम नाही लोकाणे॥[6]

भैणे सावण आइआ

सावन का सुंदर और सुहावना महीना आ गया है। सावन की काली घटाएँ, चमकती बिजलियाँ, चहचहाते पक्षी और नाचते हुए मोर आदि सब प्रेम

को अति सुहावना बनाने के साधन हैं। ऐसी अवस्था में जीवात्मारूपी स्त्री कहती है, हे प्रियतम! तेरे कटाक्ष यानी तिरछी नज़रों ने रस्सियों की भाँति मुझे बाँध लिया है। इस लोभी मन में अब केवल तुम्हारी चाहत है। मैं तेरे दर्शनों पर बलिहारी जाती हूँ, तेरे नाम पर न्योछावर होती हूँ। गुरु साहिब सावन के महीने की तुलना मनुष्य-जन्म से करते हैं। जैसे सावन की वर्षा-ऋतु में पति से बिछुड़ी विरहिणी वियोग में व्याकुल है, वैसे ही जो जीव मनुष्य-जन्म पाकर उस प्यारे प्रियतम परमात्मा से मिलाप नहीं करता, उसका जन्म दुःखों में ही बीत जाता है। यदि उसको संसार के सभी सुख मिल जाएँ, फिर भी उसको अपने अंदर किसी कमी या सूनेपन का अनुभव होता है, इंद्रियों के भोग और सांसारिक सुख कभी भी इस गहरी कमी को पूरा नहीं कर सकते। इसी लिए वह वियोग में अपने आप से कहती है: तू अपना चूड़ा बाहों समेत और पलंग चौखट समेत तोड़ दे; क्योंकि पति के बिना सुहाग का चिह्न चूड़ा और सुंदर सेज व्यर्थ हैं। तू इतने साज-शृंगार करती है, परंतु तेरा पति औरों के साथ सुख मना रहा है। तेरे पास न गुरुरूपी मनियार (चूड़ी पहनानेवाला) है, न भक्ति की चूड़ियाँ हैं और न वे प्रेम की वंगुड़ियाँ (चूड़ियाँ) हैं जिनसे पति प्रसन्न होता है। जीवात्मारूपी स्त्री कह उठती है, जब तक मैं कंत को नहीं भाती, मैं सुघड़ और सुंदर कैसे हो सकती हूँ? मैंने कंघी की, चोटी गुँथाई और माँग में सिंदूर भी भरा परंतु पति के द्वार पर ये शृंगार परवान नहीं हुए इसलिए मैं रो-रोकर मर रही हूँ। मेरे विलाप को देखकर सब जग रो पड़ा, वन के पक्षी तक रोने लगे। परंतु विरह ही एक ऐसा कठोर-हृदय निकला कि वह न पसीजा अर्थात् मेरे रोने और विलाप से भी वियोग दूर न हुआ।

शब्द के दूसरे भाग में गुरु साहिब उस स्त्री का उदाहरण देते हैं, जिसको स्वप्न में प्रियतम के दर्शन हो जाते हैं, परंतु जब वह जागती है तो वियोग की पीड़ा और अधिक बढ़ जाती है। इसी प्रकार जिस प्रेमी को अंदर उस प्रियतम की हलकी-सी झलक मिले और फिर लुप्त हो जाए, ऐसे में तो उसकी मौत का सामान तैयार हो जाता है। जिसने कभी मिलाप का आनंद देखा ही नहीं उसकी बात तो और है, परंतु जिसको विसाल का

थोड़ा भी स्वाद आ जाता है उसकी तड़प वर्णन से परे होती है। उसको स्थायी मिलाप के बिना कभी संतोष नहीं होता।

शब्द के अंत में गुरु साहिब सतगुरु की महिमा करते हुए कहते हैं कि मैं प्रियतम का संदेश लानेवाले और उससे मिलाप का मार्ग तैयार करनेवाले पर क़ुर्बान जाता हूँ। मैं उसको शीश भेंट करने के लिए तैयार हूँ। मैं बिना सिर के उसकी सेवा करूँगा अर्थात् अपनी हौंमैं का पूरी तरह त्याग करके उसका हुक्म मानूँगा। आप फ़रमाते हैं कि जिस आत्मा का पति दूर चला जाए, जिसको वियोग का रोग लग जाए, वह तो विरह की पीड़ा से ही मर जाती है:

मोरी रुण झुण लाइआ भैणे सावण आइआ॥
तेरे मुंध कटारे जेवडा तिन लोभी लोभ लुभाइआ॥
तेरे दरसन विटहो खंनीऐ वंञा तेरे नाम विटहो कुरबाणो॥
जा तू ता मै माण कीआ है तुध बिन केहा मेरा माणो॥
चूड़ा भंन पलंघ सिउ मुंधे सण बाही सण बाहा॥
एते वेस करेदीए मुंधे सहु रातो अवराहा॥
ना मनीआर न चूड़ीआ ना से वंगुड़ीआहा॥
जो सह कंठ न लगीआ जलन से बाहड़ीआहा॥
सभ सहीआ सहु रावण गईआ हउ दाधी कै दर जावा॥
अंमाली हउ खरी सुचजी तै सह एक न भावा॥
माठ गुंदाई पटीआ भरीऐ माग संधूरे॥
अगै गई न मंनीआ मरउ विसूर विसूरे॥
मै रोवंदी सभ जग रुना रुंनड़े वणहो पंखेरू॥
इक न रुना मेरे तन का बिरहा जिन हउ पिरहो विछोड़ी॥
सुपनै आइआ भी गइआ मै जल भरिआ रोए॥
आए न सका तुझ कन पिआरे भेज न सका कोए॥
आउ सभागी नीदड़ीए मत सहु देखा सोए॥
तै साहिब की बात जे आखै कहो नानक किआ दीजै॥

सीस वढे कर बैसण दीजै विण सिर सेव करीजै॥
किउ न मरीजै जीअड़ा न दीजै जा सहु भइआ विडाणा॥[7]

जीउ डरत है आपणा

जीव पापों से भरा हुआ है। उसे सदा भय रहता है कि पता नहीं कौन-से दुःख या कैसी सज़ाएँ सहनी पड़ेंगी। परंतु वह परमात्मा परम दयालु और बख़्शिंद है। यदि जीव तन-मन से उसे प्रेम करे और सच्चे दिल से उसकी सेवा करे तो अंत समय वह कृपानिधान अवश्य उसकी सहायता करेगा।

जीव विनती करता है कि हे प्रभु! तू मुझे अपने नाम का सुमिरन दे ताकि मैं इस नाव पर चढ़कर भवसागर से पार हो जाऊँ। हे प्रभु! तू ही एकमात्र सच्चा धनी है, तू ही निमानियों का मान और बेसहारों का सहारा है। गुरु साहिब कहते हैं, हे प्रभु! मुझे वह बड़ाई दे जिससे मैं सदा तेरे नाम में लगा रहूँ। मैं किसी दूसरे की परवाह किए बिना सदा तेरी सेवा करना चाहता हूँ। मैं तेरा दास हूँ और तुझ पर क़ुर्बान जाता हूँ:

जीउ डरत है आपणा कै सिउ करी पुकार॥
दूख विसारण सेविआ सदा सदा दातार॥
साहिब मेरा नीत नवा सदा सदा दातार॥
अनदिन साहिब सेवीऐ अंत छडाए सोए॥
सुण सुण मेरी कामणी पार उतारा होए॥
दइआल तेरै नाम तरा॥ सद कुरबाणै जाउ॥
सरबं साचा एक है दूजा नाही कोए॥
ता की सेवा सो करे जा कउ नदर करे॥
तुध बाझ पिआरे केव रहा॥
सा वडिआई देह जित नाम तेरे लाग रहां॥
दूजा नाही कोए जिस आगै पिआरे जाए कहा॥
सेवी साहिब आपणा अवर न जाचंउ कोए॥
नानक ता का दास है बिंद बिंद चुख चुख होए॥[8]

कुचज्जी

यह शब्द नम्रता और प्रार्थना के भाव प्रकट करता है। जीवात्मा अपने को कुचज्जी यानी गँवार समझती हुई कहती है कि मुझमें कोई गुण और ढंग नहीं हैं। मैं अवगुणों और पापों की भरी हुई हूँ, मैं अपने प्रियतम के मिलाप का सुख कैसे प्राप्त कर सकती हूँ? मुझसे कितनी अधिक सुघढ़ व सुंदर स्त्रियाँ उस प्रियतम के साथ रहती हैं, जो सखियाँ प्रियतम के साथ हैं, वे सुख भोगती हैं। मुझमें उन जैसे गुण नहीं हैं, मैं किसी को क्या दोष दूँ? मैं तेरे गुण विस्तारपूर्वक क्या बताऊँ? मैं तेरा क्या-क्या नाम लूँ? अर्थात् तेरी अनेक विशेषताएँ हैं। मैं तो तेरी एक ख़ूबी तक भी नहीं पहुँच सकती। मैं तुझ पर सौ बार क़ुर्बान जाती हूँ।

कुचज्जी की ऐसी दशा इसलिए है कि वह धन-दौलत, सोने-चाँदी और संसार की वस्तुओं और पदार्थों के पीछे भागती रहती है। दातों (वस्तुओं) के मोह में लिप्त वह अपने दाता (परमात्मा) को ही भुला देती है और शरीररूपी मिट्टी के महल को पत्थरों यानी हीरे-जवाहरात से सजाने में लग जाती है।

बुढ़ापे में सिर सफ़ेद हो जाता है, तब जीवात्मारूपी स्त्री को पछतावा होता है और कहती है कि अब सिर पर मौतरूपी कूँज बोल रही है और बाल बगुलों के समान श्वेत हो गए हैं। अपने ससुरालरूपी परलोक जाने का समय आ गया है। अब वहाँ क्या मुख लेकर जाऊँगी? अज्ञानता की नींद में सोई हुई मेरी आयुरूपी रात बीत गई और यहाँ से कूच करने का समय (सवेरा) आ गया। मैं अपने असली रास्ते से भटक गई। मैं प्रियतम से बिछुड़ गई और दु:खों को इकट्ठा करती रही।

गुरु साहिब शब्द का अंत एक अरदास (विनती) से करते हैं। हे मेरे प्रियतम! जिस प्रकार तूने दूसरी सुहागिनों पर दया की है, मुझ पर दया करके मुझे भी अपने साथ मिला ले:

मंञ कुचजी अंमावण डोसड़े हउ किउ सहु रावण जाउ जीउ॥
इक दू इक चड़ंदीआ कउण जाणै मेरा नाउ जीउ॥

जिन्ही सखी सहु राविआ से अंबी छावड़ीएह जीउ॥
से गुण मंञ न आवनी हउ कै जी दोस धरेउ जीउ॥
किआ गुण तेरे विथरा हउ किआ किआ घिना तेरा नाउ जीउ॥
इकत टोल न अंबड़ा हउ सद कुरबाणै तेरै जाउ जीउ॥
सुइना रुपा रंगुला मोती तै माणिक जीउ॥
से वसतू सह दितीआ मैं तिन्ह सिउ लाइआ चित जीउ॥
मंदर मिटी संदड़े पथर कीते रास जीउ॥
हउ एनी टोली भुलीअस तिस कंत न बैठी पास जीउ॥
अंबर कूंजा कुरलीआ बग बहिठे आए जीउ॥
सा धन चली साहुरै किआ मुह देसी अगै जाए जीउ॥
सुती सुती झाल थीआ भुली वाटड़ीआस जीउ॥
तै सह नालहो मुतीअस दुखा कूं धरीआस जीउ॥
तुध गुण मै सभ अवगणा इक नानक की अरदास जीउ॥
सभ राती सोहागणी मै डोहागण काई रात जीउ॥[9]

सुचज्जी

कुचज्जी यानी गँवार स्त्री के विपरीत इस शब्द में सुचज्जी यानी सुघढ़ गृहिणी के गुणों का वर्णन किया गया है। सुचज्जी वह है जो प्रियतम की प्यारी है, उसके हुक्म में रहती है और शब्द की कमाई करती है।

प्रभु जिस जीव के साथ है, उसको अपने अंदर और बाहर शांति ही शांति दिखाई देती है। वह मालिक की शरण ले लेता है। वह समझ जाता है कि जो कुछ हो रहा है, मालिक के हुक्म से हो रहा है। इसलिए वह हर हाल में राज़ी रहता है। यदि प्रभु की मौज हो तो वह सुंदर और दयालु प्रतीत होता है; मौज हो तो भयानक मालूम होता है। प्रभु की मौज हो तो मरुस्थल में भी नदियाँ बहने लगें, उसकी मौज हो तो आकाश में कमल के फूल खिल उठते हैं। कोई भी उसकी थाह नहीं पा सकता। सुचज्जी विनती करती है, हे प्रभु! मुझे सतगुरु के शब्द की दात बख़्श, क्योंकि तू शब्द द्वारा ही मिल सकता है:

जा तू ता मै सभ को तू साहिब मेरी रास जीउ॥
तुध अंतर हउ सुख वसा तूं अंतर साबास जीउ॥
भाणै तखत वडाईआ भाणै भीख उदास जीउ॥
भाणै थल सिर सर वहै कमल फुलै आकास जीउ॥
भाणै भवजल लंघीऐ भाणै मंझ भरीआस जीउ॥
भाणै सो सहु रंगुला सिफत रता गुणतास जीउ॥
भाणै सहु भीहावला हउ आवण जाण मुईआस जीउ॥
तू सहु अगम अतोलवा हउ कह कह ढह पईआस जीउ॥
किआ मागउ किआ कह सुणी मै दरसन भूख पिआस जीउ॥
गुर सबदी सहु पाइआ सच नानक की अरदास जीउ॥[10]

सूती रैण विहाणी

प्रेम की भावना से ओतप्रोत इस शब्द में आत्मा की स्त्री से, परमात्मा की पति से और जीवन की रात से उपमा दी गई है। यह रात इसलिए मिली है कि सुहागिन अपने प्रियतम का साथ कर सके, उससे प्रेम की बाज़ी खेल सके। परंतु मूर्ख स्त्री ने गुणों की ओर ध्यान नहीं दिया, बल्कि यह अवसर संसार के व्यर्थ के धंधों में खो दिया। पूर्ण यौवन के मद में मस्त और अहंकार में बेसुध हुई उसे यह पता नहीं कि मैं इस पीहर (संसार) में मेहमान हूँ और एक दिन ससुराल (परलोक) जाना होगा। उसने प्रियतम के मिलाप के अनूठे आनंद का रस प्राप्त करने के बजाय अपना समय पापों की गठरी बाँधने में लगा दिया। सतगुरु दया करके बिचौलिया बनकर उसका बिछुड़े हुए प्रियतम से मिलाप कराना चाहता है, परंतु वह अपने यौवन के अहंकार में मस्त हुई उसके ज्ञानभरे वचनों की ओर ध्यान नहीं देती। जब रात बीतने लगती है तो उसको अपनी मूर्खता का ज्ञान होता है। जिस प्रकार बाल्यावस्था में विधवा हुई कन्या युवा होने पर भी कुम्हलाई हुई रहती है, उसी प्रकार प्रभुरूपी प्रियतम के बिना आत्मारूपी स्त्री भी मुरझा गई है।

वह प्रभु चारों युगों में वाणी अथवा शब्द रूप में तीनों लोकों में व्याप्त हो रहा है। । वह प्रभु सुहागिनों (गुरुमुखों) के पास रहता है,

परंतु मुझ जैसी अवगुणों से भरी से दूर रहता है। सुहागिन के हृदय में जो भी कामना होती है उसे वह सर्वव्यापक प्रभु पूरी करता है। कर्मों का जो लेख कर्ता ने लिख दिया है उसे कोई मिटा नहीं सकता। बारात का अगुआ मेरा दूल्हा वह है जो निर्लेप है अर्थात् जो सब बंधनों से परे, पवित्र और स्वाधीन है और जो तीनों लोकों में व्याप्त है। दूल्हे के साथ दुल्हन के मिलाप को देखकर मायारूपी माता रोती है, क्योंकि दुल्हन (जीवात्मा) माया के देश से जा रही है। फिर वह सतगुरु के आगे विनती करती है, हे पिता (सतगुरु) मेरे विवाह का लगन निकलवा ताकि मैं भी ससुराल जाऊँ। सतगुरु दया करके उसको प्यारे कंत से मिला देता है, जिससे उसको विश्वास हो जाता है कि सतगुरुरूपी पिता ने मेरा संबंध इतने दूर देश (प्रभु के धाम) में किया है कि मुझे वापस पीहर नहीं आना पड़ेगा अर्थात् फिर जन्म-मरण में नहीं आना पड़ेगा। फिर वह अपने (प्रभुरूपी) प्रियतम को सामने देखकर प्रसन्न हो जाती है। प्रियतम ने भी उसे अपना लिया और वह अब प्रभु के घर में शोभा पाती है:

भर जोबन मै मत पेईअड़ै घर पाहुणी बल राम जीउ॥
मैली अवगण चित बिन गुर गुण न समावनी बल राम जीउ॥
गुण सार न जाणी भरम भुलाणी जोबन बाद गवाइआ॥
वर घर दर दरसन नही जाता पिर का सहज न भाइआ॥
सतगुर पूछ न मारग चाली सूती रैण विहाणी॥
नानक बालतण राडेपा बिन पिर धन कुमलाणी॥
बाबा मै वर देह मै हर वर भावै तिस की बल राम जीउ॥
रव रहिआ जुग चार त्रिभवण बाणी जिस की बल राम जीउ॥
त्रिभवण कंत रवै सोहागण अवगणवंती दूरे॥
जैसी आसा तैसी मनसा पूर रहिआ भरपूरे॥
हर की नार सो सरब सुहागण रांड न मैलै वेसे॥
नानक मै वर साचा भावै जुग जुग प्रीतम तैसे॥

बाबा लगन गणाए हं भी वंञा साहुरै बल राम जीउ॥
साहा हुकम रजाए सो न टलै जो प्रभ करै बल राम जीउ॥
किरत पइआ करतै कर पाइआ मेट न सकै कोई॥
जाञी नाउ नरह निहकेवल रव रहिआ तिहु लोई॥
माए निरासी रोए विछुंनी बाली बालै हेते॥
नानक साच सबद सुख महली गुर चरणी प्रभ चेते॥
बाबुल दितड़ी दूर ना आवै घर पेईऐ बल राम जीउ॥
रहसी वेख हदूर पिर रावी घर सोहीऐ बल राम जीउ॥
साचे पिर लोड़ी प्रीतम जोड़ी मत पूरी परधाने॥
संजोगी मेला थान सुहेला गुणवंती गुर गिआने॥
सत संतोख सदा सच पलै सच बोलै पिर भाए॥
नानक विछुड़ ना दुख पाए गुरमत अंक समाए॥[11]

प्रेम के श्लोक

यहाँ गुरु साहिब के 'सूही राग की वार' और 'वारां ते वधीक श्लोकों' में से प्रेम से संबंधित कुछ श्लोक दिए जा रहे हैं। इनमें प्रेम के भिन्न-भिन्न भाव प्रकट होते हैं। इनमें विरह की तड़प, मिलाप की गहरी चाह, प्रियतम की उदासीनता पर निराशा और मिलाप के पूर्ण आनंद आदि के भाव प्रकट होते हैं। 'वारां ते वधीक' में से लिए गए श्लोकों में गुरु साहिब इस सत्य को प्रकट करते हैं कि प्रभुरूपी प्रियतम केवल प्रेम द्वारा ही मिलता है। आप यह भी स्पष्ट करते हैं कि वह सदा अपने अंतर में ही मिलता है, कहीं बाहर मंदिरों, मसजिदों, गिरजों, ठाकुरद्वारों आदि में नहीं :

इको कंत सबाईआ जिती दर खड़ीआह॥
नानक कंतै रतीआ पुछह बातड़ीआह॥
सभे कंतै रतीआ मै दोहागण कित॥
मै तन अवगण एतड़े खसम न फेरे चित॥
हउ बलिहारी तिन कउ सिफत जिना दै वात॥

सभ राती सोहागणी इक मै दोहागण रात॥
जिनी न पाइओ प्रेम रस कंत न पाइओ साउ॥
सुंञे घर का पाहुणा जिउ आइआ तिउ जाउ॥[12]

तन न तपाए तनूर जिउ बालण हड न बाल॥
सिर पैरी किआ फेड़िआ अंदर पिरी सम्हाल॥
सभनी घटी सहु वसै सह बिन घट न कोए॥
नानक ते सोहागणी जिन्हा गुरमुख परगट होए॥
जउ तउ प्रेम खेलण का चाउ॥ सिर धर तली गली मेरी आउ॥
इत मारग पैर धरीजै॥ सिर दीजै काण न कीजै॥[13]

लाज मरंती मर गई

'दखणी ओअंकार' वाणी में से लिए गए इस अंश में उस प्रेमिका की मनोदशा का चित्रण है जो परमात्मा के प्रेम में लीन होकर समस्त लोकलाज को त्याग देती है। वह ऐसी सुहागिन के समान है जो सास (माया) का डर मन से निकालकर परदा उठाकर प्रियतम के मिलाप के लिए चल देती है और कहती है कि लोकलाज जो मुझे परेशान कर रही थी, मर गई। मैंने घूँघट खोल दिया है और निडर होकर प्रेम के मार्ग पर चल पड़ी हूँ। यह सास (माया) पागल हो गई है अर्थात् माया की मति मारी गई है। अब उसका मुझ पर ज़ोर नहीं चल सकता। मेरे सभी संशय दूर हो गए हैं। प्रियतम ने मुझे प्रेमपूर्वक बुलाया है और मेरे मन में शब्द का आनंद छाया हुआ है। लाल (प्रियतम) के प्रेम में लीन होकर मैं भी लाल हो गई हूँ अर्थात् प्रियतम में समाकर मैं भी प्रेम का ही रूप हो गई हूँ। सतगुरु के द्वारा ही मैंने इस अवस्था को प्राप्त किया है जो सब प्रकार की चिंता और दुःख से परे है। मैं भी प्रेम का ही रूप हो गई हूँ। सतगुरु की कृपा से मेरी सब चिंताओं का नाश हो गया है। गुरु साहिब का भाव यह है कि सच्चा भक्त कभी संसार की निंदा और आलोचना से नहीं डरता। वह माया का परदा चीरकर प्यारे परमेश्वर से जा मिलता है। वह शब्द

के रंग में रँगा जाता है जिससे उसके सब दु:ख दूर हो जाते हैं और उसे सच्चा सुख मिल जाता है। यह अवस्था गुरु की दया से प्राप्त होती है:

लाज मरंती मर गई घूघट खोल चली॥
सास दिवानी बावरी सिर ते संक टली॥
प्रेम बुलाई रली सिउ मन मह सबद अनद॥
लाल रती लाली भई गुरमुख भई निचिंद॥[14]

वैसाख भला साखा वेस करे

तुखारी राग के 'बारह माहा' में से लिए वैशाख के इस महीने में गुरु साहिब उस विरहिणी की अवस्था का चित्रण करते हैं जो इस सुहावने समय में अपने प्यारे से बिछुड़ी हुई है। वैशाख के सुहावने समय में चारों ओर हरियाली छा गई है, सारी वनस्पति हरी-भरी हो गई है। हे प्रियतम! मैं तेरा रास्ता देख रही हूँ कि तू आए और मेरा हृदय भी हरा-भरा हो जाए। हे मेरे प्यारे! तू दया कर और घर आ। तू ही मुझे दु:खों के सागर से पार कर सकता है। तेरे बिना मेरा कौड़ी जितना भी मूल्य नहीं है। यदि तू मुझ पर अपने प्यार और रहमत की एक दृष्टि डाल दे, फिर किसी में मेरी क़ीमत आँकने का साहस नहीं रहेगा फिर मैं तुच्छ के बजाय अनमोल बन जाऊँगी। तेरी दया हो जाए तो मैं तुझे बाहर दूर-दूर खोजने के स्थान पर अंदर ही तेरी खोज कर लूँ और अपने अंदर ही तेरे महल में पहुँच जाऊँ। वैशाखरूपी मनुष्य-जन्म उसके लिए सुहावना हो जाता है जिसकी सुरत शब्द से जुड़ जाती है, मन वश में आ जाता है और जिसका अपने प्यारे प्रभु से मिलाप हो जाता है:

वैसाख भला साखा वेस करे॥
धन देखै हर दुआर आवहो दइआ करे॥
घर आउ पिआरे दुतर तारे तुध बिन अढ न मोलो॥
कीमत कउण करे तुध भावां देख दिखावै ढोलो॥
दूर न जाना अंतर माना हर का महल पछाना॥[15]

परिशिष्ट

साहित्यिक गुण तथा शैली

गुरु नानक साहिब के आदि ग्रन्थ में कुल 974 शब्द हैं। आपकी वाणी के मुख्य भाग – जप जी, सिध गोस्ट, आसा की वार और दखणी ओअंकार हैं। रूहानी उपदेश की गहराई और सार्थकता के अतिरिक्त भाषा की सुंदरता और वर्णन की निपुणता के गुण आपकी वाणी को श्रेष्ठ काव्य का स्थान देते हैं। शब्दों के चुनाव और प्रत्येक शब्द की मधुर गीतात्मकता की दृष्टि से गुरु साहिब की गणना संसार के महान कवियों में की जा सकती है। आप स्वयं अपने कवित्व और प्रतिभा से अनजान न थे। आप स्वयं को उस अकालपुरुष के शब्द का प्रचारक या चारण कहते हैं:

ढाढी करे पसाउ सबद वजाइआ॥[1]

गुरु साहिब की वाणी के महान कलात्मक गुणों के बावजूद ऊपर कही गई इस बात को नहीं भूलना चाहिए कि आपका प्रमुख उद्देश्य परमात्मा के शब्द का उपदेश था। कविता या वाणी इस उद्देश्य की पूर्ति के साधन या माध्यम-मात्र थे। उन्होंने "अपनी वाणी अपनी काव्य-शक्ति की सिद्धि के लिए नहीं रची। आपके गीत तो एक दिव्य दृश्य के समान, एक रूहानी ज्योति के समान हैं जो अंतर से उमड़कर, गुलाब के फूल की तरह खिलकर ध्यान खींचती है।"[2] आपका मूल ध्येय तो अपने रूहानी संदेश का प्रचार था और भाषा तथा काव्य इस ध्येय की पूर्ति के मात्र साधन थे।

भारत में संतों, महात्माओं और भक्तों द्वारा चलाई गई रूहानी कविता की एक विशाल परंपरा थी जिसे गुरु साहिब ने भी अपनाया। इस परंपरा

को नामदेव जी, कबीर साहिब, रविदास जी आदि की वाणी में अपना एक अलग ही रूप प्राप्त हो चुका था। बाबा फ़रीद शक्करगंज जैसे सूफ़ी कवियों की वाणी भी लोकप्रिय थी जिन्होंने उस समय की पंजाबी में इलाही प्रेम के गीत गाए थे। गुरु नानक साहिब इस पारमार्थिक वाणी के ख़ज़ाने से पूरी तरह परिचित थे। उन्होंने इन संतों की वाणी की प्रमुख विशेषताओं को ही नहीं, बल्कि उनकी शैली और भाव-सौंदर्य को भी अपनी रचना में समा लिया। आपने भक्तिधारा और सूफ़ी मत की समानांतर चल रही काव्य परंपराओं का अपनी वाणी में सुंदर मेल किया।

गुरु नानक साहिब की वाणी को साधारण तौर पर तीन कालों में बाँटा जाता है। पहला काल लगभग 1469 से 1498ई. तक का है, जिसमें उन्होंने चेतावनी और चुनौतीपूर्ण वाणी की रचना की। इसमें मुख्य रूप से कपटी और पाखंडी पुरोहितों द्वारा जारी किए गए कर्मकांड और राज्य कर्मचारियों की पापपूर्ण प्रवृत्ति की ज़ोरदार आलोचना की गई है। उदाहरण के लिए, वह एक विद्यार्थी के रूप में पंडित की विद्वत्ता के सामने एक प्रश्नचिह्न खड़ा कर देते हैं, क्योंकि उसकी विद्या तो मुक्ति और ज्ञान के बजाय आत्मा को कुचलनेवाली शिला सिद्ध हो रही थी। आप कहते हैं कि मोह को जलाकर और घिसकर इसकी स्याही बनाओ, विवेक बुद्धि का काग़ज़ प्रयोग करो, प्रेम की क़लम द्वारा हृदय की एकाग्रता से गुरु के उपदेश के अनुसार उस परमात्मा के नाम की महिमा का लेख लिखो जिसका कोई पारावार नहीं है:

जाल मोह घस मस कर मत कागद कर सार॥
भाउ कलम कर चित लेखारी गुर पुछ लिख बीचार॥
लिख नाम सालाह लिख लिख अंत न पारावार॥[3]

इसी प्रकार आप अपने ग्राम के वैद्य को संबोधित करके कहते हैं कि दु:ख की औषधि बताने के लिए बुलाया गया वैद्य मेरी कलाई पकड़े हुए है, इसको यह नहीं मालूम कि (वियोग की) पीड़ा तो मेरे हृदय में है, नब्ज़ देखने का क्या लाभ?

वैद बुलाइआ वैदगी पकड़ ढंढोले बांह॥
भोला वैद न जाणई करक कलेजे माह॥[4]

गुरु साहिब की शुरू की वाणी में रूपकों और उपमाओं की भरमार है। इस काल में आपने विशेषत: श्लोकों की रचना की जिनमें व्यंग्य का रंग प्रधान है।

अगला काल मुख्य रूप से गुरु साहिब की बीस वर्षों के दौरान हुई उदासियों से संबंधित है। आपकी संवादपूर्ण और सैद्धांतिक वाणी अधिकतर इस काल से संबंधित है, क्योंकि इस समय आप साधारण तौर पर उस समय के शास्त्रों के ज्ञाता पंडितों और मौलवियों से चर्चा और गोष्ठियों में व्यस्त रहे। इस समय भी आपके विषयों में "फोकट, निर्जीव कर्मकांड, अर्थहीन तीर्थयात्रा, अज्ञानपूर्ण त्याग, शरीर को कष्ट देनेवाला हठयोग, झूठी शान-बान, ग़लत मानदंड और बाल की खाल उतारनेवाला बुद्धिवाद आदि"[5] के प्रति आलोचना शामिल है। परंतु इसके साथ ही आपके शब्दों में आत्मा, परमात्मा, सृष्टि की रचना और नाम जैसे रूहानी विषय और भक्तिभाव वाले विषयों की झलक भी मिलती हैं। इस प्रकार इस काल की रचना में विषय और शैली के परिवर्तन के चिह्न स्पष्ट दिखाई देते हैं। निम्नलिखित शब्द इस काल की रचना का प्रतिनिधित्व करता है:

मोती त मंदर ऊसरह रतनी त होहे जड़ाउ॥
कसतूर कुंगू अगर चंदन लीप आवै चाउ॥
मत देख भूला वीसरै तेरा चित न आवै नाउ॥
हर बिन जीउ जल बल जाउ॥
मै आपणा गुर पूछ देखिआ अवर नाही थाउ॥
धरती त हीरे लाल जड़ती पलघ लाल जड़ाउ॥
मोहणी मुख मणी सोहै करे रंग पसाउ॥
मत देख भूला वीसरै तेरा चित न आवै नाउ॥
सिध होवा सिध लाई रिध आखा आउ॥

गुपत परगट होए बैसा लोक राखै भाउ॥
मत देख भूला वीसरै तेरा चित न आवै नाउ॥
सुलतान होवा मेल लसकर तखत राखा पाउ॥
हुकम हासल करी बैठा नानका सभ वाउ॥
मत देख भूला वीसरै तेरा चित न आवै नाउ॥[6]

इस शब्द को गंभीरता से देखने से पता लगता है कि गुरु साहिब ने *हर बिन जीउ जल बल जाउ॥* और *मत देख भूला वीसरै तेरा चित न आवै नाउ॥* के विचार को चार पहलुओं से प्रकट करने के लिए चार शक्तिशाली चित्र या बिंब उपस्थित किए हैं जो सांसारिक प्राणी की धन, काम, पद और अलौकिक सिद्धि-शक्ति की भूख को साकार करते हैं। चारों छोटे चित्र मिलकर एक विशाल चित्र का निर्माण करते हैं जो सारे संसार की मनोदशा, इच्छा तथा आकांक्षा का दृश्य प्रस्तुत करते हुए गुरु साहिब के अपने चिंतन को शक्तिशाली ढंग से प्रकट करता है। उनकी वाणी का हर छोटा चित्र विचार को उसी प्रकार आगे ले जाता है, जैसे छोटी चोटियाँ मिलकर एक विशाल पर्वत का रूप धारण कर लेती हैं। ख़ूबी यह है कि कहीं भी महल, स्त्री, पद और सिद्धि की निंदा नहीं की गई है, बल्कि इनकी अपूर्णता को हरि यानी नाम की पूर्णता से भरने का संकेत दिया है। इस प्रकार यह काव्य-चित्र उस भाव-चित्र की रचना करता है जिसमें संसार के त्याग का नहीं, बल्कि संसार का सही उपयोग करते हुए उसे हरि और नाम की प्राप्ति का साधन बनाने की युक्ति बताता है।

गुरु साहिब की वाणी का तीसरा दौर आपके जीवन के अंतिम अठारह वर्षों (1521-1539ई.) से संबंधित है। इस काल में आपकी वाणी अपने चरम शिखर पर पहुँच गई। गुरु साहिब की सभी प्रमुख वाणियाँ, जैसे जप जी, वारां, पटी, तित्थां, सिध गोस्ट और संभवत: सोहिला और छंत भी इसी समय रची गई हैं। अपनी लंबी उदासियों के बाद गुरु साहिब ने अपने जीवन के अंतिम पड़ाव में करतारपुर को अपना निवास-स्थान बनाया। यहाँ आपका विशाल अनुभव आपकी सरल तथा सहज वाणी की

सुंदरता से एकस्वर होकर अमर साहित्य के रूप में ढल गया है। इस दौर में रची गई वाणी का प्रधान स्वर दार्शनिक और रूहानी है, हालाँकि इस समय की रचनाओं में तर्क और खंडन-मंडन की झलक भी मिलती है।

इन रचनाओं के मुख्य विषय हैं: नाम का ध्यान, परमात्मा का प्रेम और उसके मिलाप की तड़प, सत्संग, हुक्म या भाणा, दया-मेहर, शब्द-धुन, कर्म-सिद्धांत, दु:ख, बदी और आवागमन, हौंमैं के बंधन, सदाचार की आवश्यकता और सामाजिक नैतिकता, प्रकृति की सुंदरता और मनुष्य-शरीर की महत्ता। इस वाणी के विषय और भावों का दायरा इतना विशाल है और इसकी कला में वह उत्तमता है कि यह "संसार के महान से महान धार्मिक काव्य की बराबरी करती है।"[7]

साधारण तौर पर जप जी को गुरु साहिब के उपदेश का सार और कला का शिखर माना जाता है। इसकी 38 पौड़ियाँ हैं और अंत में एक श्लोक है। जप जी में गुरु साहिब की वाणी के प्रमुख विषयों को बख़ूबी से शामिल किया गया है। इसमें परमात्मा के अस्तित्व का सार, मनुष्य की प्रकृति और सारी रचना में उसकी श्रेष्ठता, गुरु का स्वरूप और उसकी आवश्यकता तथा परमात्मा की शब्दरूपी रचनात्मक शक्ति आदि के विषय में गंभीर चर्चा की गई है।

जप जी के मूल मंत्र[8] में जिस ख़ूबी से परमात्मा के अनेक गुणों का क्रमवार वर्णन किया गया है, उसके विषय में सबको पता है:

१ओ सत नाम करता पुरख निरभउ निरवैर॥
अकाल मूरत अजूनी सैभं गुर प्रसाद॥[9]

इस प्रकार जप जी के अंत में शामिल किया गया श्लोक[10] एक प्रकार का परिशिष्ट है, जिसमें नाम की अद्भुत सामर्थ्य और नाम का अभ्यास करनेवालों की अपार महानता का वर्णन है:

जिनी नाम धिआइआ गए मसकत घाल॥
नानक ते मुख उजले केती छुटी नाल॥[11]

गुरु नानक साहिब की वाणी को भारतीय संगीत के सनातनी रागों के अनुसार क्रम दिया गया है। ऊपरी दृष्टि में देखने पर प्रतीत होता है कि रागों का यह बँटवारा किसी नियम के बिना किया गया है क्योंकि एक राग में दर्ज वाणी के कई विचार, भाव और वर्णन अन्य रागों में भी दोहराए गए हैं। परंतु गहन दृष्टि से देखने से स्पष्ट पता लग जाता है कि जिस शब्द को जिस राग में रखा गया है वह उस राग के स्वभाव और बनावट के अनुकूल है। दोहराव यानी पुनरुक्ति का होना स्वाभाविक है, क्योंकि गुरु साहिब की संपूर्ण वाणी का मूल ध्येय और संदेश एक ही आध्यात्मिक सत्य को प्रकट करना है। आदि ग्रन्थ की रागों में बाँधी गई वाणी में से गुरु नानक साहिब की वाणी को बीस रागों में रखा गया है।

हर राग का अपना विशेष भाव और रस होता है और हर राग के गाने का अपना विशेष समय होता है। उदाहरण के तौर पर राग आसा शरद-ऋतु में प्रात:काल और सायंकाल गाया जाता है, गौड़ी राग – गंभीर भावों से; सोरठ अँधेरे से; धनासरी विरह से; वडहंस मिलाप की तड़प से और बसंत बहार – ख़ुशी के भावों से संबंधित है।

गुरु नानक साहिब की वाणी की एक और विशेषता प्रतीकों, अलंकारों और रूपकों का भरपूर प्रयोग है। आपने सबसे अधिक प्रयोग धन-पिर या स्त्री और पति के अलंकार का किया है। आत्मा को स्त्री और परमात्मा को पति कहा है। वारां और सिध-गोस्ट को छोड़कर यह रूपक लगभग सारी वाणी में विद्यमान है। जीवात्मारूपी स्त्री परमात्मारूपी पति से मिलाप के लिए तड़पती है। प्रियतम से मिलकर ही उसके हृदय में लगी विरह की तड़प शांत हो सकती है। राग वडहंस में रचा गया निम्नलिखित शब्द इस भाव के शक्तिशाली वर्णन का सुंदर उदाहरण है:

मोरी रुण झुण लाइआ भैणे सावण आइआ॥
तेरे मुंध कटारे जेवडा तिन लोभी लोभ लुभाइआ॥
तेरे दरसन विटहो खंनीऐ वंञा तेरे नाम विटहो कुरबाणो॥

जा तू ता मै माण कीआ है तुध बिन केहा मेरा माणो॥
चूड़ा भंन पलंघ सिउ मुंधे सण बाही सण बाहा॥
एते वेस करेदीए मुंधे सहु रातो अवराहा॥
ना मनीआर न चूड़ीआ ना से वंगुड़ीआहा॥
जो सह कंठ न लगीआ जलन से बाहड़ीआहा॥
सभ सहीआ सहु रावण गईआ हउ दाधी कै दर जावा॥
अंमाली हउ खरी सुचजी तै सह एक न भावा॥
माठ गुंदाई पटीआ भरीऐ माग संधूरे॥
अगै गई न मंनीआ मरउ विसूर विसूरे॥
मै रोवंदी सभ जग रुना रुंनड़े वणहो पंखेरू॥
इक न रुना मेरे तन का बिरहा जिन हउ पिरहो विछोड़ी॥
सुपनै आइआ भी गइआ मै जल भरिआ रोए॥
आए न सका तुझ कन पिआरे भेज न सका कोए॥
आउ सभागी नीदड़ीए मत सहु देखा सोए॥
तै साहिब की बात जे आखै कहो नानक किआ दीजै॥
सीस वढे कर बैसण दीजै विण सिर सेव करीजै॥
किउ न मरीजै जीअड़ा न दीजै जा सहु भइआ विडाणा॥[12]

गुरु साहिब ने वाणी में पपीहे और स्वाँति बूँद, मछली और जल, चकवी और चकवा, हिरन और नाद, भौंरा और फूल और कमल और जल का दृष्टांत देकर इसी प्रेम भाव को प्रकट किया गया है। इसका एक सुंदर उदाहरण है, गुरु साहिब का सिरी राग का शब्द रे मन ऐसी हर सिउ प्रीत कर।[13]

शुद्ध साहित्यिक दृष्टि से देखने पर पता चलता है कि गुरु साहिब ने वीर रस के काव्य को शांत रस के आध्यात्मिक काव्य में परिवर्तित कर दिया है। आपने एक कथानक मूलक काव्य को विचार-मूलक काव्य का रूप दिया है। इसके साथ ही आपने बाहरमुखी स्थूल संघर्ष को अंतर्मुखी सूक्ष्म संघर्ष में बदल दिया और बाहरी रणभूमि के स्थान पर मनुष्य के

अपने मन को रणभूमि बना दिया। योद्धा या राजा के यश के स्थान पर कर्तापुरुष, शब्द, हुक्म, नाम और गुरुमुख के यश का गायन किया। इसमें विनाश तो विकारों और मनमुखता का दिखाया गया है और विजय गुरुमुखता की दिखाई गई है। इसी प्रकार आपने सिद्ध गोस्ट, पटी, बारह माहा, पहरे आदि सभी काव्य रूपों को अपनी विशेष आवश्यकता के अनुरूप ढाला। यही बात पौराणिक परंपरा से ली गई अनेक कथाओं और उद्धरणों तथा संस्कृत, अरबी, फ़ारसी में से लिए गए पारिभाषिक शब्दों पर लागू होती है। गुरु साहिब ने किसी भी परंपरा के शब्द, पद, प्रमाण, अलंकार, चिह्न आदि का प्रयोग करने में संकोच नहीं किया, परंतु हर स्थान पर यह सामग्री गुरु साहिब के व्यक्तित्व और चिंतन के साँचे में ढलकर, उनके मनोवांछित कार्य की सिद्धि का साधन बन जाती है।

गुरु नानक साहिब की वाणी में गूढ़ रूहानी अनुभवों को प्रकट करने में सिद्धांत, तर्क और भाव का मेल है। यह वाणी भावों की गतिशीलता, चिह्न और बिंब, वर्णन और व्यंजना के अनेक चमत्कार एक स्थान पर जोड़ती है। यह ऐसे अद्‌भुत ढंग से संगीत, चित्र और मूर्ति की उत्तमता को काव्यात्मक सौंदर्य में ढालती है कि इसकी भव्यता और शोभा पाठक के हृदय में आनंद और स्फूर्ति उत्पन्न करती है। यह किसी पूर्ण पुरुष की रचनात्मक प्रतिभा तथा दिव्य कला का ही परिणाम हो सकता है।

गुरु साहिब की वाणी मूल रूप में आध्यात्मिक भावों से परिपूर्ण है। इसको अलौकिक काव्य का दर्जा दिया जाता है, परंतु इसमें लौकिक काव्य के सब उत्तम गुण भरपूर मात्रा में हैं। गुरु साहिब की वाणी में अलौकिक का लौकिक वर्णन है। गुरु साहिब किसी संन्यासी की भाँति जीवन का तिरस्कार नहीं करते थे। परमात्मा का प्रेम और जीव का प्रेम उनकी वाणीरूपी वृक्ष की ऐसी अटूट शाखाएँ हैं कि एक के बिना दूसरे की कल्पना भी नहीं की जा सकती।

गुरु साहिब की वाणी एक ओर ब्रह्मविद्या की उस महान सामग्री को जन-स्तर पर लाती है, जो प्राचीन भाषाओं में होने के कारण साधारण लोगों से दूर हो चुकी थी, तो दूसरी ओर सिद्धांत को नीरस होने से बचाने

के लिए इसको सहज सुंदरता का पुट देती है। यह एक ओर सूक्ष्म अनुभव को स्थूल बनाने के लिए गुप्त अर्थों को प्रकट करती है तो दूसरी ओर प्रकट अर्थों की तह में गहन रूहानी अर्थों को सँजो देती है। हम जितनी अधिक गहराई में जाकर वाणी को समझने का प्रयास करते हैं, हमें उतने ही अधिक हीरे व पन्ने प्राप्त होते हैं। यह वाणी श्रद्धावान हृदय की धार्मिक जिज्ञासा की पूर्ति और कला-प्रेमी की सौंदर्य की भूख को तृप्त करती है। यह वाणी उस अगम सृजनहार तक आत्मा की गमता का वर्णन करती है और पाठक के लिए भी एक प्रेरणा-भरा मार्ग प्रशस्त करती है। इस वाणी का सच जितना सहज, सुंदर और रमणीक है, उतना ही प्रेरणादायक, आदर्शपूर्ण, कल्याणकारी और आशापूर्ण भी है।